नागरीप्रचारिणी ग्रंथमाला—२७

प्रेमसागर

संपादक
ब्रजरत्नदास बी० ए० एल-एल० बी०

काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा
प्रकाशित

तृतीय संस्करण] २०१०

अनुक्रमणिका

वक्तव्य

हिंदी गद्य साहित्य में प्रेमसागर एक प्रसिद्ध ग्रंथ है और अब तक इसके अनेकानेक संस्करण छप भी चुके हैं। शिक्षा-विषयक संग्रहों में बहुधा इसका कुछ न कुछ अंश उद्धृत किया जाता है। इस प्रकार पठित समाज में इसका बहुत प्रचार है। परंतु इधर इसके जितने संस्करण निकले हैं, वे सभी संस्कृतविज्ञ विद्वानों द्वारा शुद्ध कर दिए गए हैं; पर वे लल्लूजीलाला के प्रेमसागर से कितने भिन्न हैं, यह इस संस्करण से मिलान करनेपर मालूम हो सकता है। उन्होंने संस्कृत के शब्दों को जो रूप दिया था, उनका इन नए संस्करणों में संस्कृत रूप ही दिया गया है, जिससे उस समय की शब्दरचना का ठीक ज्ञान नहीं हो सकता। इसी कमी को पूरा करने के लिये प्रेमसागर की वह प्रति प्राप्त की गई, जिसे स्वयं लल्लूजीलाल ने अपने यंत्रालय संस्कृत प्रेस में सन् १८१० ई० में प्रकाशित किया था। यह प्रति कलकत्ते की इम्पीरियल लाइब्रेरी से प्राप्त हुई थी, दूसरी प्रति जो सन् १८४२ ई० में प्रकाशित हुई थी, वह कलकत्ते के बोर्ड औव एक्ज़ामिनर्स के पुस्तकालय से मिली है। उस पर लिखा है 'श्रीयोगध्यानमिश्रेण परिष्कृत्य यथामति समंकितं लालकृतं प्रेमसागर पुस्तकं ॥'

पहली प्रति के टाइटिल पृष्ठ पर 'हिंदुवी' था, परंतु वह दूसरी प्रति के टाइटिल पृष्ठ पर परिष्कृत होने से हिन्दी हो गया है। संपादक ने यथामति इस प्रति में बहुत सा संशोधन कर दिया है। जब तीस बत्तीस वर्ष बाद ही के संस्करण में इतना संशोधन हो

गया था, तब आधुनिक संस्करणों के विषय में कुछ तर्क वितर्क करना व्यर्थ है। इन दोनों प्रतियों का नाम क्रमात् क और ख रखा गया है और इन दोनों में जहाँ कोई पाठांतर मिला है, वह फुटनोट में दे दिया गया है। इस संस्करण का मूल आधार प्रथम प्रति है; परंतु दूसरी से भी साथ साथ मिलान कर लिया गया है।

इन दोनों प्रतियों के देखने से ज्ञात होता है कि लल्लूजी ने विभक्तियों को प्रकृति से अलग रखना ही उचित समझा था और उनके अनंतर भी यह प्रथा बराबर सर्वमान्य रही। अब उन्हें मिलाकर लिखने की प्रथा अधिक प्रचलित हो रही है; यहाँ तक कि 'होने से' भी मिलाकर लिखा जाने लगा है। कविता में ऐसा करने से कुछ कठिनता हो सकती है जैसे 'मन का मनका फेर' में मिलाने से होगा। प्रथम प्रति में 'गये, आये' आदि में ये के स्थान पर ए का बहुधा प्रयोग किया गया है जो दूसरी प्रति में से एक दम निकाल दिया गया है। इन प्रतियों में पंचम वर्ण के स्थान पर अनुस्वार ही व्यवहार में लाया गया है।

इनके सिवा सन् १८६४ ई० की नवलकिशोर प्रेस द्वारा प्रकाशित एक प्रति मेरे पुस्तकालय में थी, जो उर्दू लिपि में छपी थी और इसे रूपांतरित करने का कार्य लाला स्वामीदयालजी ने किया था। यह प्रति रायल साइज़ के १७९ पृष्ठों की है और इसमें प्रायः बीस चित्र कृष्णलीला-संबंधी दिए हैं। इसमें प्रत्येक अध्याय के आरंभ उसके शीर्षक, जो इस संस्करण की विषय-सूची में दे दिए गए हैं, दिए हुए हैं। इस संस्करण का प्रथम अध्याय उर्दू प्रति में दो भागों में विभक्त है। छठे पृष्ठ के नए पैरा से प्रथम अध्याय आरंभ किया गया है और पूर्व अंश पर

अध्याय न देकर 'अथ कथा अरंभ' शीर्षक दिया गया है। पाठ भी बहुत शुद्ध है, पर इसे शुद्ध पढ़ने में वही सफल हो सकते हैं, जो उर्दू अच्छी तरह जानते हुए हिंदी भी अच्छी जानते हों। कहीं कहीं रूपांतरकार ने क्रिया पद को आगे पीछे हटाकर वाक्य को ठीक कर दिया है। इससे भी मिलान करने में सहायता ली गई है। *

प्रेमसागर की कथा कृष्णलीला अति प्रसिद्ध है और इस विषय की पुस्तकों को प्रत्येक हिंदू अनेक बार आवृत्ति कर लेने पर भी बड़े चाव से पढ़ा करना है। श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध में कृष्णलीला विस्तारपूर्वक नब्बे अध्यायों में कही गई है जिसका चतुर्भुज मिश्र ने दोहे चौपाइयों में अनुवाद किया था। इसी अनुवाद के आधार पर लल्लूजीलाल ने नब्बे ही अध्यायों में यह ग्रंथ खड़ी बोली में तैयार किया था। परंतु ब्रज भाषा का कितना मिश्रण इस ग्रंथ में रह गया है, वह इसके किसी पृष्ठ के पढ़ने से मालूम हो सकता है। ब्रज भाषा का मेल तो जो कुछ है सो ठीक ही है, कविता की तुकबंदी ने भी पीछा नहीं छोड़ा है और स्थान स्थान पर वह अपना स्वाद चखाती जाती है ; जैसे–वह वृषभ रूप बनकर आया है नीच, हमसे चाहता है अपनी मीच।

यह वह समय था जब पद्य से गद्य का प्रादुर्भाव हो रहा था इसीसे छोटे छोटे वाक्यों में इस तुकबंदी से पीछा नहीं छूटा था। दूसरा यह भी कारण था कि जिस ग्रंथ के आधार पर यह पुस्तक लिखी गई थी, वह भी ब्रजभाषा के पद्यों में था। इस से यह न समझना चाहिए कि इसके पहले गद्य के ग्रंथ नहीं थे।

---

* प्रथम संस्करण में इसका उल्लेख भूल से नहीं हुआ था।

इस धारणा को निर्मूल करने के लिये हिंदी गद्य साहित्य के विकास पर एक छोटा सा निबंध साथ ही दे दिया गया है। कहने का मतलब यह है कि वह खड़ी बोली के साहित्य का आरंभिक काल था। यद्यपि जटमल का गद्य खड़ी बोली में ही है, परंतु वे राजपूताने के रहनेवाले थे और लल्लूजी आगरा-निवासी थे तथा इनका आधार भी व्रज भाषा था, इसलिए इसपर उस भाषा का प्रभाव बना हुआ था। पं० सदल मिश्र, इंशाअल्लाह खाँ और मुं० सदासुख आदि व्रजवासी नहीं थे; इसी से उन लोगों की भाषा में व्रज भाषा का पुट प्रायः नहीं रह गया है।

साथ ही यह विचार उत्पन्न होता है कि दो तीन शताब्दी पहले हम लोग अनेक प्रान्तों में जिस भाषा में बातचीत करते थे, उसके रूप का किस प्रकार पता लग सकता है। इसका एक सरल उपाय है और उससे दृढ़ आशा है कि उस व्यावहारिक बोलचाल की भाषा का अवश्य बहुत कुछ पता लग सकेगा। यदि तीर्थ-स्थानों के पंडों की बहियाँ, समय और भाषा की दृष्टि से जाँची जायँ तो इससे उक्त भाषा के साथ साथ ऐतिहासिक घटनाओं पर भी बहुत कुछ प्रकाश पड़ने की आशा की जा सकती है। हिंदी के साहित्यप्रेमियों को, जो तीर्थस्थानों के रहनेवाले हैं, इस ओर दृष्टि देकर हिंदी साहित्य के इतिहास के इस अंग की भी पूर्ति करने में सहायक होना चाहिए।

भागवत की कृष्ण-कथा का माधुर्य भी दो बार अनुवादित होने से धुले हुए रंग के समान प्रेमसागर में फीका पड़ गया है। जितने दोहे चौपाइयाँ इस रचना में आई हैं, उनकी कविता बहुत ही साधारण श्रेणी की है और छंदोभंग का दोष भी है। इस

प्रकार यह ग्रंथ खड़ी बोली के आरंभिक काल का होने से और कृष्ण-कथा के कारण मान्य समझा जाता है; नहीं तो इसमें किसी प्रकार का गुण नहीं है।

अस्तु, जो कुछ हो, यह संस्करण अपने असली रूप में पाठकों के आगे रखा जाता है। अब यह उन्हीं लोगों पर निर्भर है कि वे इसे अपनाकर संपादन के कार्य-श्रम को सफल करें। इस संपादन कार्य में बा० श्यामसुंदरदासजी ने गुरुवत् मेरी बहुत सहायता की है, जिसके लिये यह लिखना कि मैं उनका अत्यंत अनुगृहीत हूँ, अनावश्यक है।

कृष्णजन्माष्टमी
सं० १९७९ } ब्रजरत्नदास

श्री लल्लूजीलाल का जीवन-चरित
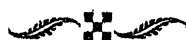
इनका नाम लल्लूलाल, लालचंद या लल्लूजी था और कविता में उपनाम लाल कवि था। ये आधुनिक हिंदी गद्य के और उसके आधुनिक स्वरूप के प्रथम लेखक माने जाते हैं। ये आगरा निवासी गुजराती औदीच्य ब्राह्मण थे और उस नगर के बलका की बस्ती गोकुलपुरा में रहते थे। इनके पिता का नाम चैनसुखजी था जो बड़ी दरिद्रावस्था में रहते थे और पुरोहिताई तथा आकाश-वृत्ति से किसी प्रकार अपना कार्य चलाते थे। इनके चार पुत्र थे जिनके नाम क्रमशः लल्लूजी, दयालजी, मोतीरामजी और चुन्नीलालजी थे। सब से बड़े लल्लूजीलाल थे जिनके जन्म का समय निश्चित रूप से अभी तक ज्ञात नहीं हुआ है; पर संभवतः इनका जन्म सं० १८२० वि० के लगभग हुआ होगा। इन्होंने घर ही पर कुछ संस्कृत, फ़ारसी और व्रज भाषा का ज्ञान प्राप्त कर लिया था। जब सं० १८४० वि० में इनके पिता स्वर्ग को सिधारे, तब अधिक कष्ट होने के कारण यह सं० १८४३ वि० में जीविका की खोज में मुर्शिदाबाद आए। यहाँ कृपासखी के शिष्य गोस्वामी गोपालदासजी के परिचय और सत्संग से इनकी पहुँच वहाँ के नवाब मुबारकुद्दौला के दरबार में हो गई। नवाब ने इनपर प्रसन्न होकर इनकी जीविका बाँध दी जिससे ये आराम से वहाँ सात वर्ष तक रहे। सं० १८५० वि०

में गोस्वामी गोपालदासजी की मृत्यु हो जाने और उनके भाई गोस्वामी रामरंग कौशल्यादासजी के बर्दवान चले जाने से इनका चित्त उस स्थान से ऐसा उचाट हुआ कि नवाब के आग्रह करने पर भी उनसे विदा हो ये कलकत्ते चले गए।

नाटौर की प्रसिद्ध रानी भवानी के दत्तक पुत्र महाराज रामकृष्ण से कलकत्ते में इनका परिचय हो गया और यह कुछ दिन उन्हींके आश्रय में वहाँ रहे। जब उनके राज्य का नए रूप से प्रबंध हो गया और उन्हें उनका राज्य भी मिल गया, तब यह भी उनके साथ नाटौर गए। कई वर्ष के अनंतर जब उनके राज्य में उपद्रव मचा और वह कैद किए जाकर मुर्शिदाबाद लाए गए, तब यह भी उनसे विदा होकर सं०१८५३ वि० में कलकत्ते लौट आए जहाँ कुछ दिन तक चितपुर रोड पर रहे। यहाँ के कुछ बाबू लोगों ने प्रकट में तो इनका बहुत कुछ आदर सत्कार किया, पर कुछ सहायता न की, क्योंकि वे लिखते हैं कि "उन्हों के थोथे शिष्टाचार में जो कुछ वहाँ से लाया था सो बैठकर खाया।" जब कई वर्ष इन्हें जिविका का कष्ट बना रहा, तब अंत में घबराकर जिविका की खोज में यह जगन्नाथपुरी गए। जब जगदीश का दर्शन करने गए थे, तब स्वरचित निर्वेदाष्टक सुनाकर उनकी स्तुति की थी, जिसका प्रथम दोहा यों है—

विश्वंभर बनि फिरत हौ, भले बने महराज।
हमरी ओर निहारि कै, लखौ आपुनो काज॥

संयोग से नागपुर के राजा मनियाँ बाबू भी उसी समय जगदीश के दर्शन को आए हुए थे और वे खड़े खड़े इनकी इस दैन्य स्तुति को जिसे यह बड़ी दीनता के साथ पढ़ रहे थे, सुनते

रहे। इससे उन्हें इनपर बड़ी दया आई और उन्होंने इनसे परिचय करके अपने साथ नागपुर लिवा जाने के लिये बहुत आग्रह दिखलाया। इनका विचार भी वहाँ जाने का पक्का हो गया था। पर अभी तक इनके अदृष्ट ने इनका साथ नहीं छोड़ा था जिससे यह उनके साथ नहीं जा सके और कलकत्ते लौट आए। विदा होते समय मनियाँ बाबू ने सौ रुपये भेंट देकर इनका सत्कार किया था।

इन्हीं दिनों साहबों के पठन पाठन के लिये जब कलकत्ते में एक पाठशाला खुली; तब इन्होंने गोपीमोहन ठाकुर से जाकर प्रार्थना की। उन्होंने अपने भाई हरिमोहन ठाकुर के साथ इन्हें भेजकर पादरी बुरन साहब से इनकी भेंट करा दी। उन्होंने आशा भरोसा तो बहुत दिया, पर एक महीना व्यतीत हो जाने पर भी जब उनका किया कुछ नहीं हुआ, तब दीवान काशीनाथ खत्री के छोटे पुत्र श्यामाचरण के द्वारा डाक्टर रसेल से एक अनुरोध-पत्र प्राप्त करके इन्होंने डाक्टर गिलक्राइस्ट से भेंट की जो उन दिनों फोर्ट विलियम कॉलेज के प्रिंसिपल थे। इन्हीं गिलक्राइस्ट साहब का, जो उस समय हिंदी और उर्दू भाषाओं का स्वरूप निश्चित कर रहे थे, सत्संग लल्लूलालजी की विख्याति का मूल कारण हुआ।

साहब ने इन्हें ब्रज भाषा की किसी कहानी को हिंदी गद्य में लिखने की आज्ञा दी और अर्थ-साहाय्य के साथ साथ इनके प्रार्थनानुसार दो मुसलमान लेखकों को, जिनका नाम मज़हरअली ख़ाँ विला और काज़िम अली जवाँ था, सहायतार्थ नियुक्त कर दिया। तब इन्होंने एक वर्ष (सं० १८५६ वि०) में परिश्रम करके चार पुस्तकों का ब्रज भाषा से रेख़ते की बोली में अनुवाद

किया। इन पुस्तकों के नाम सिंहासनबत्तीसी, बैतालपचीसी, शकुंतला नाटक और माधोनल हैं।

आगरे के तैराक बहुत प्रसिद्ध होते हैं और लल्लूजी भी वहाँ के निवासी होने के कारण तैरना अच्छा जानते थे। दैवात् एक दिन उन्होंने तट पर टहलते समय एक अँगरेज को गंगाजी में डूबते देखा। तब उन्होंने निडर होकर झटपट कपड़े उतार डाले और गंगाजी में कूद दो ही गोते में उसे निकाल लिया। वह अँगरेज ईस्ट इंडिया कंपनी का कोई पदाधिकारी था। उसने अपने प्राणरक्षक की पूरी सहायता की और इन्हें कुछ धन देकर छापाखाना खुलवा दिया। उसी के अनुरोध से फोर्ट विलियम कालेज में इनकी वि० सं० १८५७[1] में पचास रुपए मासिक की आजीविका लग गई। बस इसके अनंतर इनकी प्रतिष्ठा और ख्याति बराबर बढ़ती चली गई। उन्होंने अपने प्रेस में, जिसका नाम संस्कृत प्रेस रखा था, अपनी पुस्तकें छपवाकर बेचना आरंभ कर दिया। कंपनी ने भी इस प्रेस के लिये बहुत कुछ सहायता दी जिससे इसमें छपाई का अच्छा प्रबंध हो गया। यह यंत्रालय पहले पटलडाँगा में खोला गया था। इनके प्रेस की पुस्तकों पर सर्वसाधारण की इतनी श्रद्धा हो गई थी कि इनकी प्रकाशित रामायण ३०) ४०), ५०) को और प्रेमसागर १५), २०), ३०) को बिक जाते थे। इनके छापेखाने के छपे हुए ग्रंथों को एक शताब्दी से अधिक

---

१ विहारीविहार और सरस्वती के द्वितीय वर्ष की २ री संख्या में सं० १८५७ वि० को सन् १८०४ ई० माना है, जो अशुद्ध है। सन् १८०० ई० चाहिए। देखिये जी. ए. ग्रिअर्सन संपादित लालचंद्रिका पृ० १२।

होगया, पर वे ऐसे उत्तम, मोटे और सफेद बाँसी कागज पर छपे थे कि अब तक नए और दृढ़ बने हुए हैं।

लल्लूजी चौबीस वर्ष तक फोर्ट विलियम कालेज में अध्यापक रहे और वि० सं० १८८१ में पेंशन लेकर स्वदेश लौटे। वे अपना छापाखाना भी आते समय नाव पर लादकर साथ ही आगरे लाए और वहाँ उसे खोला। आगरे में इस छापेखाने को जमाकर ये कलकत्ते लौट गए और वहीं इनकी मृत्यु हुई। इनकी कब और कैसे मृत्यु हुई, इसका वृत्त इनके जन्म के समय के समान निश्चित रूप से ज्ञात नहीं हुआ। परंतु पेंशन लेते समय इनकी अवस्था लगभग ६० वर्ष के हो चुकी थी।

यद्यपि इनके भाइयों को संतान थी, पर ये निस्संतान ही रहे। इनकी पत्नी का इन पर असाधारण प्रेम था और वे इनके कष्ट के समय बराबर इनके साथ रहीं। ये वैष्णव तो अवश्य ही थे, पर किस संप्रदाय के थे, सो ठीक नहीं कहा जा सकता। संभवतः ये राधावल्लभीय ज्ञात होते हैं।

इतना तो स्पष्ट ही विदित है कि ये कोई उत्कट विद्वान् नहीं थे और न किसी विद्या के आचार्य होने का गर्व ही कर सकते थे। संस्कृत का बहुत कम ज्ञान रखते थे, उर्दू और अंगरेजी भी कुछ कुछ जानते थे, पर व्रज भाषा अच्छी जानते थे। कवि भी ये कोई उच्च कोटि के नहीं थे। परंतु जिस समय ये अपनी लेखनी चला रहे थे, उस समय ये वास्तव में ठेठ हिंदी का स्वरूप स्थिर कर रहे थे। हिंदी गद्य के कारण ही ये प्रसिद्ध और विख्यात हुए हैं। कुछ लोगों का यह कथन है कि यदि येआजक ताल होते

कदापि इतने यश के भागी न होते। पर यह तो न्यूटन आदि जगत्प्रसिद्ध विद्वानों के लिये भी कहा जा सकता है।

लल्लूजीलाल के ग्रंथों की सूची

(१) **सिंहासनबत्तीसी**–इस पुस्तक में प्रसिद्ध राजा विक्रम के सिंहासन की ३२ पुतलियों की कहानियाँ हैं, जिसे सुंदरदास ने संस्कृत से ब्रज भाषा में लिखा था। उसी का वि० सं० १८५६ में लल्लूजी ने हिंदी में अनुवाद किया। उदाहरण—खुदा ने जब से उसे दुनिया के परदे पर उतारा सब बेसहारों का किया सहारा और रूप उसका देखकर चौदहवीं रात के चाँद को चकाचौंधी आती, बड़ा चतुर सुघर और गुणी था, अच्छी जितनी बात सब उसमें समाई थीं।

(२) **बैतालपचीसी**—संस्कृत में शिवदास कृत वेताल-पंचविंशतिका नामक ग्रंथ है, जिसका सुरति मिश्र ने ब्रज भाषा में अनुवाद किया था। उसी का हिंदी अनुवाद मजहरअली विला की सहायता से हुआ था। उदाहरण—इबतिदाय दास्तान यों है कि मुहम्मद शाह बादशाह के ज़माने में राजा जैसिंह सवाई ने जो मालिक जैनगर का था सुरति नामक कवीश्वर से कहा कि बैताल-पचीसी को जो जबान संस्कृत में है तुम ब्रजभापा में कहो। तब मैंने बमूजिब हुकुम राजा के ब्रज की बोली में कही। सो हम उसको ज़बान उर्दू में छापा करते हैं जो खास और आम के समझने में आवै।

(३) **शकुन्तला नाटक**—संस्कृत से हिंदी अनुवाद।

(४) **माधोनल**—(माधवानल) नामक संस्कृत की पुस्तक सं० १५८७ वि० की लिखी हुई बंगाल एशाटिक सोसाएटी में सुरक्षित है। इसी के आधार पर सं० १७५५ वि० के लगभग मोतीराम कवि ने व्रज भाषा में एक कहानी लिखी थी, जिसका यह हिंदी अनुवाद है।

(५) **माधवविलास**—रघुराम नामक गुजराती कवि के सभासार और कृपाराम कवि द्वारा पद्मपुराण से संग्रहीत योगसार नामक दोनों ग्रंथों को मिलाकर लल्लूजी ने माधवविलास नाम से इस पुस्तक को पहले छपवाया। इस पुस्तक में गद्य पद्य दोनों हैं और यह व्रज भाषा में है। रघुराम नागर की एक अन्य रचना माधव-विलास शतक खोज में मिली है।

(६) **सभाबिलास**—यह एक प्रसिद्ध पुस्तक है जिसमें नाना प्रकार के नीति विषयक पद्यों का संग्रह है।

(७) **प्रेमसागर**—सं० १६२४ वि० में चतुर्भुजदास जी ने व्रज भाषा में श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध का दोहों और चौपाइयों में अनुवाद किया था। इसी ग्रंथ के आधार पर वि० सं० १८६० में लल्लूजी लाल ने प्रेमसागर की रचना की। यह भागवत का पूर्ण अनुवाद न होकर उसका संक्षिप्त रूप है। इसका प्रथम संस्करण वि० सं० १८६७ में प्रकाशित हुआ था। यह एक प्रसिद्ध ग्रंथ है और पाठ्य पुस्तकों में इसका कुछ न कुछ अंश अवश्य संगृहीत रहता है।

(८) **राजनीति**—व्रज भाषा में हितोपदेश का सं० १८६९ वि० में अनुवाद करके यह नाम रखा था।

(९) **भाषा क़ायदा**—हिंदी भाषा का व्याकरण। उर्दू में

छोटे व्याकरण को कायदा कहते हैं। ऐसा नाम रखने से यह ज्ञात होता है कि इसके प्रणयन में इन्हें मुसलमान लेखकों से सहायता मिली होगी। यह ग्रंथ छपा था, पर प्रकाशित नहीं हो सका। इसकी एक प्रति बंगाल एशाटिक सोसाएटी में सुरक्षित है।

(१०) लतायफ़ हिंदी—उर्दू, हिंदी और ब्रज भाषा की १०० कहानियों का संग्रह है। छोटी छोटी कहानियों और चुटकुलों को लतीफ कहते हैं, जिसका बहुवचन लतायफ़ है। यह न्यू-एन्साइक्लोपीडिया-हिंदुस्तानी के नाम से प्रकाशित हुआ था।

(११) लालचंद्रिका—सं० १८७५ वि० में अनवरचंद्रिका अमरचंद्रिका, हरिप्रकाश टीका, कृष्ण कवि की कवित्तवाली टीका, कृष्णलाल की टीका, पठान सुलतान की कुंडलियों-वाली टीका और संस्कृत टीका की सहायता से उन्होंने महाकवि बिहारीलाल की सतसई पर इस नाम की गद्य टीका तैयार की। इसमें नायिका भेद और अलंकार भी दिए हैं और इसे आज़मशाही क्रम के अनुसार रखा है। डाक्टर ग्रियर्सन ने इसे संपादित करके सं० १९५२ वि० में पुनः प्रकाशित किया।

उदा०—उमग के, आशय और ही लिये, बात करती थी। सो रहीं अवकहीं बातें। देखकर खिसानी नायक की आँखें, करीं रिस भरीं आँखै नायका ने।

———

गद्य साहित्य का विकास

मनुष्य जिसके द्वारा अपने विचारों को एक दूसरे पर प्रकट करता है, उसे बोली या भाषा कहते हैं। भाषा की यह परिभाषा एक प्रकार से रूढ़ि सी मान ली गई है, यद्यपि इसके अंतर्गत वे संकेतादि भी आ जाते हैं जिनसे आपस में बहुत कुछ विचार प्रकट किए जाते हैं या किए जा सकते हैं; परंतु वे इस परिभाषा के अंतर्गत नहीं समझे जाते। इन भाषाओं का नामकरण प्रायः उन देशों, प्रातों या जातियों के नाम पर किया जाता है जिन देशों, प्रांतों या जातियों में वे बोली जाती हैं। संसार की लगभग सभी भाषाओं का नाम किसी देश या जाति के नाम पर होता है।

आपस में बात-चीत करते या आवश्यकतानुसार कुछ बोलते समय पद्य का कभी व्यवहार नहीं किया जाता, सर्वदा गद्य में ही विचार प्रकट किया जाता है। परंतु यह एक आश्चर्य की बात है कि जिस किसी भाषा के साहित्य को उठाकर देखिए, सब का आरंभ पद्य से ही हुआ है। क्या उन प्रतिभाशाली आदि कवियों के मस्तिष्क में छंद ही भरे थे? क्या वे छंदों में ही बातचीत करते थे? हर एक साहित्य के आरंभिक ग्रंथों में बहुधा देखा जाता है कि उनमें मनुष्यों के धार्मिक विचारों, हर्ष, शोक आदि मानसिक विकारों और दैवी चरित्रों का वर्णन होता है। कविता मनुष्य का हार्दिक उद्गार होने के कारण पहले ही निकल पड़ती है। इन विषयों के लिए पद्य ही अधिक उपयुक्त है और कविता ही के द्वारा

धार्मिक विचारों में प्रोत्साहन, मानसिक विकारों में उत्तेजना और देवताओं पर श्रद्धा झटपट उत्पन्न कराई जा सकती है। गहन विषयों के ग्रंथ भिन्न भिन्न देशों या जातियों की सभ्यता के अनुगामी होते हैं। ज्यों ज्यों कोई जाति अधिक उन्नति करती जाती है, त्यों त्यों उसके साहित्य के विषय भी अधिक गहन होते जाते हैं। कुछ समय पहले जिस एक शब्द से एक विषय के सब शास्त्रों का बोध हो जाता था, उससे अब उस विषय की किसी एक शाखा मात्र का बोध होता है। इन गहन विषयों के लिए जब गद्य की आवश्यकता पड़ती है, तब उसकी उत्पत्ति आप से आप हो जाती है।

हिंदी साहित्य में भी यही हुआ है। पद्य जो अस्वाभाविक है वह तो पहिले ही बिना प्रयत्न के बन गया; पर जो स्वाभाविक और नित्यप्रयुक्त है, उसे बनाने का अभी तक प्रयत्न होता जा रहा है। हिंदी कविता का आरंभ-काल तो आठवीं शताब्दी से माना जाता है और गद्य का जन्म हुए केवल एक शताब्दी माना गया है। इस पर भी अभी इस गद्य का स्वरूप पूर्ण रूप से निश्चित और सर्वग्राह्य नहीं हुआ है। कोई उसे अपने देश के अलंकारों से सजाना चाहता है तो कोई उसे फारस के अलंकारों और वस्त्रों से आच्छादित करना चाहता है। पद्य में व्रज भाषा, अवधी, खड़ी बोली आदि का जो झमेला है, वही बहुत है। फिर गद्य को जिसे बहुत सा रास्ता तै करना है, क्यों व्यर्थ इतनी ड्रिल कराई जाती है, यह नहीं कहा जा सकता।

हिंदी की उत्पत्ति के विषय में अभी तक यही निश्चित हुआ है कि यह प्राकृत के रूपांतर अपभ्रंश अर्थात् प्राचीन हिंदी से बिगड़ कर बनी है। अब यह देखना चाहिए कि यह हिंदी शब्द कहाँ से

आया और इसकी क्या व्युत्पत्ति है। पश्चिम के विदेशियों ने भारत वर्ष का नाम हिंद या हिंदोस्तान रखा। मुसलमानों ने अपनी मनोवृत्ति के अनुसार हिंदू या हिंदी शब्द का अर्थ चोर, डाकू या दास कर दिया, शायद इस कारण कि जब उनका भारत पर अधिकार हुआ तब उन्होंने इस देश के निवासियों को दास कहना उचित समझा। फारसी में जादूगरनी के लिए 'हिंदूजन' शब्द का प्रयोग होता है जिसका अर्थ 'हिंदू स्त्री' है। तात्पर्य्य यह है कि हिंद या इससे बने हुए शब्दों का घृणित अर्थ कर दिया गया। इसी हिंद या हिंदुओं की बोली हिंदुवी या हिंदी कहलाई। अब यह विचारणीय है कि मुसलमानों और हिंदुओं के संपर्क के पहिले यह शब्द बन चुका था जिसका मुसलमानों ने पीछे बुरा अर्थ अपने कोष में लिख दिया या उसी समय गढ़ा गया। यह बात सिद्ध है कि यह शब्द मुहम्मद साहब से हजारों वर्ष पहले प्राचीन पारसियों के द्वारा प्रयुक्त हुआ जो यहाँ के 'स' का उच्चारण प्रायः 'ह' के समान किया करते थे। वे सिंधु नद के किनारे के प्रदेश को 'हिंद' और वहाँ के निवासियों को हिंदी' कहा करते थे। उनके चित्त में इन शब्दों का कोई बुरा अर्थ नहीं था। इस देश के रहनेवालों पर घृणा रखने के कारण मुसलमानों ने बाद को इसका घृणित अर्थ रख लिया।

निर्विवाद रूप से यह मान लिया गया है कि हिंदी साहित्य के गद्य का और ईसवी उन्नीसवीं शताब्दी का जन्म साथ ही हुआ है और हिंदी गद्य के जन्मदाता श्रीलल्लूजी लाल हुए हैं। परंतु देखा जाता है तो ये दोनों बातें ठीक नहीं जान पड़ती हैं। इनके कई शताब्दी पहिले की गद्य पुस्तकें वर्तमान हैं, यद्यपि वे ब्रज भाषा,

अवधी आदि में होने से खड़ी बोली, रेख्ते की बोली या हिंदुवी की कक्षा में नहीं आ सकतीं। तब यदि लल्लूजी खड़ी बोली के गद्य के जन्मदाता कहे जायँ तो यह भी अयुक्त होगा, क्योंकि उस पद के लिए और भी कई अधिकारी खड़े हैं, जिनमें पं० सदल मिश्र, मुं० सदासुखलाल और हकीम इंशाअल्लाखाँ मुख्य हैं। साथ ही यह भी विचारणीय है कि लल्लूजी के प्रेमसागर आदि ग्रंथों के लिखे जाने के लगभग पचास वर्ष अनंतर तक कोई दूसरी उत्तम गद्य पुस्तक नहीं प्रस्तुत हुई। कदाचित् इसी कारण भारतेंदुजी मृत हिंदी को जिलानेवाले या आधुनिक हिंदी के जन्मदाता कहे जाते हैं।

गद्य की भाषा का आरंभिक विकास दिखलाने के अनंतर अब लल्लूजी के समय तक के गद्य लेखकों का संक्षिप्त जीवन-वृत्तांत उनकी भाषा के उदाहरणों के साथ दिया जायगा।

किसी भाषा का समय निर्णय करना कठिन होता है, क्योंकि मनुष्यों के जन्म आदि की तरह किसी दिन या वर्ष में उसकी उत्पत्ति होना नहीं बतलाया जा सकता। प्रत्येक भाषा अपने से प्राचीनतर भाषा का रूपांतर मात्र होती है; और यह रूपांतर इतने लंबे समय में होता है कि वह समय अनिश्चित रूप में ही कहा जा सकता है। मनुष्य के जन्म का समय घड़ी पल तक में बतलाया जा सकता है, परंतु उसकी अवस्था के किसी रूपांतर का समय निश्चित नहीं हो सकता कि कब बोलने लगा या कब युवा से वृद्ध हुआ। हिंदी का आरंभिक काल आठवीं शताब्दी के साथ आरंभ हुआ माना गया है। बोल-चाल और व्यवहार में हिंदी इससे पहिले ही प्रचलित हो गई होगी; फिर कुछ परिपक होने पर

वह कविता की भाषा बनाई गई होगी। मौखिक गद्य के आरंभ होने के कई शताब्दियों के अनंतर लिखित गद्य का आरंभ होना निश्चित समझना चाहिए। हिंदी गद्य का सबसे प्राचीन नमूना महाराज पृथ्वीराज और रावल समरसिंह के तेरहवीं शताब्दी के दानपत्रों में मिलता है—यदि वे सच्चे कहे जा सकें तो। पंद्रहवीं शताब्दी के आरंभ में महात्मा गोरखनाथ जी का होना माना जाता है जो एक मत के प्रवर्तक और प्रसिद्ध महात्मा हो गए हैं। इन्होंने हिंदी में कई पद्य की और एक गद्य की पुस्तक लिखी है। इसके अनंतर दो शताब्दियों तक की किसी गद्य पुस्तक का पता अभी तक नहीं चला है।

वस्तुतः हिंदी गद्य का आरंभ सोलहवीं शताब्दी में हुआ मानना चाहिए, क्योंकि उस समय के प्रणीत ग्रंथ प्राप्त हैं और उसके अनंतर गद्य पुस्तकों का प्रणयन बराबर जारी रहा। यह काल हिंदी के लिए बड़े गौरव का है जिसमें वैष्णव भक्तों ने अपने हरिभजन से इसके साहित्य-भंडार को पूर्ण किया है। श्री महाप्रभु वल्लभाचार्य जी का वि० सं० १५३५ में प्रादुर्भाव हुआ था। इनकी और इनके पुत्र गोस्वामी विट्ठलनाथजी की अमृतमयी शिक्षाओं का हिंदी साहित्य पर कितना प्रभाव पड़ा, यह प्रत्यक्ष ही है। केवल एक सूरसागर की ही तरंगों से किसी भाषा का साहित्य-रत्नाकर परिपूर्ण समझा जा सकता है। इसी समय महाप्रभुजी के पुत्र गो० विट्ठलनाथजी ने हिंदी गद्य की आदि पुस्तक शृंगाररसमंडन लिखी है। गो० विट्ठलनाथजी के पुत्र गो० गोकुलनाथजी ने अपने दादा महाप्रभुजी के ग्रंथ सिद्धांतरहस्य पर सिद्धांतरहस्यवार्ता नामक टीका लिखी। उन्होंने वनयात्रा, चौरासी

वैष्णवों की वार्ता और दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता नामक तीन ग्रंथ और लिखकर हिंदी गद्य की नींव दृढ़ कर दी। इनमें अंतिम पुस्तक के इनकी होने में शंका है। अष्टछाप के कवि नंद-दासजी ने दो गद्य ग्रंथों की रचना की; और इन्हीं महात्माओं के समसामयिक हरिरायजी भी थे, जिन्होंने गद्य में तीन पुस्तकें लिखीं।

सं० १६८० में जटमल कवीश्वर ने गोरा-बादल की कथा नामक पुस्तक पद्य में लिखी जिसके अनुवाद में खड़ी बोली का अधिक मेल है। पंडित वैकुंठमणि शुक्ल ने दो गद्य ग्रंथों का ब्रज-भाषा में प्रणयन किया। अठारहवीं शताब्दी के आरंभ में दामोदरदास जी ने मार्कण्डेय पुराण का राजपूतानी भाषा में अनुवाद किया। सुरति मिश्र ने भी इसी समय वैतालपचीसी लिखी। भगवानदास ने गीता पर भाषामृत टीका की, अमरसिंह ने सत-सई पर अमरचंद्रिका नामक और अग्रनारायणदास और वैष्णव-दास ने भक्तमाल पर भक्तिरसबोधिनी टीकाएँ लिखीं। उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ में रसराज पर बख्तेश की टीका हुई।

विक्रमी उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में हिंदी-गद्य-साहित्य का आरंभ हुआ है, ऐसा कहना पूर्वोक्त गद्य ग्रंथों के विवरण से भ्रममूलक सिद्ध हो गया। यदि यह कहा जाय कि पूर्वोक्त पुस्तकों की भाषा खड़ी बोली नहीं थी तो इसका उत्तर यह है कि गोरा-बादल की कथा की भाषा खड़ी बोली ही कही जायगी। पर उस पुस्तक की रचना हुए लगभग तीन शताब्दियाँ व्यतीत हो चुकी थीं, इसलिए खड़ी बोली के गद्य का उन्नीसवीं शताब्दी में जन्म कहा जाता है। अब यह विचारणीय है कि इनका जन्मदाता कौन

है। अभी तक एक प्रकार से यह मत सर्वग्राह्य है कि खड़ी बोली के जन्मदाता लल्लूजी लाल हैं। परंतु अब यह भी कहना भ्रमोत्पादक और अयुक्त है।

मुंशी सदासुखलाल का कोई ग्रंथ अब तक प्राप्त नहीं है, पर उनका एक लेख भाषासार नामक पुस्तक में संगृहीत है। उसके संग्रहकर्ताओं का कथन है कि वह प्रेमसागर की रचना के बीस पचीस वर्ष पहिले का लिखा हुआ है। सैयद इंशाअल्लाह दूसरे गद्य लेखक हैं जिनकी 'रानी केतकी की कहानी' नामक पुस्तक ठेठ हिंदी में प्रेमसागर के कुछ पहिले प्रणीत हुई थी। इन दोनों लेखकों ने किसी की आज्ञा से लेखनी नहीं चलाई थी। वे अपनी इच्छा से खड़ी बोली की रचना कर रहे थे। दूसरे लेखक ने अपनी पुस्तक की भूमिका में यों लिखा है कि 'कोई कहानी ऐसी कहिए कि जिसमें हिंदुवी छुट और किसी बोली की पुट न मिले, तब जाके मेरा जी फूल की कली के रूप खिले, बाहर की बोली और गँवारी कुछ उसके बीच में न हो' इस लेखक ने अपना जो आदर्श निश्चित करके लेखनी चलाना आरंभ किया था, उसे अंत तक निबाहा।

पं० लल्लूजीलाल और पं० सदल मिश्र ने एक ही समय एक ही मनुष्य की आज्ञा से भाषा लिखना आरंभ किया था। लल्लूजी की भाषा में ब्रजभाषा का बहुत मेल है और वे कविता का भी पुट बराबर देते चले गए हैं। सदल मिश्र की भाषा अधिक परिमार्जित और इन दोषों से मुक्त है। अब इन सम-सामयिक ग्रंथकारों में किसी एक को जन्मदाता के पद पर प्रतिष्ठित करना अन्याय मात्र होगा। इससे अब इस पद को ही हटा देना नीति-

युक्त है। विचार करने पर सैयद इंशाअल्लाह खाँ को प्रातः तारा अर्थात् शुक्र (असुरों के गुरु), सदल मिश्र को उषाकाल और लल्लूजी को सुप्रभात मान लेना पड़ेगा। मुं० सदासुखलाल की कोई प्रणीत पुस्तक प्राप्त होने पर उन्हें भी कोई स्थान देना आवश्यक होगा।

महात्मा गोरखनाथ

ये प्रसिद्ध मत-प्रवर्तक हो गए हैं। ये मत्स्येंद्रनाथ या मुछंदर नाथ के शिष्य कहलाते हैं और इनके मतावलंबी अभी तक पाए जाते हैं। इनका समय खोज की रिपोर्ट में वि० सं० १४०७ दिया है। इनके बनाए हुए ग्रंथों की संख्या लगभग बीस है, पर इनमें कौन कौन इनकी रचना है और कौन इनके भक्तों की, सो ठीक नहीं कहा जा सकता। इनका समय भी अभी तक निश्चित नहीं है। इनका मंदिर गोरखपुर में है जहाँ ये पूजे जाते हैं। इनका एक ग्रंथ सिष्ट प्रमाण गद्य में है जिसके कारण ये गद्य के प्रथम लेखक कहे जा सकते हैं। परन्तु शिष्य जन भी बहुधा अपनी रचनाओं को गुरु के नाम पर प्रसिद्ध करते हैं, इससे यह पद उन्हें देते शंका होती है।

उदा०—

पराधीन उपरांति बंधन नांही, सुआधीन उपरांति मुकति नांही' 'चाहि उपरांति पाप नांही, अजाहि उपरांति पुनि नांही। सुसबद उपरांति पोस नांही। नारायण उपरांति ईसर नाहीं।'

गोस्वामी श्रीविट्ठलनाथजी

ये महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यजी के छोटे पुत्र थे। इनका जन्म पौष शुक्ल ९ सं० १५७२ वि० को चुनार में हुआ था। यह

और इनके पिता कृष्णभक्ति-प्रचार के प्रधान उन्नायकों में थे और हिंदी के ही द्वारा इन लोगों ने अपनी सदुपदेशरूपी अमृतमयी धारा को प्रवाहित किया था। ये लोग स्वयं कविता नहीं करते थे, पर इनके शिष्यों में सूरदास, नंददास आदि ऐसे प्रसिद्ध कवि हो गए हैं। इन्होंने अपने पिता के चार शिष्यों सूरदास, परमानंद-दास, कुंभनदास और कृष्णदास को और अपने चार शिष्यों गोविंद स्वामी, छीतस्वामी, चतुर्भुजदास और नंददास को छाँट-कर अ छाप में रखा था। इनके सात पुत्र हुए जो सभी विद्वान् और भगवद्भक्त थे। इनके अनंतर सात गद्दियाँ स्थापित हुईं। गो० विट्ठलनाथजी का माघ कृ० ७ सं १६४२ वि० को स्वर्गवास हुआ। कैटेलोगस कैटालोगोरम के अनुसार इन्होंने ४९ ग्रंथों की संस्कृत में रचना की है। हिंदी में शृंगाररसमंडन नामक एक गद्य-ग्रंथ का प्रणयन किया है जो वास्तव में हिंदी साहित्य का प्रथम गद्यग्रंथ है। यह ब्रज भाषा में है।

उदा०—

'प्रथम की सखी कंहतु है। जो गोपीजन के चरण विषै-सेवक की दासी करि जो इनको प्रेमामृत में डूबि कै इनके मंद हास्य ने जीते हैं। अमृत समूह ताकरि निकुंज विषै शृंगार रस श्रेष्ठ रसना कीनो सो पूर्ण होत भई।'

गोस्वामी श्रीगोकुलनाथजी

ये श्रीवल्लभाचार्यजी महाप्रभु के पौत्र और गोस्वामी विट्ठल नाथजी के पुत्र थे। ये सात भाई थे जिनके नाम श्रीगिरधरजी, श्रीगोविंदजी, श्रीबालकृष्णजी, श्रीगोकुलनाथजी, श्रीरघुनाथजी,

श्रीयदुनाथजी, और श्रीघनश्यामजी थे। इन्होंने 'चौरासी बैष्णवों की वार्ता,' '२५२ बैष्णवों की वार्ता' और 'वनयात्रा' नामक तीन पुस्तकें लिखी हैं। प्रथम दोनों पुस्तकों से तत्कालीन कई महात्माओं और कवियों के समय निश्चित करने में सहायता मिली है। इनमें द्वितीय पुस्तक जाँच करने पर इनकी रचना नहीं ज्ञात होती। वनयात्रा को मिश्रबंधुविनोद में महाप्रभु की रचना लिखा है, परंतु वह गोस्वामी विट्ठलनाथजी की प्रथम यात्रा और मौखिक कृति होने पर भी श्रीगोकुलनाथजी द्वारा पुस्तक रूप में परिणत हुई है। इसमें ब्रज की चौरासी कोस की परिक्रमा का वर्णन है। गोस्वामीजी ने साधारण ब्रज भाषा में भक्तों के चरित्र और तीर्थों के वर्णन किए हैं।

उदा०—(वनयात्रा से)

सं० १६०० भाद्रपद वदी १२ को सैन आरती उतारि पाछें श्रीगुसाईंजी मथुरा पधारे ब्रज की यात्रा करिबे कों सो तहाँ प्रथम श्रीमथुराजी में श्रीकृष्णजी को प्रागट्य भयों है तहाँ कारागृह की ठौर है, पोतरा कुंड के मंदिर के पिछवारे होय के तहाँ श्रीमथुराजी में विश्रांतघाट है तहाँ श्रीआचार्यजी महाप्रभु की बैठक है तहाँ कंस को मारि कै श्रीकृष्ण ने विश्राम कियो है तहाँ श्रीठाकुरजी स्नान करिकै श्रम निवारण कियो है तहाँ सब मथुरा के ब्रजभक्तन ने श्रीठाकुरजी की बिनती कीनी है तातें विश्रांतघाट मुख्य है।'

नंददासजी

ये अष्टछाप के कवि थे और गोस्वामी तुलसीदासजी के गुरु-भाई थे। ये स्वामी विट्ठलनाथजी के शिष्य तथा कान्यकुब्ज ब्राह्मण

थे । २५२ वैष्णवों की वार्ता में इनका हाल लिखा है । इनकी कविता प्रभावोत्पादक और मधुर है । इनके बनाए हुए निम्नलिखित ग्रंथों का पता लगा है—सिद्धांत पंचाध्यायी, रासपंचाध्यायी, रुक्मिणी मंगल, अनेकार्थमंजरी, रूपमंजरी, रसमंजरी, विरहमंजरी, नाम-मंजरी, नासकेतु पुराण गद्य, श्यामसगाई, सुदामा चरित्र, भ्रमर-गीत और विज्ञानार्थप्रकाशिका नामक ग्रंथ की टीका । इनकी रचना में दो गद्यग्रंथ हैं, पर अप्राप्य हैं; इससे उदाहरण नहीं दिया ।

गंग भाट

सं० १६२७ वि० में इन्होंने 'चंद छंद बरनन की महिमा' नाम की एक पुस्तक खड़ी बोली के गद्य में लिखी । इसमें १६ पृष्ठ हैं । दो वर्ष अनंतर विष्णुदास ने प्रतिलिपि की थी ।
उदा०—

'इतना सुनके पातशाहाकी श्रीअकबरशाहाजी आध सेर सोना नरहरदास चारण को दिया इनके डेढ़ सेर सोना हो गया । रास बंचना पूरन भया अमकास बरकास हुआ जीसका संवत १६२७ का मेती मधुमास सुदी १३ गुरुवार के दिन पूरन भये ।'

हरिराय जी

गो० विट्ठलनाथजी तथा गोकुलनाथजी के समकालीन ज्ञात होते हैं । इनकी निम्नलिखित पुस्तकों का पता लगा है—श्रीआ-चार्यजी महाप्रभून को द्वादस निजवार्ता, श्रीआचार्यजी महाप्रभून के सेवक चौरासी वैष्णवों की वार्ता, श्रीआचार्यजी महप्रभून की निजवार्ता वा घरू वार्ता, ढोलामारू की वार्ता, भागवती के लक्षण,

द्विदलात्मक स्वरूपविचार, गद्यार्थ भाषा, गोसाईंजी के स्वरूप के चिंतन को भाव, कृष्णावतार स्वरूप निर्णय, सातों स्वरूप की भावना और वल्लभाचार्यजी के स्वरूप को चिंतन भाव।

उदा०—

'और जो गुसाईंजी कही जो कृष्णदास ने तीन वस्तु अच्छी कीनी। जो एक तो श्रीनाथजी को अधिकार कियो सो ऐसो कियौ जो कोई दूसरो कोई न करैगो। और दूसरे कीर्तन किए सो अति अद्भुत किए जो कोई न करैगो। सो तातें वे कृष्ण श्रीआचार्य जी महाप्रभून के ऐसे कृपापात्र भगवदीय हते।'

अज्ञात

महाप्रभु वल्लभाचार्य जी से कुंभनदास जी को संबोधित कर पुष्टि मार्ग के सिद्धांत अर्थात् युगल मूर्ति की सेवा-विधि कहलाई गई है। इसका रचना-काल अनुमानतः अष्टछाप ही का हो सकता है। हस्तलिखित प्रति में रचना तथा विधि दोनों का समय नहीं दिया है।

उदा०—

तब सब वैष्णवन की आज्ञा ले के कुंभनदास श्रीमहाप्रभुजी सों पूछन लागे 'हो महाप्रभुजी हमको धर्म को स्वरूप-सिद्धांत कहो जातें श्रीठाकुर जी की सेवा निर्विघ्नता सों सेविये। आचार क्रिया कहो, देसकाल कहो, लौकिक व्योहार कहो।

प्रेमदास

यह श्रीहित-हरिवंशजी के शिष्य हरिराम जी व्यास के शिष्य थे। इन्होंने 'हित चौरासी' की गद्य में विस्तृत टीका लिखी है।

इनका समय सत्रहवीं शताब्दी विक्रमीय का मध्य है। यह कवि भी थे।

उदा०—

श्रीवृंदावन विषें शरद रितु अरु वसंत रितु विमिश्रित सदा रहै है। श्रीवृंदावन सदा फूल्यौ रहै है सो तो वसंत को हेत है अरु सदा निर्मल रहत हैं सो सरद को हेत है। औरहू जो रितु हैं सो अपने समय पर सब ही आवें हैं। एक समै श्री प्रीतम जी रात्रि को हिरनि की निकुंज विषे विराजमान हे तहाँ वसंत मिश्रित सरद रितु हे।

अज्ञात

भुवनदीपिका नामक ग्रंथ के कर्ता का नाम, समय आदि का पता नहीं चलता। प्राप्त प्रति सं० १६७१ वि० की लिखी हुई है, इस कारण इसकी रचना इस संवत् के पूर्व की है। यह ज्योतिष विषयक ग्रंथ है जिसमें संस्कृत मूल और भाषा टीका सम्मिलित है।
उदा०—

'जउ अस्त्री पुत्र तणी प्रछा करई। आठमइ नवमइ स्थानि एकलो शुक्र होई तउ स्वभाव रमतो कहिवउ। जउ बिजर शुभ ग्रह होई तउ संभोग सुखई कहिवउ।'

मनोहरदास निरंजनी

इन्होंने ज्ञानपूर्ण वचनिका, सप्तप्रश्न निरंजन, ज्ञानमंजरी, षट्प्रश्नी वेदांत परिभाषा और षटप्रदर्शनीनिर्णय नामक ग्रंथ लिखे हैं। सं० १७०७ के आसपास ये पुस्तकें लिखी गई हैं।

उद०—

'ग्रंय की आदि इष्ट देवता है ताको स्वरूप दिखावत है अरु ता ग्रंथ तीनि विघन ता सिधि करिबै को हिरदै माँग ताकी स्वरूप तवन करिकै नमस्कार करतु है।'

महाराज जसवंतसिंह

मारवाड़-नरेश महाराज गजसिंह के द्वितीय पुत्र थे। इनका जन्म सं० १६८२ में और मृत्यु संवत् १७३८ वि० में हुई थी। यह सं० १६९५ में गद्दी पर बैठे, पर मुगल सम्राट शाहजहाँ और औरंगजेब के लिए जन्म भर इन्हें युद्ध करते ही बीता। ये स्वदेश में छुट्टी लेकर कुछ ही दिन रह सके थे। इतना कम समय मिलने पर भी इन्होंने कई पुस्तकें रचीं और अपने आश्रय में कितनी ही पुस्तकें लिखवाईं। यह अपने ग्रंथ भाषाभूषण के कारण आजतक भाषालंकारों के आचार्य माने जाते हैं। इसके अतिरिक्त अपरोक्ष-सिद्धांत अनुभवकप्राश, आनंदविलास, सिद्धांतबोध, सिद्धांतसार और प्रबोध चंद्रोदयनाटक नामक पुस्तकें लिखी हैं। अंतिम पुस्तक महाराज जसवंतसिंह की गद्य रचना है।

उदा०—

'यह कहिकै चले तितनै सूत्रधार आइ आसीर्बाद दैकै बोल्यो।'

जगजी चारण

इन्होंने रत्नमहेशदासोत वचनिका नामक ग्रंथ में रतलाम के राजा रत्नसिंह महेशदासोत की उस वीरता का परिचय दिया है जो उन्होंने धर्मतपुर के युद्ध में प्रदर्शित की थी। यह युद्ध महाराज जसवंतसिंह और औरंगजेब के बीच सं० १७१५ वि० में हुआ था, जिस समय यह पुस्तक बनी थी।

उदा०—

'दाली रावा का। भुजेण रासा का। चार जुग रहसी। कब बात कहसी।'

दामोदरदास

ये दादू के शिष्य जगजीवनदास के चेले थे। इन्होंने मार्कण्डेय पुराण का गद्यानुवाद किया है। इनका समय सं० १७१५ के लगभग माना जाता है। भाषा राजपूतानी है।

उदा०—

'अथ वंदन गुरुदेव कूं नमस्कार, गोबिंदजी कूं नमसकार, सरब परकार कै सिध, साध, रिप, मुनि जन सरब ही कूं नमसकार। अहो तुम सब साध ऐसी बुधि देहु जा बुधि करिया ग्रंथ की बारतिक भाषा अरथ रचना करिए। सरब संतान की कृपा ते समसत कारज सिधि होइ जी।'

अज्ञात

योगवासिष्ठ का हिंदी अनुवाद है। लिखने का समय सं० १७२० है। ग्रंथकर्ता का कुछ पता नहीं।

उदाहरण०—

'इस विषे बड़ीयां कथा है अरु नानाप्रकार कि या जुगतो है। तिन कथा और जुगतां करिकै वशिष्ठजी रामजी को जगाया है सो मैं तुझे सुनाया है। अपने उपदेश करि तिसको जीवनमुक्त किया।'

बैकुंठमणि शुक्ल

ये बुंदेलखंड के रहनेवाले थे और ओड़छानरेश महाराज जसवंतसिंह (१६७५-८४) के आश्रित थे। इन्होंने दो पुस्तकें

गद्य में लिखी हैं जिनके नाम वैशाख माहात्म्य और अगहन माहात्म्य हैं। ये दोनों व्रज भाषा में लिखी गई हैं, पर खड़ी बोली का अधिक मिश्रण है

उदा०—

'सब देवतन की कृपा तै अरु प्रसाद तै वैकुंठमनि सुकुल श्रीमहारानी श्रीरानी चंद्रावती के धरम पढ़िबे के अरथ यह जय-रूप ग्रंथ वैसाषमाहतम भाषा करत भए। एक समय नारदजू ब्रह्मा की सभा तै उठिकै सुमेर पर्वत को गए। पुनि गंगाजी को प्रवाह देखि पृथी विषै आए। तहाँ सब तीरथन को दरसन करत भए; तब श्रीराजा अंबरीष के यहाँ आए। जब राजा अंबरीष नारद की नजीक आए की खबर सुनी तबही उताइल कै सभा तै उठि आगे होइ लये।'

कुलपति मिश्र

यह आगरा निवासी माथुर परशुराम के पुत्र थे। इन्होंने सं० १७२७ में रसरहस्य ग्रंथ लिखा था, जो मम्मट के काव्य प्रकाश के आधार पर है। भरत मुनि और साहित्यदर्पण आदि का भी उल्लेख है। इसमें गद्य-पद्य दोनों है। इसके सिवा मुक्तितरंगिणी, संग्रामसार, नाट्यशील; तथा द्रोणपर्व इनकी रचनाएँ मिली हैं। रस रहस्य आठ वृत्तांतों में विभक्त है जिनमें से अंतिम अर्थालंकार पर सबसे बड़ा है। गद्य का प्रयोग समझाने के लिए सर्वत्र किया गया है।

उदा —

अरु रसध्वनी में भावही व्यंगि होत है तातें रसध्वनि क्यों न होइ, द्वै भेद काहे को गहे। तहां सावधान करत हे। प्रथम तो

भरत की आज्ञा समान अरु जहाँ कवि की रति साक्षात देवतन बिषें राजा बिषें व्यिंग्य होइ। विभावादि निरपेक्ष सो भावधुनि कहियै तातें प्रधानता करिके कवि ही की उक्ति तें भाव व्यंगि होतु है, कोउ बीच अंतराहि नाहीं और कवि की उक्ति तैं कवि निबंध बकता की प्रतीति होइ। फिरि विचार करत उनके विभावादिकनु की प्रतीति होइ तातें भाव बहु प्रकारन ते पाइयतु है।

माथुर कृष्णदेव

इनका वृत्तांत कुछ भी ज्ञात नहीं हो सका। इन्होंने श्रीमद्भागवत की ब्रज भाषा गद्य में टीका लिखी है, जिसकी सं० १७५० वि० की लिखी हस्तलिखित प्रति प्राप्त हुई है। अवश्य ही यह रचना इस काल के पहिले की होगी।

उदा०—

दुष जु हैं ते पाप कर्म को फल हे अरु सुष जु हैं ते पुन्य कर्म को फल हैं, पाप अरु पुन्य रूपी दोऊ भांति के कर्मन की जब निवृत्ति होति हे तब मुक्ति होति है। सो ब्रजबधून के याही देह बिषे भई हे अब यह कहत हें। अति दुसह जो श्रीकृष्ण को बिरह ताकरि भयो जो अधिक संताप ता संताप करि दूर भए हें पाप कर्म जिनके अरु ध्यान करि मन बिषें प्रगट भए जु श्रीकृष्ण हें तिन सों जु मिलापु हें ता मिलिबे के सुष करि दूर भए हें पुन्य कर्म जिनके ऐसी ब्रज सुंदरी ताही परमात्मा को ध्यान कराते।

सुरति मिश्र

ये आगरे के रहनेवाले कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनके बनाए निम्नलिखित ग्रंथ हैं—अलंकारमाला, अमरचंद्रिका, कविप्रिया

की टीका, नखशिख, रसिकप्रिया की टीका, रससरस, रसरत्न और वैतालपंचविंशति का ब्रज भाषा में गद्यानुवाद। इनका रचनाकाल सं० १७६० से १८०० तक है।

उदा०—

'कमलनयन कमल से हैं नैन जिनके, कमलद बरन कमलद कहिए मेघ को बरण है, स्याम स्वरूप है, कमलनाभि श्रीकृष्ण को नाम ही है कमल जिनकी नाभि ते उपज्यौ है, कमलाय कमला लक्ष्मी ताके पति हैं तिनके चरण कमल समेत गुन को जाय क्यों मेरे मन में रहो।'

महाराज अजीतसिंह

जोधपुर नरेश महाराज जसवंतसिंह के पुत्र थे। इनका जन्म सं० १७३७ वि० में हुआ था और सं० १७८१ वि० में यह पुत्रों द्वारा मारे गए। इन्होंने दुर्गापाठ भाषा, गुणसार, राजारूप का ख्याल, निर्बाणी दोहा, महाराज श्रीअजीतसिंहजीरा कह्या दोहा, (महाराज श्रीअजीतसिंहजी कृत दोहा) श्रीठाकुरराँरा और भवानी सहसनाम लिखा है। गुणसार गद्य-पद्य-मय है जिसमें राजा सुमति और रानी सत्यरूपा की कथा है।

उदा०—

'पाछो कहिये पिता जो राज रा आसिर्वचनां सुम्हें आ पदवी पाया जो विमांन बेठा बैकुंठ जावा छा। सो इस भांति परसपर वार्ता कर राजी होयने। अे आ आह घाहालिया सो ज्युँ आगे लोक बताया छें त्युं त्युं इंद्रलोक शिवलोक ब्रह्मलोक में होयने बैकुंठ लोक गया।

देवीचंद

इन्होंने हितोपदेश का ब्रज भाषा में उलथा किया। वि० सं० १७९७ की लिखी प्रति प्राप्त है।

उदा०—

'आवरदा, करम, द्रव्य, विद्या, मरण ए पांचों वस्तु बिधाता गर्भ ही माहि देही कूं सरजे है। जाते भावि जू लिख्यो सो अवश्य होइ जैसे नीलकंठ महादेवजी भावि कै वस्य होय साक्षात् नगन बन में रहतु हैं।

अज्ञात

कृष्णजी की लीला नामक पुस्तक की हस्तलिखित प्रति सं० १७९७ वि० की प्राप्त हुई है जिसके ग्रंथकर्ता का कुछ पता नहीं है। यह ब्रज भाषा में गद्य रचना है।

'श्रीराधाजी अपनी सषियन मैं आई अर अपनी अपनी मटकियां सिर पर धरि अर सब सषियन सहित घर कूं चली। तब पैंडा बीच मुषरा मिली। तब मुषरा सब सहेली समेत श्रीराधाजी के बाँह गहिके पर कूं ले चली। इहाँ आनि अब नीको भोजन करायौ।'

भगवानदास

यह श्रीस्वामी कूबाजी के पौत्र और शिष्य स्वामी दामोदरदास के शिष्य भयंकराचार्य के शिष्य थे। इनका जन्म लगभग सं० १७२५ वि० के हुआ था। इन्होंने सं० १७५६ वि० में श्रीमद्भगवद्गीता पर भाषामृत नामक गद्य टीका लिखी है जो रामानुजाचार्य के भाष्यानुसार है।

उदा०—

'श्रीराजाजी, यहां सर्वेश्वर श्रीकृष्ण हैं अरु धनुषधारी अर्जुन हैं तिहां ही निश्चय जय हो जायगी वहां ही अनंत विभूति होयगी। ए मेरी मति करिकै में निश्चय करत हूँ। ऐसे प्रकार संजय राजा धृतराष्ट्र कूं कह्यो।'

अज्ञात

शाहजहां के पुत्र सुल्तान दाराशिकोह ने सं० १७१२ वि० में उपनिषदों का फ़ारसी में अनुवाद कराया था, जिसका सं० १७७६ में हिंदुवी में अनुवाद हुआ। दोनों अनुवादकों का नाम ज्ञात नहीं हुआ।

उदा०—

'चतुर्थ अवस्था आत्मा की क्यों जु वहि हूँ अद्वती है, ब्रह्म को जु निकट अरु साछी है ज्ञातव्य है वाकों चाह्यो प्रापत भया। यह उपनिषद नृसिंह तापनि जु सिद्धांत की अवध है अरु सर्व जुग तो ज्ञान अरु जज्ञासी की आया में खैंचत है अरु उपनिषदों का रहस्य है यामों।'

रामहरि

सं० १५९० के लगभग रूप गोस्वामी ने विदग्धमाधव तथा फलित माधव नाम के दो नाटक लिखे थे। इन्हीं में से प्रथम का आख्यति व्रज भाषा गद्य में सं० १८२४ में लिखा गया था। लेखक जयपुर निवासी ज्ञात होते हैं।

उदा०—

श्रीबृंदावन नित्यविहार जानि कै उजीन नगरी को बास छाड़ि करि संदीपन रिषीस्वर की माता ताको नाम पुर्णमासी कहावै तिन

इहाँ आइ बृंदावन बास कियो अरु पोतो एक ले आई। ता पोतों को नाम मधुमंगल कहावै। सो मधुमंगल ग्वालन में गाइ चरावै, श्रीकृष्ण को बार बार हँसावै, विनोद करै तातें अति प्रिय लागै। अरु नंद जसोदा जो मधु मंगल सों अति मोह करै। अरु नांदीमुखी नाम एक ब्राह्मणी सो पूर्णमासी जू की टहल करै। ते श्रीबृंदावन विषें रहें।

स्वामी ललितकिशोरी और ललितमोहिनी

ये दोनों गुरुशिष्य थे और निंबार्क संप्रदाय के अंतर्गत टट्टिन वाली शाखा के वैष्णव थे। इन दोनों महाशयों ने श्रीस्वामी महाराजजू की बचनिका नामक एक पुस्तक ४७ पृष्ठों में बनाई है। ये सं० १८०० के लगभग हुए थे। यह गद्य पुस्तक व्रजभाषा में है।

उदा०—

'वस्तु को दृष्टांत—मलयगिरि को समस्त बन बाकी पवन सों चंदन ह्वै जाय। वाके कछू इच्छा नाहीं। बाँस और अरंड सुगंध न होय। सत्संग कुपात्र को असर न करै।'

अज्ञात

यह रचना मुगल बादशाहों का संक्षिप्त इतिहास है, जो व्रज भाषा गद्य में सं० १८२० के लगभग लिखा गया है। यह चालीस पृष्ठों में है।

उद०—

राजा मानसिंह उड़ीसा सूबा में पातस्याह को सिक्कौ पुतबो चलायो। वहाँ के पठाणन कि पेसकस हजूरी ल्याये। कंधार को

पातस्याह ईरान की पातस्याह की फौज सुँ भाजि हुजूरि आयो, पंच हजारी भयो, मुलतान के सूबा जागीर में पायो। पातस्याही फौज जाय कंधार लीनी।

अमरसिंह कायस्थ

छत्रपुर के राजनगर के रहनेवाले थे और उस राज्य के अधिष्ठाता कुँवर सोनूजू के दीवान थे। इनका जन्म सं० १७६३ में और मृत्यु सं० १८४० में हुई थी। राधाकृष्ण के भक्त थे। सुदामाचरित्र, रागमाला और अमरचंद्रिका नामक तीन पुस्तकें बनाईं। अंतिम पुस्तक बिहारी की सतसई की गद्य टीका है। उदा०—

'प्रथम मंगलाचरन—यह कवि की विनत जान प्रगटत अपनी अधमता अधिकाई धुनि आंन जितौ अधम तितनी बड़ी भव बाधा यह अर्थ तिहि हरिबे को चाहिये। कोऊ बड़ी समर्थ नर बाधा कै सुई हरत सुर बाधा ब्रह्मादि ब्रह्मादिक की बाध कौं हरत जु स्याम अगाध लखि राधा तन स्याम की बाधा रहत ना कोई याते मो बाधा हरो।'

अग्रनारायणदास और वैष्णवदास

इन दोनों महाशयों ने नाभादास और प्रियादास के भक्तमाल पर टीका लिखी है। इस टीका की एक प्रति सं० १८२९ वि० की और दूसरी सं० १८४४ वि० की लिखी हुई है। प्रथम प्रति पर भक्तमालप्रसंग का नाम लिखा है और दूसरी पर भक्तिरस-बोधिनी टीका।

उदा०—

'तब श्रीकृष्ण अघोर बंसी बजाई। ब्रज गोपिकानि सुनि राधिका, ललिता, विशाषादि गोपी आई। रास मंडल रच्यो, राग, रंग, नृत्य, गान, आलाभ, आलिंगन, संभासन भया। उदाहिं सर में जलक्रीडा स्नान गोपी कुच कुंकुम केशर छुट्यो सो गोपीचंदन भयौ, गोपी तलाई भई वृजप्राप्ति।'

बरलेश

राजा रत्नेश के भाई शत्रुजित के आश्रय में वि० सं० १८२८ में रसराज पर टीका लिखी।

उदा०—

'नाइका नाइक जो है ताके आलंबित कहैं आधार शृंगार रस होत है। कौन प्रकार कै आंधार कहैं देषकैं तातैं कवि कहत है कै नाइका नाइक कौ बरनन करत हौं अपनी बुद्धि के अनुसार तैं ग्रंथ को नाम रसराज है सो रस नाइका नाइक के अधीन होत है।'

जटमल

सं० १६८० वि० में जटमल कवीश्वर ने महाराणा रत्नसेन, पद्मावती तथा गोरा और बादल के वृत्तांत को पद्य में लिखा है जिसका गद्यानुवाद सं० १८२० में हुआ। इसमें खड़ी बोली का मिश्रण अधिक है। इस ग्रंथ का नाम गोरा बादल की कथा है। अनुवाद से नीचे उदाहरण दिया गया है।

उदा०—

'गोरे की आवरत आवे सो वचन सुनकर अपने षावंद की पगड़ी हाथ में लेकर वाहा सती हुई सो सिवपुर में जाके वाहा

दोनो मेले हुए। गोरा बादल की कथा गुरू के बस सरस्वती के महरबानगी से पूरन भई तिस वास्ते गुरू कूं व सरस्वती कूं नमस्कार करता हूँ। ये कथा सोल से आसी के साल में फागुन सुदी पुनम के रोज बनाई। ये कथा में दोर सेह बीरा रस बसी नगार रस हे सो कथा। मोरछड़ो नाव गांव का रहने वाला कवेसर जगहा। उस गांव के लोग भोहोत सुकी हे, घर घर में आनंद होता है, कोई घर में फ़क़ीर दीखता नहीं।'

शेरसिंह

ये मारवाड़नरेश विजयसिंह के पुत्र थे। मारवाड़ी भाषा में राजकृष्णजस नामक पुस्तक गद्य-पद्य-मय लिखी। सं० १८५० में महाराज भीमसिंह द्वारा मारे गए।

उदा —

'अरज करै छै सैरदासी यौ। अरज सुणौ श्रीजगन्नाथजी। मौ अपराधी री साथ करौ प्रभु काटौ जम री पासी जी।'

कैयात सरवारिया

सं० १८५४ वि० के लगभग अनंतराय साखला की वार्ता गद्य पद्य में लिखी।

उदा०—

'कौलापुर पाटण नगर तट अनंतराय साखलो राजा राज करति को पुरसाण हींदवाण दोन्यु राहासीर, जीको कौलापुर पाटण की साये कहे कद्र साव जीणी ने देषयो थका हु जो सरूर दाये नहीं अ.व।'

सदासुखलाल

इनका जन्म सं० १८०३ और मृत्यु सं० १९०१ में हुई। यह कंपनी की अधीनता में चुनार में कुछ दिन तक अच्छे पद पर रहकर पैंसठ वर्ष की अवस्था में नौकरी छोड़कर प्रयाग चले आए। यहीं हरिभजन तथा साहित्य-सेवा में जीवन व्यतीत कर दिया। फारसी में 'नियाज़' उपनाम था। इन्होंने श्रीमद्भागवत का गद्य में अनुवाद किया है और बहुत से स्फुट लेख लिखे हैं। मुंशीजी फ़ारसी, उर्दू और हिंदी के अच्छे लेखक थे।

उदा०—

'यद्यपि ऐसे विचार से हमें लोग नास्तिक कहैंगे, हमैं इस बात का डर नहीं, जो बात सत्य होय उसे कहा चाहिये, कोई बुरा माने कि भला माने। विद्या इस हेतु पढ़ते हैं कि तात्पर्य इसका सतोवृत्ति है वह प्राप्त हो और उससे निज स्वरूप में लय हूजिए। इस हेतु नहीं पढ़ते हैं कि चतुराई की बातें कहके लोगों को बहकाइये और फुसलाइये और असत्य छिपाइये।

सैयद इंशाअल्लाह खाँ

ये मीर माशाअल्लाह के पुत्र थे और इनका जन्म मुर्शिदाबाद में हुआ था। बंगाल में सिराजुद्दौला के मारे जाने पर यह दिल्ली चले आए और शाह आलम के दरबार में भर्त्ती हो गए। परंतु प्राप्ति के कम होने से और नवाब आसफुद्दौला के दान की धूम सुन कर यह लखनऊ गए। यहाँ यह कुछ दिनों में एक प्रसिद्ध कवि माने जाने लगे। सं० १८५४ में आसफुद्दौला की मृत्यु होने पर उनके भाई सआदतअली खाँ नवाब हुए जिनके ये मुँहलगे

दरबारी थे। एक बार किसी हँसी की बात के कारण इन्हें सं० १८६६ वि० में घर बैठ रहना पड़ा और अंत समय तक कष्ट से काटकर सं० १८७३ में यह मर गए। फारसी और उर्दू में इन्होंने बहुत से काव्य लिखे हैं और रानी केतकी की कहानी नामक एक पुस्तक ठेठ हिंदी में लिखी है। यह अंतिम एकांतवास के पहिले ही लिखी गई है।

उदा०—

'किसी देस में किसी राजा के घर एक बेटा था उसे उसके मा बाप और सब घरके लोग कुँअर उदयभान कहके पुकारते थे। सचमुच उसके जोबन की जोत में सूरज-की एक सूत आ मिली थी। उसका अच्छापन और भला लगना कुछ ऐसा न था जो किसीके लिखने वौर कहने में आ सके। पंदरह बरस भर के सोलहवें में पाँव रखा था, कुछ योंही सी उसकी मसें भीगती चली आती थीं अकड़ मकड़ उसमें बहुत सी समा रही थी।'

लल्लूजी लाल

इनका जीवन वृत्तांत अलग इसी ग्रंथ में दिया गया है और उदाहरण के लिये समग्र प्रेमसागर साथ ही लगा है। इनके अन्य ग्रंथों के कुछ उदाहरण भी इनके जीवनचरित्र के साथ दिए गए हैं।

सदल मिश्र

ये पं० लक्ष्मण मिश्र के पौत्र और नंदमणि के पुत्र थे। आरे के रहनेवाले थे। इनका जन्म लगभग सं० १८३० में हुआ था और मृत्यु सं० १९०५ में हुई। इन्होंने कई पुस्तकों का संस्कृत से

भाषा और भाषा से संस्कृत अनुवाद किया था, पर केवल चंद्रावती ही प्राप्त है। वि० सं० १८५५ में ये कलकत्ते गए थे और वहीं जौन गिलक्राइस्ट की आज्ञा से इन्होंने नासिकेतोपाख्यान का हिंदी अनुवाद किया और उसका चंद्रावती नाम रखा। यह सं० १८८८ के पहले देश लौट आए होंगे, क्योंकि उसी वर्ष इन्होंने ग्यारह सहस्र रुपए पर तीन ग्रामों का ठेका लिया था।

उदा०—

'धर्मराज के लोक में भाँति भाँति के लोग और वृक्षों से भरी चार सौ कोस लंबी चौड़ी चार द्वार की यमराज की पुरी है कि जिसमें सदा आप वे अनेक गण, गंधर्व ऋषि वो योगियों के मध्य में धर्म का विचार किया करते हैं। तिस पुरी में जिस द्वार से प्राणी जाता है सो मैं तुमसे कहता हूँ।'

ग्रंथकार की भूमिका

बिघन बिदारन बिरद बर बारन बदन बिकास।
बर दे बहु बाढ़ै बिसद बानी बुद्धि बिलास॥ १॥
जुगल चरन जोवत जगत जपत रैन दिन तोहिं।
जगमाता सरस्वति सुमिरि युक्ति उक्ति दे मोहिं।

एक समै व्यासदेव कृत श्रीमत भागवत के दसम स्कंध की कथा को चतुर्भुज मिश्र ने दोहे चौपाई में ब्रज भाषा किया, सो पाठशाला के लिए श्रीमहाराजाधिराज सकल-गुननिधान पुन्यवान महाजन मारकिस वेलिजली गवरनर-जनरल प्रतापी के राज में

कबि पंडित मंडित किये नग भूषन पहिराय।
गाहि गाहि बिद्या सकल बस कीनी चित चाय॥ २॥
दान रौर चहुँ चक्र में चढ़े कबिन के चित्त।
आवत पावत लाल मनि हय हाथी बहु बित्त॥ ४॥

औ श्रीयुत गुन-गाहक गुनियन-सुखदायक जान गिलकिरस्त महाशय की आज्ञा से संवत १८६०[1] में श्रीलल्लूजी लाल कबि ब्राह्मण गुजराती सहस्र-अवदीच आगरेवाले ने विसका सार ले यामनी भाषा छोड़, दिल्ली आगरे की खड़ी बोली में कह, नाम 'प्रेमसागर' धरा, पर श्रीयुत जान गिलकिरिस्त महाशय के जाने से

१—(ख) में संवत् १८३० दिया है जो अशुद्ध है।

बना अधबना छपा अधछपा रह गया था, सो अब श्री महाराजेश्वर अति दयाल कृपाल यसस्वी तेजस्वी गिलबर्ट लार्ड मिंटो प्रतापवान के राज में औ श्री गुनवान[२] सुखदान कृपा-निधान भगवान कपतान जान उलियम टेलर प्रतापी की आज्ञा से और श्रीयुत परम सुजान दयासागर परोपकारी डाकतर उलियम हंटर नक्षत्री की सहायता से और श्री निपट प्रवीन दयायुत लिपटन अबराहाम लाकट रतीवंत के कहे से उसी कवि ने संबत् १८६६ में पूरा कर छपवाया, पाठशाला के विद्यार्थियों के पढ़ने को।

———

२—(ख) गुनवान।

प्रेमसागर

पहला अध्याय

अथ कथा आरंभ—महाभारत के अंत में जब श्रीकृष्ण अंतर-ध्यान हुए तब पांडव तो महा दुखी हो हस्तिनापुर का राज परीक्षित को दे हिमालय गलने गये और राजा परीक्षित सब देश जीत धर्मराज करने लगे।

कितने एक दिन पीछे एक दिन राजा परीक्षित आखेट को गये तो वहाँ देखा कि एक गाय और बैल दौड़े चले आते हैं, तिनके पीछे मूसल हाथ लिये, एक शूद्र मारता आता है। जब वे पास पहुँचे तब राजा ने शूद्र को बुलाय दुख पाय झुँझलायकर कहा—अरे तू कौन है, अपना बखान कर, जो मारता है गाय औ बैल को जानकर। क्या अर्जुन को तैंने दूर गया जाना तिससे उसका धर्म नहीं पहचाना। सुन, पंडु के कुल में ऐसा किसी को न पावेगा कि जिसके सोंहीं कोई दीन को सतावेगा। इतना कह राजा ने खड़्ग हाथ में लिया। वह देख डरकर खड़ा हुआ, फिर नरपति ने गाय और बैल को भी निकट बुलाके पूछा कि तुम कौन हो, मुझे बुझाकर कहो, देवता हौ कै ब्राह्मन और किस लिये भागे जाते हो, यह निधड़क कहो। मेरे रहते किसी की इतनी सामर्थ नहीं जो तुम्हें दुख दे।

इतनी बात सुनी तब तो बैल सिर झुका बोला—महाराज, यह पाप रूप काले बरन डरावनी मूरत जो आपके सनमुख खड़ा

है सो कलियुग है, इसीके आने से मैं भागा जाता हूं। यह गाय सरूप पिरथी है सो भी इसीके डर से भाग चली है। मेरा नाम है धर्म, चार पाँव रखता हूँ—तप, सत, दया और सोच। सतयुग में मेरे चरन बीस बिस्वे थे, त्रेता में सोलह, द्वापर में बारह, अब कलियुग में चार बिस्वे रहे, इसलिये कलि के बीच मैं चल नहीं सकता। धरती बोली—धर्मावतार, मुझसे भी इस युग में रहा नहीं जाता, क्योंकि शूद्र राजा हो अधिक अधर्म मेरे पर करेंगे, तिनका बोझ मैं न सह सकूँगी इस भय से मैं भी भागती हूँ। यह सुनतेही राजा ने क्रोध कर कलियुग से कहा—मैं तुझे अभी मारता हूँ। वह घबरा राजा के चरनों पै गिर गिड़गिड़ाकर कहने लगा—पृथ्वीनाथ, अब तो मैं तुम्हारी सरन आया मुझे कहीं रहने को ठौर बताइये, क्योंकि तीन काल और चारों युग जो ब्रह्मा ने बनाये हैं सो किसी भाँति मेटे न मिटेंगे। इतना बचन सुनते ही राजा परीक्षित ने कलियुग से कहा कि तुम इतनी ठौर रहो—जुए, झूठ, मद की हाट, बेस्या के घर, हत्या, चोरी और सोने में। यह सुन कलि ने तो अपने स्थान को प्रस्थान किया और राजा ने धर्म को मन में रख लिया। पिरथी अपने रूप में मिल गई। राजा फिर नगर में आये और धर्मराज करने लगे।

कितने एक दिन बीते राजा फिर एक समै आखेट को गये औ खेलते खेलते प्यासे भये, सिर के मुकुट में तो कलियुग रहता ही था, विसने अपना औसर पा राजा को अज्ञान किया। राजा प्यास के मारे कहाँ आते हैं कि जहाँ लोमस ऋषि आसन मारे नैन मूँदे हरि का ध्यान लगाये तप कर रहे थे। विन्हें देख परीक्षित मन में कहने लगा कि यह अपने तप के घमंड से मुझे देख

आँख मूँद रहा है। ऐसी कुमति ठानि एक मरा साँप वहाँ पड़ा था सो धनुष से उठा ऋषि के गले में डाल अपने घर आया। मुकुट उतारते ही राजा को ज्ञान हुआ तो सोचकर कहने लगा कि कंचन में कलियुग का बास है यह मेरे सीस पर था इसीसे मेरी ऐसी कुमति हुई जो मरा सर्प ले ऋषि के गले में डाल दिया, सो मैं अब समझा कि कलियुग ने मुझसे अपना पलटा लिया। इस महापाप से मैं कैसे छूटूँगा, बरन धन जन स्त्री और राज, मेरा क्यों न गया सब आज, न जानूँ किस जन्म में यह अधर्म जायगा जो मैंने ब्राह्मन को सताया है।

राजा परीक्षित तो यहाँ इस अथाह सोचसागर में डूब रहे थे और वहाँ लोमस ऋषि थे तहाँ कितने एक लड़के खेलते हुए जा निकले, मरा साँप उनके गले में देख अचंभे रहे और घबराकर आपस में कहने लगे कि भाई, कोई इनके पुत्र से जाके कह दे जो उपबन में कौशिकी नदी के तीर ऋषियों के बालकों में खेलता है। एक सुनते ही दौड़ा वहीं गया जहाँ शृंगी ऋषि छोकरों के साथ खेलता था। कहा—बंधु, तुम यहाँ क्या खेलते हो, कोई दुष्ट मरा हुआ काला नाग तुम्हारे पिता के कंठ में डाल गया है। सुनते ही शृंगी ऋषि के नैन लाल हो आये, दाँत पीस पीस लगा थरथर काँपने और क्रोध कर कहने कि कलियुग में राजा उपजे हैं अभिमानी धन के मद से अंधे हो गये हैं दुखदानी।

अब मैं उसको दूहूँ श्राप, वही मीच पावैगा आप।

ऐसे कह शृंगी ऋषि ने कौशिकी नदी का जल चुल्लू में ले, राजा परीक्षित को श्राप दिया कि वही सर्प सातवें दिन तुझे डसेगा।

इस भाँति राजा को सराप अपने बाप के पास आ गले से

साँप निकाल कहने लगा—हे पिता, तुम अपनी देह सँभालो मैंने उसे श्राप दिया है जिसने आपके गले में मरा सर्प डाला था। यह बचन सुनते ही लोमस ऋषि ने चैतन्य हो नैन उघाड़ अपने ज्ञान ध्यान से विचारकर कहा—अरे पुत्र, तूने यह क्या किया, क्यों सराप राजा को दिया, जिसके राज में थे हम सुखी, कोई पशु पंछी भी न था दुखी, ऐसा धर्मराज था जिसमें सिंह गाय एक साथ रहते और आपस में कुछ न कहते। अरे पुत्र, जिनके देस में हम बसे, क्या हुआ तिनके हँसे। मरा हुआ साँप डाला था उसे श्राप क्यों दिया।

तनक दोष पर ऐसा श्राप, तैंने किया बड़ा ही पाप।

कुछ विचार मन में नहीं किया, गुन छोड़ा औगुन ही लिया

साधु को चाहिये सील सुभाव से रहे, आप कुछ न कहे, और की सुन ले, सबका गुन ले ले औगुन तज दे। इतना कह लोमस ऋषि ने एक चेले को बुलाके कहा—तुम राजा परीक्षित को जाके जता दो जो तुम्हें शृंगी ऋषि ने श्राप्र दिया है, भला लोग तो दोष देहींगे पर वह सुन सावधान तो हो। इतना बचन गुरू का मान चेला चला चला वहाँ आया जहाँ राजा बैठा सोच करता था। आते ही कहा—महाराज, तुम्हें शृंगी ऋषि ने यह श्राप दिया है कि सातवें दिन तक्षक डसेगा। अब तुम अपना कारज करो जिससे कर्म की फाँसी से छूटो। सुनते ही राजा प्रसन्नता से खड़ा हो हाथ जोड़ कहने लगा कि मुझ पर ऋषि ने बड़ी कृपा की जो श्राप दिया, क्योंकि मैं माया मोह के अपार सोचसागर में पड़ा था, सो निकाल बाहर किया। जब मुनि का शिष्य बिदा हुआ तब राजा ने आप तो बैराग लिया और जनमेजय को बुलाय राज

पाट देकर कहा—बेटा, गौ ब्राह्मन की रक्षा कीजो औ प्रजा को सुख दीजो।

इतनी कह आये रनवास, देखी नारी सबी उदास।

राजा को देखते ही रानियां पाँओं पर गिर रो रो कहने लगीं—महाराज, तुम्हारा बियोग हम अबला न सह सकेंगी, इससे तुम्हारे साथ जी दें तो भला। राजा बोले—सुनो, स्त्री को उचित है जिसमें अपने पति का धर्म रहे सो करे, उत्तम काज में बाधा न डाले।

इतना कह धन जन कुटुंब औ राज की माया तज निरमोही हो अपना जोग साधने को गंगा के तीर पर जा बैठा। इसको जिसने सुना वह हाय हाय कर पछताय पछताय बिन रोये न रहा, और यह समाचार जब मुनियों ने सुना कि राजा परीक्षित शृंगी ऋषी के श्राप से मरने को गंगा तीर पर आ बैठा है तब ब्यास, वशिष्ट, भरद्वाज, कात्यायन, परासर, नारद, विश्वामित्र, वामदेव, जमदग्नि आदि अट्ठासी सहस्र ऋषि आए और आसन बिछाय बिछाय पाँत पाँत बैठ गये। अपने अपने शास्त्र विचार विचार अनेक अनेक भांति के धर्म राजा को सुनाने लगे, कि इतने में राजा की श्रद्धा देख, पोथी काँख में लिये दिगंबर भेष, श्रीशुखदेवजी भी आन पहुँचे। उनको देखते ही जितने मुनि थे सबके सब उठ खड़े हुए और राजा परीक्षित भी हाथ बाँध खड़ा हो बिनती कर कहने लगा—कृपा-निधान, मुझपर बड़ी दया की जो इस समै आपने मेरी सुध ली। इतनी बात कही तब शुकदेव मुनि भी बैठे तो राजा ऋषियों से कहने लगे कि महाराजो, शुकदेवजी ब्यासजी के तो बेटे और परासरजी के पोते तिनको देख तुम बड़े

बड़े मुनीस होके उठे, सो तो उचित नहीं, इसका कारन कहो, जो मेरे मन का संदेह जाय। तब परासर मुनि बोले—राजा, जितने हम बड़े बड़े ऋषि हैं पर ज्ञान में शुक से छोटेही हैं, इसलिये सबने शुक का आदर मान किया। किसीने इस आस पर कि ये तारन-तरन हैं, क्योंकि जब से जन्म लिया है तबही से उदासी हो बनबास करते हैं, और राजा तेरा भी कोई बड़ा पुन्य उदै हुआ जो शुकदेव जी आये। ये सब धर्मों से उत्तम धर्म कहेंगे जिससे तू जन्म मरन से छूट भवसागर पार होगा। यह बचन सुन राजा परीक्षित ने शुकदेवजी को दंडवत कर पूछा—महाराज, मुझे धर्म समझायके कहो, किस रीति से कर्म के फंदे से छूटूँगा, सात दिन में क्या करूँगा। अधर्म है अपार, कैसे भवसागर हूँगा पार।

श्रीशुकदेवजी बोले—राजा, तू थोड़े दिन मत समझ, मुक्ति तो होती है एकही घड़ी के ध्यान में, जैसे षष्टांगुल राजा को नारद मुनि ने ज्ञान बताया था और उसने दोही घड़ी में मुक्ति पाई थी। तुम्हें तो सात दिन बहुत हैं, जो एक चित हो करो ध्यान तो सब समझोगे अपने ही ज्ञान से कि क्या है देह, किसका है बास, कौन करता है इसमें प्रकाश। यह सुन राजा ने हरष के पूछा—महाराज, सब धर्मों से उत्तम धर्म कौनसा है, सो कृपा कर कहो। तब शुकदेवजी बोले—राजा, जैसे सब धर्मों में बैष्णव धर्म बड़ा है, तैसे पुरानों में श्रीभागवत। जहाँ हरिभक्त यह कथा सुनावें हैं तहाँही सब तीर्थ औ धर्म आवें हैं। जितने हैं पुरान पर नहीं है कोई भागवत के समान। इस कारन मैं तुझे बारह स्कंध महा-पुरान सुनाता हूं जो व्यास मुनि ने मुझे पढ़ाया है, तू श्रद्धा समेत

आनंद से चित दे सुन। तब तो राजा परीक्षित प्रेम से सुनने लगे और शुकदेवजी नेम से सुनाने।

नौ स्कंध कथा जब मुनि ने सुनाई तब राजा ने कहा—दीन-दयाल अब दया कर श्रीकृष्णावतार की कथा कहिये, क्योंकि हमारे सहायक और कुलपूज वे ही हैं। शुकदेवजी बोले-राजा, तुमने मुझे बड़ा सुख दिया जो यह प्रसंग पूछा, सूनो मैं प्रसन्न हो कहता हूँ। यदुकुल में पहले भजमान नाम राजा थे तिनके पुत्र पृथिकु, पृथिकु के बिदूरथ, विनके सूरसेन जिन्होंने नौ खंड पृथ्वी जीत के जस पाया। उनकी स्त्री का नाम मरिष्या, विसके दस लड़के और पाँच लड़कियाँ, तिनमें बड़े पुत्र बसुदेव, जिनकी स्त्री के आठवें गर्भ में श्रीकृष्णचंदजी ने जन्म लिया। जब वसुदेवजी उपजे थे तब देवताओं ने सुरपुर में आनंद के वाजन बजाये थे और सूरसेन की पाँच पुत्रियों में सबसे वड़ी कुंती थी, जो पंडु को ब्याही थी, जिसकी कथा महाभारत में गाई है, औ बसुदेवजी पहले तो रोहन नरेस की बेटी रोहनी को ब्याह लाये, तिस पीछे सत्रह। जब अठारह पटरानी हुईं तब मथुरा में कंस की बहन देवकी को ब्याहा। तहाँ आकाशबानी भई कि इस लड़की के आठवें गर्भ में कंस का काल उपजेगा। यह सुन कंस ने बहन बहनेऊ को एक घर में मूँद दिया और श्रीकृष्ण ने वहाँ ही जन्म लिया। इतनी कथा सुनते ही राजा परीक्षित बोले—महाराज, कैसे जन्म कंस ने लिया, किसने विसे महा बर दिया और कौन रीति से कृष्ण उपजे आय, फिर किस बिधि से गोकुल पहुँचे जाय, यह तुम मुझे कहो समझाय।

श्रीशुकदेवजी बोले—मथुरापुरी का आहुक नाम राजा, तिनके दो बेटे, एक का नाम देवक दूसरा उग्रसेन। कितने एक दिन पीछे

उग्रसेन ही वहाँ का राजा हुआ, जिसकी एक ही रानी विसका नाम पवनरेखा सो अति सुंदरी औ पतिव्रता थी, आठों पहर स्वामी की आज्ञा ही में रहे। एक दिन कपड़ों से भई तो पति की आज्ञा से सखी सहेली को साथ कर रथ में चढ़ बन में खेलने को गई। वहाँ घने घने वृक्षों में भाँति भाँति के फूल फूले हुए, सुगंध सनी मंद मंद ठंढी पवन बह रही, कोकिल, कपोत, कीर, मोर, मीठी मीठी मनभावन बोलियाँ बोल रहे और एक ओर पर्वत के नीचे जमुना न्यारीही लहरें ले रही थी, कि रानी इस समय को देख रथ से उतर कर चली तो अचानक एक ओर अकेली भूल के जा निकली। वहाँ द्रुमलिक नाम राक्षस भी संयोग से आ पहुँचा। वह इसके जोबन औ रूप की छब को देख छक रहा और मन में कहने लगा कि इससे भोग किया चाहिए। यह ठान तुरत राजा उग्रसेन का सरूप बन रानी के सोंही जा बोला—तू मुझसे मिल। रानी बोली—महाराज, दिन को कामकेलि करनी जोग नहीं, क्योंकि इसमें सील और धर्म जाता है। क्या तुम नहीं जानते जो ऐसी कुमति बिचारी है।

जद पवनरेखा ने इस भाँति कहा तद तो द्रुमलिक ने रानी को हाथ पकड़ कर खैंच लिया और जो मन माना सो किया। इस छल से भोग करके जैसा था तैसा ही बन गया। तब तो रानी अति दुख पाय पछतायकर बोली—अरे अधर्मी, पापी, चंडाल, तूने यह क्या अंधेर किया जो मेरा सत खो दिया, धिक्कार है तेरे माता पिता और गुरू को, जिसने तुझे ऐसी बुद्धि दी। तुझसा पूत जन्ने से तेरी मा बाँझ क्यों न हुई। अरे दुष्ट, जो नर देह पाकर किसी का सत भंग करते हैं सो जन्म जन्म नरक में पड़ते

हैं। द्रुमलिक बोला—रानी, तू श्राप मत दे मुझे, मैंने अपने धर्म का फल दिया है तुझे। तेरी कोख बंद देख मेरे मन में बड़ी चिंता थी सो गई।

आज से हुई गर्भ की आस, लड़का होगा दसवें मास।

और मेरी देह के सुभाव से तेरा पुत्र नौ खण्ड पृथ्वी को जीत राज करेगा और कृष्ण से लड़ेगा। मेरा नाम प्रथम कालनेम था तब विष्णु से युद्ध किया था। अब जन्म ले आया तो द्रुमलिक नाम कहाया, तुझको पुत्र दे चला, तू अपने मन में किसी बात की चिंता मत करे। इतनी बात कह जब कालनेम चला गया तब रानी को भी कुछ सोच समझकर धीरज भया।

जैसी हो होतव्यता, तैसी उपजे बुद्धि।
होनहार हिरदे बसे, बिसर जाय सब सुद्धि॥

इतने में सब सखी सहेली आन मिलीं, रानी का सिंगार बिगड़ा देख एक सहेली बोल उठी,—इतनी बेर तुम्हें कहाँ लगी और यह क्या गति हुई। पवनरेखा ने कहा—सुनो सहेली, तुमने इस बन में तजी अकेली। एक बंदर आया विसने मुझे अधिक सताया तिसके डर से मैं अब तक थर थर काँपती हूँ। यह बात सुनकर तो सबकी सब घबराईं औ रानी को झट रथ पर चढ़ा घर लाईं। जब दस महीने पूजे तब पूरे दिनों लड़का हुआ, तिस समै एक बड़ी आँधी चली कि जिसके मारे लगी धरती डोलने, अँधेरा ऐसा हुआ जो दिनकी रात हो गई और लगे तारे टूट टूट गिरने, बादल गरजने और बिजली कड़कने।

ऐसे माघ सुदी तेरस बृहस्पति वार को कंस ने जन्म लिया। तब राजा उग्रसेन ने प्रसन्न हो सारे नगर के मंगलामुखियों को

बुलाय मंगलाचार करवाये और सब ब्राह्मन, पंडित, जोतिषियों को भी अति मान सनमान से बुलवा भेजा। वे आये, राजा ने बड़ी आवभक्ति से आसन दे दे बैठाया। तब जोतिषियों ने लग्न साध मुहूर्त्त विचारकर कहा—पृथ्वीनाथ, यह लड़का कंस नाम तुम्हारे बंस में उपजा सो अति बलवंत हो राक्षसों को ले राज करेगा और देवता और हरिभक्तों को दुख दे आपका राज ले निदान हरि के हाथ मरेगा।

इतनी कथा कह शुकदेव मुनि ने राजा परीक्षित से कहा—राजा, अब मैं उग्रसेन के भाई देवक की कथा कहता हूं, कि उसके चार बेटे थे और छः बेटियाँ, सो छओं बसुदेव को ब्याह दीं, सातवीं देवकी हुई जिसके होने से देवताओं को प्रसन्नता भई, और उग्रसेन के भी दस पुत्र, पर सबसे कंस ही बड़ा था। जब से जन्मा तब से यह उपाध करने लगा कि नगर में जाय छोटे छोटे लड़कों को पकड़ पकड़ लावै औ पहाड़ की खोह में मूँद मूँद मार मार डाले। जो बड़े होंय तिनकी छाती पै चढ़ गला घोंट जी निकाले। इस दुख से कोई कहीं न निकलने पावे, सब कोई अपने अपने लड़के को छिपावे। प्रजा कहे दुष्ट यह कंस उग्रसेन का नहीं है वंश, कोई महा पापी जन्म ले आया है जिसने सारे नगर को सताया है। यह बात सुन उग्रसेन ने विसे बुलाकर बहुतसा समझाया पर इसका कहना विसके जी में कुछ भी न आया। तब दुख पाय पछताय के कहने लगा कि ऐसे पूत होने से मैं अपूत क्यों न हुआ।

कहते हैं जिस समै कपूत घर में आता है तिसी समै जस और धर्म जाता है। जब कंस आठ वर्ष का भया तब मगध देस

पर चढ़ गया। वहाँ का राजा जरासिंधु बड़ा जोधा था तिससे मिल इसने मल्ल युद्ध किया तो उनने कंस का बल लख लिया, तब हार मान अपनी दो बेटियाँ ब्याह दीं, वह ले मथुरा में आया और उग्रसेन से बैर बढ़ाया। एक दिन कोप कर अपने पिता से बोला कि तुम रामनाम कहना छोड़ दो और महादेव का जप करो। विसने कहा—मेरे तो करता दुखहरता वेई हैं जो विनको ही न भजूँगा तो अधर्मी हो कैसे भवसागर पार हूँगा। यह सुन कंस ने खुनसा बाप को पकड़ कर सारा राज ले लिया और नगर में यों डौंडी फेर दी कि कोई यज्ञ, दान, धर्म, तप औ राम का नाम करने न पावे। ऐसा अधर्म बढ़ा कि गौ ब्राह्मन हरि के भक्त दुख पाने लगे और धरती अति बोझों मरने। जब कंस सब राजाओं का राज ले चुका तब एक दिन अपना दल ले राजा इंद्र पर चढ़ चला, तहाँ मंत्री ने कहा—महाराज इंद्रासन बिन तप किये नहीं मिलता। आप बल का गर्व न करिये, देखो गर्व ने रावन कुंभकरन को कैसा खो दिया कि जिनके कुल में एक भी न रहा।

इतनी कथा कह शुकदेवजी राजा परीक्षित से कहने लगे कि राजा, जद पृथ्वी पर अति अधर्म होने लगा तद दुख पाय घबराय गाय का रूप बन राँभती देवलोक में गई और इंद्र की सभा में जा सिर झुकाय उसने अपनी सब पीर कही कि महाराज, संसार में असुर अति पाप करने लगे, तिनके डर से धर्म तो उठ गया औ मुझे आज्ञा हो तो नरपुर छोड़ रसातल जाऊँ। इंद्र सुन सब देवताओं को साथ ले ब्रह्मा के पास गये। ब्रह्मा सुन सबको महादेव के निकट ले गये। महादेव भी सुन सबको साथ ले वहाँ गये जहाँ क्षीरसमुद्र में नारायन सो रहे थे। विनको सोता जान

ब्रह्मा, रुद्र, इंद्र, सब देवताओं को साथ ले खड़े हो, हाथ जोड़ बिनती कर वेदस्तुति करने लगे—महाराजाधिराज आपकी महिमा कौन कह सके। मच्छ रूप हो वेद डूबते निकाले। कच्छ सरूप बन पीठ पर गिरि धारन किया। बाराह बन भूमि को दाँत पै रख लिया। बावन हो राजा बलि को छला। परशुराम औतार ले क्षत्रियों को मार पृथ्वी कश्यप मुनि को दी। रामावतार लिया तब महा दुष्ट रावन को बध किया। और जब जब दैत्य तुम्हारे भक्तों को दुख देते हैं तब तब आप विनकी रक्षा करते हैं। नाथ, अब कंस के सताने से पृथ्वी अति व्याकुल हो पुकार करती है, विसकी बेग सुध लीजे, असुरों को मार साधों को सुख दीजे।

ऐसे गुन गाय देवताओं ने कहा तब आकाशबानी हुई सो ब्रह्मा देवताओं को समझाने लगे, यह जो बानी भई सो तुम्हें आज्ञा दी है कि तुम सब देवी देवता ब्रजमंडल जाय मथुरा नगरी में जन्म लो, पीछे चार सरूप धर हरि भी औतार लेंगे, बसुदेव के घर देवकी की कोख में, और बाल लीला कर नंद जसोदा को सुख देंगे। इसी रीति से ब्रह्मा ने जब बुझाके कहा, तब तो सुर, मुनि, किन्नर, औ गंधर्व सब अपनी अपनी स्त्रियों समेत जन्म ले ले ब्रजमंडल में आये, यदुवंशी और गोप कहाये। और जो चारों वेद की ऋचायें थीं सो ब्रह्मा से कहने गईं कि हम भी गोपी हो ब्रज में औतार ले बासुदेव की सेवा करें। इतनी कह वे भी ब्रज में आईं औ गोपी कहलाईं। जब सब देवता मथुरापुरी में आ चुके तब क्षीरसमुद्र में हरि विचार करने लगे कि पहले तो लक्ष्मन होयँ बलराम, पीछे बासुदेव हो मेरा नाम, भरत प्रद्युम्न, शत्रुघ्न अनिरुद्ध और सीता रुक्मिनी का अवतार लें।

———

दूसरा अध्याय

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा—हे महाराज, कंस तो इस अनीति से मथुरा में राज करने लगा औ उग्रसेन दुख भरने। देवक जो कंस का चाचा था, तिसकी कन्या देवकी जब ब्याहन जोग हुई तब विनने जा कंस से कहा कि यह लड़की किसको दें, वह बोला सूरसेन के पुत्र बसुदेव को दीजिये। इतनी बात सुनतेही देवक ने एक ब्राह्मण को बुलाय, शुभ लग्न ठहराय सूरसेन के घर टीका भेज दिया। तब तो सूरसेन भी बड़ी धूम धाम से बरात बनाय, सब देस देस के नरेस साथ ले मथुरा में बसुदेव को ब्याहन आए।

बरात नगर के निकट आई सुन उग्रसेन देवक और कंस अपना दल साथ ले आगे बढ़ नगर में ले गये, अति आदर मान से अगोनी कर जनवासा दिया; खिलाय पिलाय सब बरातियों को मढ़े के नीचे ले जा बैठाया और बेद की विधि से कंस ने बसुदेव को कन्यादान दिया। तिसके यौतुक में पंद्रह सहस्र घोड़े, चार सहस्र हाथी, अठारह सै रथ, दास दासी अनेक दे, कंचन के थाल वस्त्र आभूषन रतनजटित से भर भर अनगिनत दिये और सब बरातियों को भी अलंकार समेत बागे पहराय सब मिल पहुँचावन चले। तहाँ आकाशबानी हुई कि अरे कंस, जिसे तू पहुँचावने चला है तिजका आठवां लड़का तेरा काल उपजेगा, तिसीके हाथ तेरी मीच है।

यह सुनते ही कंस डरकर काँप उठा औ क्रोध कर देवकी को

झोंटे पकड़ रथ से नीचे खेंच लाया। खड़ग हाथ में ले दाँत पीस पीस लगा कहने, जिस पेड़ को जड़ही से उखाड़िये तिसमें फूल फल काहे को लगेगा, अब इसी को मारूँ तो निर्भय राज करूँ। यह देख सुन बसुदेव मन में कहने लगे—इस मूरख ने दिया संताप, जानता नहीं है पुन्य औ पाप, जो मैं अब क्रोध करता हूं तो काज बिगड़ेगा; तिससे इस समै क्षमा करनी जोग है। कहा है,

जो बैरी खैंचे तरवार, करे साध तिस की मनुहार।
समझ मूढ़ सोई पछताय, जैसे पानी आग बुझाय॥

. यह सोच समझ बसुदेव कंस के सोंहीं जा हाथ जोड़ बिनती कर कहने लगे कि सुनो पृथ्वीनाथ, तुम -सा बली संसार में कोई नहीं और सब तुम्हारी छाँह तले बसते हैं। ऐसे सूर हो स्त्री पर शस्त्र करो, यह अति अनुचित है और बहन के मारने से महा पाप होता है, तिसपर भी मनुष्य अधर्म तो करे जो जाने कि मैं कभी न मरूँगा। इस संसार की तो यह रीति है, इधर जन्मा, उधर मरा, करोड़ जतन से पाप पुन्य कर कोई इस देह को पोखे, पर यह कभी अपनी न होयगी और धन, जोबन, राज भी न आवेगा काज। इससे मेरा कहा मान लीजे औ अपनी अबला अधीन बहन को छोड़ दीजे। इतना सुन वह अपना काल जान घबराकर और भी झुँझलाया। तब बसुदेव सोचने लगे कि यह पापी तो असुर बुद्धि लिये अपने हठ की टेक पर है, जिसमें इसके हाथ से यह बचे सो उपाय किया चाहिये। ऐसे विचार मन में कहने लगे, अब तो इससे यों कह देवकी को बचाऊँ कि जो पुत्र मेरे होगा सो तुम्हें दूंगा, पीछे किसने देखी है लड़काही न होय, कै यही दुष्ट मरे, यह औसर तो टले फेर समझी जायगी।

इस भाँति मन में ठान बसुदेव ने कंस से कहा–महाराज, तुम्हारी मृत्यु इनके पुत्र के हाथ न होयगी, क्योंकि मैंने एक बात ठहराई है कि देवकी के जितने लड़के होंगे तितने मैं तुम्हें ला दूंगा। यह बचन मैंने तुमको दिया। ऐसी बात जब बसुदेव ने कही तब समझके कंस ने मान ली और देवकी को छोड़ कहने लगा—हे बसुदेव, तुमने अच्छा बिचार किया जो ऐसे भारी पाप से मुझे बचा लिया। इतना कह बिदा दी, वे अपने घर गये।

कितने एक दिन मथुरा में रहते भये जब पहला पुत्र देवकी के हुआ, तब बसुदेव ले कंस पै गये और रोता हुआ लड़का आगे धर दिया। देखते ही कंस ने कहा—बसुदेव, तुम बड़े सतबादी हो, मैंने सो आज जाना क्योंकि तुमने मुझसे कपट न किया, निरमोही हो अपना पुत्र ला दिया। इससे डर नहीं है कुछ मुझे, यह बालक मैंने दिया तुझे। इतना सुन बालक ले दंडवत कर बसुदेव जी तो अपने घर आये और विसी समै नारद मुनिजी ने जाय कंस से कहा—राजा, तुमने यह क्या किया जो बालक उलटा फेर दिया, क्या तुम नहीं जानते कि वासुदेव की सेवा करने को सब देवताओं ने ब्रज में आय जन्म लिया है और देवकी के आठवें गर्भ में श्रीकृष्ण जन्म ले सब राक्षसों को मार भूमि का भार उतारेंगे। इतना कह नारद मुनि ने आठ लकीर खेंच गिन-वाईं, जब आठही आठ गिनती में आईं तब डरकर कंस ने लड़के समेत बसुदेव जी को बुला भेजा। नारद मुनि तो यों समझाय बुझाय चले गये और कंस ने बसुदेव से बालक ले मार डाला। ऐसे जब पुत्र होय तब वसुदेव ले आवें औ कंस मार डाले। इसी रीति से छः बालक मारे तब सातवें गर्भ में शेषरूप जो श्रीभगवान तिन्होंने

आ बास लिया। यह कथा सुन राजा परीक्षित ने शुकदेव मुनि से पूछा—महाराज, नारद मुनिजी ने जो अधिक पाप करवाया तिसका व्योरा समझा कर कहो, जिससे मेरे मन का संदेह जाय। श्रीशुकदेवजी बोले—राजा, नारदजी ने तो अच्छा बिचारा कि यह अधिक अधिक पाप करे तो श्रीभगवान तुरंत ही प्रकट होवें।

———

तीसरा अध्याय

फेर शुकदेवजी राजा परीक्षित से कहने लगे कि राजा कैसे गर्भ में आये हरी, और ब्रह्मादिक ने गर्भस्तुति करी औ देवी जिस भाँति बलदेवजी को गोकुल ले गई, तिसी रीति से कथा कहता हूँ। एक दिन राजा कंस अपनी सभा में आय बैठा, और जितने दैत्य उसके थे विनको बुलाकर कहा—सुनो, सब देवता पृथ्वी में जन्म ले आये हैं, तिन्होंमें कृष्ण भी औतार लेगा। यह भेद मुझसे नारद मुनि समझाय के कह गये हैं, इससे अब उचित यही है कि तुम जाकर सब यदुबंसियों का ऐसा नाश करो जो एक भी जीता न बचे।

यह आज्ञा पा सबके सब दंडवत कर चले, नगर में आ ढूँढ़ ढूँढ़ पकड़ पकड़ लगे बाँधने, खाते पीते, खड़े बैठे, सोते जागते, चलते फिरते, जिसे पाया तिसे न छोड़ा, घेर के एक ठौर लाये और जला जला डबो डबो पटक पटक दुख दे दे सबको मार डाला। इसी रीति से छोटे बड़े भयावने भाँति भाँति के भेष बनाये, नगर नगर गाँव गाँव गली गली घर घर खोज खोज लगे मारने और यदुबंसी दुख पाय पाय देस छोड़ छोड़ जी ले ले भागने।

विसी समै बसुदेव की जो और स्त्रियाँ थीं सो भी रोहनी समेत मथुरा से गोकुल में आईं, जहाँ बसुदेवजी के परम मित्र नंद जी रहते थे। तिन्होंने अति हित से आसा भरोसा दे रक्खा। वे आनंद से रहने लगीं। जब कंस देवताओं को यों सताने औ

अति पाप करने लगा तब विष्णु ने अपनी आँखों से एक माया उपजाई, सो हाथ बाँध सन्मुख आई। विससे कहा—तू अभी संसार में जा औतार ले मथुरापुरी के बीच, जहाँ दुष्ट कंस मेरे भक्तों को दुख देता है, और कश्यप अदिति जो बसुदेव देवकी हो ब्रज में गये हैं तिनको मूँद रक्खा है। छः बालक तो विनके कंस ने मार डाले अब सातवें गर्भ में लक्ष्मनजी हैं, उनको देवकी की कोख से निकाल गोकुल में ले जाकर इस रीति से रोहनी के पेट में रख दीजो कि कोई दुष्ट न जाने, और सब वहाँ के लोग तेरा जस बखानें।

इस भाँति माया को समझा श्रीनारायन बोले कि तू तो पहले जाकर यह काज करके नंद के घर में जन्म ले, पीछे बसुदेव के यहाँ औतार ले मैं भी नंद के घर आता हूँ। इतना सुनते ही माया झट मथुरा में आई और मोहनी का रूप बन बसुदेव के गेह में बैठ गई।

जो छिपाय गर्भ हर लिया, जाय रोहनी को सो दिया।
जाने सब पहला आधान, भये रोहनी के भगवान॥

इस रीति से सावन सुदी चौदस बुधवार को बलदेवजी ने गोकुल में जन्म लिया और माया ने बसुदेव देवकी को जा सपना दिया कि मैंने तुम्हारा पुत्र गर्भ से ले जाय रोहनी को दिया है सो किसी बात की चिंता मत कीजो। सुनते ही बसुदेव देवकी जाग पड़े और आपस में कहने लगे कि यह तो भगवान ने भला किया, पर कंस को इसी समै जताया चाहिये नहीं तो क्या जानिये पीछे क्या दुख दे। यों सोच समझ रखवालों से बुझाकर कहा, विन्होंने कंस को जा सुनाया कि महाराज देवकी का

गर्भ अधूरा गया । बालक कुछी न पूरा भया। सुनतेही कंस घबराकर बोला कि तुम अब की बेर चौकसी करियो क्योंकि मुझे आठवेंई गर्भ का डर है जो आकाशबानी कह गई है ।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजा, बलदेवजी तो यों प्रगटे और जब श्रीकृष्ण देवकी के गर्भ में आए, तभी माया ने जा नंद की नारि जसोदा के पेट में बास लिया। दोनों आधान से थीं कि एक पर्व में देवकी जमुना नहाने गई। वहाँ संयोग से जसोदा भी आन मिली तो आपस में दुख की चरचा चली। निदान जसोदा ने देवकी को वचन दे कहा कि तेरा बालक मैं रक्खूंगी अपना तुझे दूँगी। ऐसे वचन दे यह अपने घर आई औ वह अपने। आगे जब कंस ने जाना कि देवकी को आठवाँ गर्भ रहा तब जा बसुदेव का घर घेरा। चारों ओर दैत्यों की चौकी बैठा दी और बसुदेव को बुलाकर कहा कि अब तुम मुझसे कपट मत कीजो, अपना लड़का ला दीजो। तब मैंने तुम्हारा ही कहना मान लिया था।

ऐसे कह बसुदेव देवकी को बेड़ी औ हथकड़ी पहिराय, एक कोठे में मूँदकर ताले पर ताले दे निज मंदिर में आ मारे डर के उपास कर सो रहा, फिर भोर होतेही वहीं गया जहाँ बसुदेव देवकी थे। गर्भ का प्रकाश देख कहने लगा कि इसी यमगुफा में मेरा काल है, मार तो डालूँ, पर अपजस से डरता हूँ, क्योंकि अति बलवान हो स्त्री को हनना जोग नहीं, भला इसके पुत्र ही को मारूँगा। यों कह बाहर आ, गज, सिंह, स्वान और अपने बड़े बड़े जोधा वहाँ चौकी को रक्खे और आप भी नित्त चौकसी कर आवे, पर एक पल भी कल न पावे, जहाँ देखे तहाँ आठ पहर

चौंसठ घड़ी कृष्ण रूप काल ही दृष्टि आवे। तिसके भय से भावित हो रात दिन चिंता में गँवावे।

इधर कंस की तो यह दसा थी उधर बसुदेव और देवकी पूरे दिनों महा कष्ट में श्रीकृष्ण ही को मनाते थे कि इस बीच भगवान ने आ विन्हें स्वप्न दिया और इतना कह विनके मन का सोच दूर किया जो हम बेग ही जन्म ले तुम्हारी चिंता मेटते हैं, तुम-अब मत पछिताओ। यह सुन बसुदेव देवकी जाग पड़े तो इतने में ब्रह्मा, रुद्र, इंद्रादिक देवता अपने बिमान अधर में छोड़, अलख रूप बन बसुदेव के गेह में आए, औ हाथ जोड़ जोड़ वेद गाय गाय गर्भ की स्तुति करने लगे। तिस समै विनको तो किसी ने न देखा पर वेद की धुनि सबने सुनी। यह अचरज देख सब रखवाले अचंभे रहे और बसुदेव देवकी को निहचै हुआ कि भगवान बेगही हमारी पीर हरैंगे।

चौथा अध्याय

श्रीशुकदेवजी बोले—राजा, जिस समै श्रीकृष्णचंद जन्म लेने लगे, तिस काल सबही के जी में ऐसा आनंद उपजा कि दुख नाम को भी न रहा, हरष से लगे वन उपवन हरे हो हो फूलने फलने, नदी नाले सरोवर भरने, तिनपर भाँति भाँति के पंछी कलोलें करने, और नगर नगर गाँव गाँव घर घर मंगलाचार होने, ब्राह्मन यज्ञ रचने, दसों दिसा के दिगपाल हरषने, बादल ब्रजमंडल पर फिरने, देवता अपने अपने बिमानों में बैठे आकाश से फूल बरसावने, विद्याधर, गंधर्व, चारन, ढोल, दमामे, भेर, बजाय बजाय गुन गाने। और एक ओर उर्बसी आदि सब अप्सरा नाच रही थीं कि ऐसे समै भादों बदी अष्टमी बुधवार रोहिनी नक्षत्र में आधी रात श्रीकृष्ण ने जन्म लिया, और मेघ बरन, चंद मुख, कमल नैन हो, पितांबर काछे, मुकुट धरे, बैजन्ती माल और रतन-जटित आभूपन पहिरे, चतुर्भुज रूप किये, शंख, चक्र, गदा, पद्म लिये बसुदेव देवकी को दरसन दिया। देखते ही अचंभे हो विन दोनों ने ज्ञान से बिचारा तो आदि पुरुष को जाना, तब हाथ जोड़ बिनती कर कहा—हमारे बड़े भाग जो आपने दरसन दिया और जन्म मरन का निबेड़ा किया।

इतना कह पहली कथा सब सुनाई जैसे जैसे कंस ने दुख दिया था। तहाँ श्रीकृष्णचंद बोले—तुम अब किसी बात की चिंता मन में मत करो, क्योंकि मैंने तुम्हारे दुख के दूर करनेही को औतार लिया है, पर इस समै मुझे गोकुल पहुँचा दो और

इसी बिरियाँ जसोदा के लड़की हुई है सो कंस को ला दो, अपने जाने का कारन कहता हूँ सो सुनो।

नंद जसोदा तप करयो, मोही सों मन लाय।
देख्यो चाहत बाल सुख, रहौं कछू दिन जाय॥

फिर कंस को मार आन मिलूँगा, तुम अपने मन में धीर धरो। ऐसे बसुदेव देवकी को समझाय, श्रीकृष्ण बालक बन रोने लगे, और अपनी माया फैला दी, तब तो बसुदेव देवकी का ज्ञान गया औ जाना कि हमारे पुत्र भया। यह समझ दस सहस्र गाय मन में संकल्प कर लड़के को गोद में उठा छाती से लगा लिया, उसका मुँह देख देख दोनों लंबी साँसें भर भर आपस में लगे कहने—जो किसी रीत से इस लड़के को भगा दीजे तो कंस पापी के हाथ से बचे। बसुदेव बोले—

बिधना बिन राखै नहिं कोई। कर्म लिखा सोई फल होई॥
तब कर जोर देवकी कहै। नंद मित्र गोकुल में रहै॥
पीर जसोदा हरै हमारी। नारि रोहनी तहाँ तिहारी॥

इस बालक को वहाँ ले जाओ। यों सुन बसुदेव अकुलाकर कहने लगे कि इस कठिन बंधन से छूट कैसे ले जाऊँ। जो इतनी बात कही तो सब बेड़ी हथकड़ी खुल पड़ीं, चारों ओर के किवाड़ उघड़ गये, पहरुए अचेत नींद बस भये, तब तो बसुदेवजी ने श्रीकृष्ण को सूप में रख सिर पर धर लिया और झटपट ही गोकुल को प्रस्थान किया।

ऊपर बरसे देव, पीछे सिंह जु गुंजरै।
सोचत है बसुदेव, जमुना देखि प्रवाह अति॥

नदी के तीर खड़े हो बसुदेव विचारने लगे कि पीछे तो सिंह

बोलता है औ आगे अथाह जमुना बह रही है, अब क्या करूँ। ऐसे कह भगवान का ध्यान धर जमुना में पैठे। जों जों आगे जाते थे तों तों नदी बढ़ती थी। जब नाक तक पानी आया तब तो ये निपट घबराए। इनको व्याकुल जान श्रीकृष्ण ने अपना पाँव बढ़ाय हुंकारा दिया। चरन छूते ही जमुना थाह हुई, बसुदेव पार हो नंद की पौर पर जा पहुँचे। वहाँ किवाड़ खुले पाये, भीतर धस के देखें तो सब सोए पड़े हैं। देवी ने ऐसी मोहनी डाली थी कि जसोदा को लड़की के होने की भी सुध न थी। बसुदेवजी ने कृष्ण को तो जसोदा के ढिग सुला दिया, और कन्या को ले चट अपना पंथ लिया। नदी उतर फिर आए तहाँ, बैठी सोचती थी देवकी जहाँ। कन्या दे वहाँ की कुशल कही, सुनते ही देवकी प्रसन्न हो बोली—हे स्वामी हमें कंस अब मार डाले तो भी कुछ चिंता नहीं, क्योंकि इस दुष्ट के हाथ से पुत्र तो बचा।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षित से कहने लगे कि जब बसुदेव लड़की को ले आए तब किवाड़ जों के तों भिड़ गये और दोनों ने हथकड़ियाँ बेड़ियाँ पहर लीं। कन्या रो उठी, रोने की धुन सुन पहरुए जागे तो अपने अपने शस्त्र ले ले सावधान हो लगे तुपक छोड़ने। तिनका शब्द सुन लगे हाथी चिंघाड़ने, सिंह दहाड़ने और कुत्ते भोंकने। तिसी समै अंधेरी रात के बीच बरसते में एक रखवाले ने आ हाथ जोड़ कंस से कहा—महाराज, तुम्हारा बैरी उपजा। यह सुन कंस मूर्छित हो गिरा।

———

पांचवा अध्याय

बालक का जन्म सुनते ही कंस डरता काँपता उठ खड़ा हुआ और खडग हाथ में ले गिरता पड़ता दौड़ा, छुटे बालों पसीने में डूबा धुकुड़ पुकुड़ करता जा बहन के पास पहुँचा। जब विसके हाथ से लड़की छीन ली तब वह हाथ जोड़ बोली—ऐ भैया, यह कन्या है भानजी तेरी, इसे मत मार यह पेट-पोंछन है मेरी। मारे हैं बालक तिनका दुख मुझे अति सताता है, बिन काज कन्या को मार पाप बढ़ाता है। कंस बोला—जीती लड़की न दूँगा तुझे, जो ब्याहेगा इसे सो मारेगा मुझे। इतना कह बाहर आ जों ही चाहे कि फिराय कर पत्थर पर पटके, तों ही हाथ से छूट कन्या आकाश को गई और पुकार के यह कह गई—अरे कंस, मेरे पटकने से क्या हुआ, तेरा बैरी कहीं जन्म ले चुका, अब तू जीता न बचेगा।

यह सुन कंस अछता पछता वहाँ आया जहाँ बसुदेव देवकी थे, आते ही विन के हाथ पाँव की हथकड़ी बेड़ी काट दीं और बिनती कर कहने लगा कि मैंने बड़ा पाप किया जो तुम्हारे पुत्र मारे, यह कलंक कैसे छूटेगा, किस जन्म में मेरी गति होगी, तुम्हारे देवता झूठे हुए, जिन्होंने कहा था कि देवकी के आठवें गर्भ में लड़का होगा, सो न हो लड़की हुई। वह भी हाथ से छूट स्वर्ग को गई। अब दया कर मेरा दोष जी में मत रक्खो; क्योंकि कर्म का लिखा कोई मेट नहीं सकता। इस संसार में आये से जीना, मरना, संयोग, बियोग मनुष का नहीं छुटता। जो ज्ञानी हैं सो मरना जीना समान ही जानते हैं और अभिमानी मित्र शत्रु कर

मानते हैं। तुम तो बड़े साध सतबादी हो जो हमारे हेतु अपने पुत्र ले आये।

ऐसे कह जब कंस बार बार हाथ जोड़ने लगा तब बसुदेव-जी बोले—महाराज, तुम सच कहते हो, इसमें तुम्हारा कुछ दोष नहीं, बिधना ने यही हमारे कर्म में लिखा था। यों सुन कंस प्रसन्न हो अति हित से बसुदेव देवकी को अपने घर ले आया, भोजन करवाय बागे पहराय, बड़े आदर भाव से दोनों को फेर वहीं पहुँचाय दिया और मंत्री को बुलाके कहा कि देवी कह गई है कि तेरा बैरी जग में जन्मा, इससे अब देवताओं को जहाँ पावो तहाँ मारो, क्योंकि विन्होंई ने मुझसे झूठी बात कही थी कि आठवें गर्भ में तेरा शत्रु होगा। मंत्री बोला—महाराज विनका मारना क्या बड़ी बात है, वे तो जन्म के भिखारी हैं, जद आप कोपियेगा तधी वे भाग जायँगे। विनकी क्या सामर्थ है जो तुम्हारे सनमुख हों। ब्रह्मा तो आठ पहर ज्ञान ध्यान में रहता है, महादेव भाँग धतूरा खाय, इंद्र का कुछ तुमपर न बसाय। रहा नारायन सो संग्राम नहीं जाने, लक्ष्मी के साथ रहता है सुख माने। कंस बोला—नारायन को कहाँ पावें और किस बिधि जीतें सो कहो। मंत्री ने कहा—महाराज, जो नारायन को जीता चाहते हो तो जिनके घर में आठ पहर है विनका वास, तिनही का अब करो बिनास। ब्राह्मन, बैष्णव, जोगी, जती, तपसी, सन्यासी, बैरागी आदि जितने हरि के भक्त हैं तिनमें लड़के से ले बूढ़े तक एक भी जीता न रहे। यह सुन कंस ने प्रधान से कहा—तुम सब को जा मारो। आज्ञा पाकर मंत्री अनेक राक्षस साथ ले बिदा हो नगर में जा, लगा गौ, ब्राह्मन, बालक, औ हरिभक्तों को छल बल कर ढूँढ़ ढूँढ़ मारने।

छठा अध्याय

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले—राजा एक समै नंद जसोदा ने पुत्र के लिये बड़ा तप किया। वहाँ श्रीनारायन ने आय बर दिया कि हम तुम्हारे यहाँ जन्म ले जायँगे। जब भादों बदी अष्टमी बुधवार को आधी रात के समै श्रीकृष्ण आये तब जसोदा ने जागतेही पुत्र का मुख देख नंद को बुला अति आनंद माना औ अपना जीतब सुफल जाना। भोर होतेही उठके नंदजी ने पंडित औ जोतिषियों को बुला भेजा। वे अपनी अपनी पोथी पत्रे ले ले आए। तिनको आसन दे दे आदर मान से बैठाए। विन्होंने शास्त्र की बिधि से संवत्, महीना, तिथ, दिन, नक्षत्र, जोग, करन, ठहराय लगन बिचार, मुहूर्त साध के कहा—महाराज, हमारे शास्त्र के बिचार में तो ऐसा आता है कि यह लड़का दूसरा बिधाता हो, सब असुरों को मार ब्रज का भार उतार गोपीनाथ कहावेगा, सारा संसार इसीका जस गावेगा।

यह सुन नंदजी ने कंचन के सींग, रूपे के खुर, ताँबे की पीठ समेत दो लाख गौ पाटंबर उढ़ाय संकल्प की और अनेक दान कर ब्राह्मनों को दछना दे दे असीस ले ले बिदा किया। तब नगर के सब मंगलामुखियों को बुलवाया। वे आय आय अपना अपना गुन प्रकाश करने लगे, बजंत्री बजाने, नृत्यक नाचने, गायक गाने, ढाढी ढाढिन जस बखानने और जितने गोकुल के गोप ग्वाल थे वे भी अपने नारियों के सिर पर दहेड़ियाँ लिवाये, भांति भांति के भेष बनाये, नाचते गाते नंद को बधाई देने आए। आतेही ऐसा

दधिकादौं किया कि सारे गोकुल में दही दही कर दिया। जब दधिकादौं खेल चुके तब नंदजी ने सब को खिलाय पिलाय, बागे पहराय, तिलक कर पान दे बिदा किया।

इसी रीति से कई दिन तक बधाई रही। इस बीच नंदजी से जिस जिसने जो जो आय आय माँगा सो पाया। बधाई से निश्चिंत हो नंदजी सब ग्वालों को बुलाय के कहा—भाइयो, हमने सुना है कि कंस बालक पकड़ मँगवाता है, न जानिये कोई दुष्ट कुछ बात लगा दे, इससे उचित है कि सब मिल भेंट ले चलें औ बरसौड़ी दे आवें। यह वचन मान सब अपने अपने घर से दूध, दही, माखन और रुपए लाए, गाड़ों में लाद लाद नंद के साथ हो गोकुल से चल मथुरा आए। कंस से भेटकर भेट दी। कौड़ी कौड़ी चुकाय बिदा हो जुहार कर अपनी बाट ली।

जोंही जमुना तीर पै आए तोंही समाचार सुन बसुदेवजी आ पहुँचे। नंदजी से मिल कुशल क्षेम पूछ कहने लगे—तुम सा सगा औ मित्र हमारा संसार में कोई नहीं, क्योंकि जब हमें भारी बिपत भई तब गर्भवती रोहनी तुम्हारे यहाँ भेज दी, विसके लड़का हुआ सो तुमने पाल बड़ा किया, हम तुम्हारा गुन कहाँ तक बखानें। इतना कह फेर पूछा—कहो राम कृष्ण और जसोदा रानी आनंद से हैं। नंदजी बोले—आपकी कृपा से सब भले हैं और हमारे जीवनमूल तुम्हारे बलदेवजी भी कुशल से हैं, कि जिनके होते तुम्हारे पुन्य प्रताप से हमारे पुत्र हुआ, पर एक तुम्हारेई दुख से हम दुखी हैं। बसुदेव कहने लगे—मित्र, विधाता से कुछ न बसाय, कर्म की रेख किसी से मेटी न जाय। इस संसार में आय दुःख पीर पाय कौन पछताय। ऐसे ज्ञान जनाय के कहा—

तुम घर जाहु बेग आपने। कीने कंस उपद्रव घने ॥
बालक ढूँढ़ मँगावे नीच। हुई साध परजा की मीच ॥

तुम तो सब यहाँ चले आए हो और राक्षस ढूँढ़ते फिरते हैं। न जानिये कोई दुष्ट जाय गोकुल में उपाध मचावे। यह सुनते ही नंदजी अकुलाकर सबको साथ लिये सोचते मथुरा से गोकुल को चले।

सातवां अध्याय

श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजा, कंस का मंत्री तो अनेक राक्षस साथ लिये मारता फिरता ही था कि कंस ने पूतना नाम राक्षसी को बुलाकर कहा—तू जा यदुबंसियों के जितने बालक पावे तितने मार। यह सुन वह प्रसन्न हो दंडवत कर चली तो अपने जी में कहने लगी—

> भये पूत हैं नंद के सूनों गोकुल गाउँ।
> छलकर अबही आनिहों गोपी ह्वै के जाउँ॥

यह कह सोलह सिंगार बारह आभरन कर, कुच में विष लगाय मोहनी रूप बन, कपट किये कँवल का फूल हाथ में लिये बन ठनके ऐसे चली कि जैसे सिंगार किये लक्ष्मी अपने कंत पै जाती हो। गोकुल में पहुँच हँसती हँसती नंद के मंदिर बीच गई। इसे देख सबकी सब मोहित हो भूलीसी रहीं। यह जा जसोदा के पास बैठी, और कुशल पूछ असीस दी कि बीर तेरा कान्ह जीवो कोट बरीस। ऐसे प्रीत बढ़ाय लड़के को जसोदा के हाथ से ले गोद में रख जो दूध पिलावने लगी तो कृष्ण दोनों हाथों से चूँची पकड़ मुँह लगाय लगे प्रान समेत पै पीने। तब तो अति व्याकुल हो पूतना पुकारी—कैसा जसुदा तेरा पूत, मानुष नहीं यह है जमदूत। जेवरी जान मैंने साँप पकड़ा जो इसके हाथ से बच जीती जाऊँगी तो फेर गोकुलमें कभी न आऊँगी। यों कह भाग गाँव के बाहर आई पर कृष्ण ने न छोड़ा। निदान विसका जी लिया। वह पछाड़ खाय ऐसे गिरी जैसे आकाश से वज्र गिरे।

अति शब्द सुन रोहिनी औ जसोदा रोती पीटती वहीं आईं जहाँ पूतना दो कोस में मरी पड़ी थी और विनके पीछे सब गाँव उठ धाया। देखें तो कृष्ण उसकी छाती पर चढ़े दूध पी रहे हैं। झट उठाय मुख चूँब हृदय से लगाय घर ले आईं। गुनियों को बुलाय झाड़ फूँक करने लगीं और पूतना के पास गोपी ग्वाल खड़े आपस में कह रहे थे कि भाई इसके गिरने का धमका सुन हम ऐसे डरे हैं जो छाती अब तक धड़कती है, न जानिये बालक की क्या गति हुई होगी।

इतने में मथुरा से नंदजी आये तो देखते क्या हैं कि एक राक्षसी मरी पड़ी है औ ब्रजबासियों की भीड़ घेरे खड़ी है, पूछा-यह उपाध कैसे हुई। वे कहने लगे—महाराज, पहले तो यह अति सुंदर हो तुम्हारे घर असीस देती गई, इसे देख सब ब्रज नारी भूल रहीं, यह कृष्ण को ले दूध पिलाने लगी। पीछे हम नहीं जानते क्या गति हुई। इतना सुन नंदजी बोले—बड़ी कुशल भई जो बालक बचा औ यह गोकुल पर न गिरी, नहीं तो एक भी जीता न रहता, सब इसके नीचे दब मरते। यों कह नंदजी तो घर आय दान पुन्य करने लगे और ग्वालों ने फरसे, फावड़े, कुदाल, कुल्हाड़ी से काट पूतना के हाड़ गोड़ तो गढ़े खोद खोद गाड़ दिये और माँस चाम इकट्ठा कर फूँक दिया। विसके जलने से एक ऐसी सुगंध फैली कि जिसने सारे संसार को सुगंध से भर दिया।

इतनी कथा सुन राजा परीक्षित ने शुकदेवजी से पूछा—महाराज वह राक्षसी महा मलीन, मद माँस खानेवाली, विसके शरीर से सुगंध कैसे निकली सो कृपा कर कहो। मुनि बोले—राजा, श्रीकृष्णचंद ने दूध पी के विसे मुक्ति दी, इस कारन सुगंध निकली।

———

आठवाँ अध्याय

श्री शुकदेव मुनि बोले—

जिहि नक्षत्र मोहन भये सो नक्षत्र पर्‍यो आइ।
चारु बधाए रीति सब करत जसोदा माइ॥

जब सत्ताइस दिन के हरि हुए तब नंदजी ने सब ब्राह्मन औ ब्रजबासियों को नोता भेज दिया। वे आए, तिन्हें आदर मान कर बैठाया। आगे ब्राह्मनों को तो बहुत सा दान दे बिदा किया और भाइयों को आगे पहराय षटरस भोजन कराने लगे। तिस समै जसोदा रानी परोसती थीं, रोहनी टहल करती थीं, ब्रजबासी हँस हँस खा रहे थे, गोपियाँ गीत गा रही थीं, सब आनंद में ऐसे मगन थे कि कृष्ण की सुरत किसू को भी न थी। और कृष्ण एक भारी छकड़े के नीचे पालने में अचेत सोते थे कि इसमें भूखे हो जगे, पाँव के अँगुठे मुँह में दे रोवन लगे औ हिलक हिलक चारों ओर देखने। विसी औसर उड़ता हुआ एक राक्षस आ निकला। कृषण को अकेला देख अपने मन में कहने लगा कि यह तो कोई बड़ा बली उपजा है, पर आज मैं इससे पूतना का बैर लूँगा। यों ठान सकट में आन बैठा। तिसीसे उसका नाम सकटासुर हुआ। जब गाड़ा चड़चड़ायकर हिला, तब श्रीकृष्ण ने बिलकते बिलकते एक ऐसी लात मारी कि वह मर गया, और छकड़ा टूक टूक हो गिरा तो जितने बासन दूध दही के थे सब फूट चूर हुए औ गोरस की नदी सी बह निकली। गाड़े के टूटने और भाँड़ों के फूटने का शब्द सुन सब गोपी ग्वाल दौड़ आए, आते ही जसोदा ने कृषण को उठाय मुँह चूँब छाती से लगा लिया। यह

अचरज देख सब आपस में कहने लगे—आज विधना ने बड़ी कुशल की जो बालक बच रहा औ सकट ही टूट गया ।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी बोले-हे राजा, जब हरि पाँच महीने के हुए तब कंस ने तृनावर्त्त को पठाया, वह बगूला हो गोकुल में आया । नंदरानी कृष्ण को गोद में लिये आँगन के बीच बैठी थी कि एकाएकी कान्ह ऐसे भारी हुए जो जसोदा ने मारे बोझ के गोद से नीचे उतारे । इतने में एक ऐसी आँधी आई कि दिन की रात हो गई औ लगे पेड़ उखड़ उखड़ गिरने, छप्पर उड़ने । तब व्याकुल हो जसोदाजी श्रीकृष्ण को उठाने लगीं पर वे न उठे । जौंहीं विनके शरीर से इनका हाथ अलग हुआ तौंहीं तृनावर्त्त आकाश को ले उड़ा और मन में कहने लगा कि आज इसे बिन मारे न रहूँगा ।

वह तो कृष्ण को लिये वहाँ यह विचार करता था, यहाँ जसोदाजी ने जब आगे न पाया तब रो रो कृष्ण कृष्ण कर पुकारने लगीं । विनका शब्द सुन सब गोपी ग्वाल आए, साथ हो ढूँढ़ने को धाये । अँधेरे में अटकल से टटोल टटोल चलते थे तिसपर भी ठोकरें खाय गिर गिर पड़ते थे ।

ब्रज बन गोपी ढूँढ़त डोलैं । इत रोहनी जसोदा बोलैं ॥
नंद मेघ धुनि करैं पुकार । टेरें गोपी गोप अपार ॥

जद श्रीकृष्ण ने नंद जसोदा समेत सब ब्रजबासी अति दुखित देखे तद तृनावर्त्त को फिराय आँगन में ला सिला पर पटका कि विसका जी देह से निकल सटका । आँधी थँभ गई, उजाला हुआ, सब भूले भटके घर आये, देखें तो राक्षस आँगन में मरा पड़ा है । श्रीकृष्ण छाती पर खेल रहे हैं । आते ही जसोदा ने उठाय कंठ से लगा लिया और बहुत सा दान ब्राह्मनों को दिया

नवां अध्याय

श्री शुकदेवजी बोले—हे राजा, एक दिन बसुदेवजी ने गर्ग मुनि को जो बड़े जोतिषी औ यदुबंसियों के परोहित थे, बुलाकर कहा कि तुम गोकुल जा लड़के का नाम रख आओ।

गई रोहनी गर्ग सों, भयो पूत है ताहि।
किती आयु कैसो बली, कहा नाम ता आहि॥

और नंदजी के पुत्र हुआ है सो भी तुम्हें बुलाय गये हैं। सुनते ही गर्ग मुनि प्रसन्न हो चले औ गोकुल के निकट आ पहुँचे। तिसी समै किसो ने नंदजी से आ कहा कि यदुबंसियों के परोहित गर्ग मुनि जी आते हैं। यह सुन नंदजी आनंद से ग्वाल बाल संग कर भेट ले उठ धाए और पाटंबर के पाँवड़े डालते बाजे गाजे से ले आए, पूजा कर आसन पर बैठाय चरनामृत ले स्त्री पुरुष हाथ जोड़ कहने लगे—महाराज, बड़े भाग हमारे जो आपने दया कर दरसन दे पबित्र किया। तुम्हारे प्रताप से दो पुत्र हुए हैं, एक रोहनी के एक हमारे, कृपा कर तिनका नाम धरिये। गर्ग मुनि बोले—ऐसे नाम रखना उचित नहीं, क्यों कि जो यह बात फैले कि गर्ग मुनि गोकुल में लड़कों के नाम धरने गये हैं औ कंस सुन पावे तो वह यही जानेगा कि देवकी के पुत्र को बसुदेव के मित्र के यहाँ कोई पहुँचाय आया है इसी लिये गर्ग परोहित गया है। यह समझ मुझे पकड़ मँगावेगा और न जानिये तुम पर भी क्या उपाध लावे। इससे तुम फैलाव कुछ मत करो, चुपचाप घर में नाम धरवा लो।

नंद बोले—गर्गजी, तुमने सच कहा। इतना कह घर के भीतर ले जाय बैठाया। तब गर्ग मुनि ने नंदजी से दोनों की जन्मतिथि औ समै पूछ लगन साध, नाम ठहराय कहा—सुनो नंदजी, बसुदेव की नारि रोहनी के पुत्र के तो इतने नाम होयँगे, संकर्षण, रेवती-रमण, बलदाऊ, बलराम, कालिंदीभेदन, हलधर औ बलबीर, औ कृष्ण रूप जो तुम्हारा लड़का है विसके नाम तो अनगिनत हैं पर किसी समय वसुदेव के यहाँ जन्मा, इससे वासुदेव नाम हुआ औ मेरे विचार में आता है कि ये दोनों बालक तुम्हारे चारों युग में जब जन्मे हैं तब साथ ही जन्मे हैं।

नंदजी बोले—इनके गुन कहो। गर्ग मुनि ने उत्तर दिया—"ये दूसरे विधाता हैं, इनकी गति कुछ जानी नहीं जाती, पर मैं यह जानता हूँ कि कंस को मार भूमि का भार उतारेंगे। ऐसे कह गर्ग मुनि चुपचुपाते चले गये और बसुदेव को जा सब समाचार कहे।

आगे दोनों बालक गोकुल में दिन दिन बढ़ने लगे और बाल-लीला कर कर नंद जसोदा को सुख देने। नीले पीले झगुले पहन माथे पर छोटी छोटी लटूरियाँ बिखरी हुई, ताइत गंडे बाँधे, कठले गले में डाले, खिलोने हाथों में लिये खेलते, आँगन के बीच घुटनों चल चल गिर गिर पड़ें और तोतली तोतली बातें करें। रोहनी औ जसोदा पीछे लगी फिरें, इसलिये कि मत कहीं लड़के किसी से डर ठोकर खा गिरें। जब छोटे छोटे बछड़ों और बछियाओं की पूँछ पकड़ पकड़ उठें और गिर गिर पड़ें तब जसोदा और रोहनी अति प्यार से उठाय छाती से लगाय दूध पिलाय भाँति भाँति के लाड़ लड़ावें।

जद श्रीकृष्ण बड़े भये तो एक दिन ग्वाल बाल साथ ले ब्रज में दधि माखन की चोरी को गये।

सूने घर में ढूँढें जाय, जो पावें सो देयँ लुटाय।

जिन्हें घर में सोते पावें तिनकी धरी ढकी दहेड़ी उठा लावें। जहाँ छींके पर रक्खा देखें तहाँ पीढ़ी पर पटड़ा, पटड़े पै उलूखल धर साथी को खड़ा कर उसके ऊपर चढ़ उतार लें, कुछ खावें लुटावें औ लुढ़ाय दें। ऐसे गोपियों के घर घर नित चोरी कर आवें।

एक दिन सब ने मता किया और गेह में मोहन को आने दिया। जों घर भीतर पैठ चाहें कि माखन दहीं चुरावें तों जाय पकड़कर कहा—दिन दिन आते थे निस भोर, अब कहाँ जावोगे माखनचोर। यों कह जब सब गोपी मिल कन्हैया को लिये जसोदा के पास उलाहना देने चलीं, तब श्रीकृष्ण ने ऐसा छल किया कि विसके लड़के का हाथ विसे पकड़ा दिया और आप दौड़ अपने ग्वाल बालों का संग लिया। वे चलीं चलीं नंदरानी के निकट आय, पाओं पड़ बोली—जो तुम बिलग न मानो तो हम कहैं, जैसी कुछ उपाय कृष्ण ने ठानी है।

> दूध दह्यो माखन मह्यो, बचे नहीं ब्रज माँझ।
> ऐसी चोरी करतु है, फिरतु भोर अरु साँझ॥

जहाँ कहीं धरा ढका पाते हैं तहाँ से निधड़क उठा लाते हैं, कुछ खाते हैं औ लुटाते हैं। जो कोई इनके मुख में दही लगा बतावे, विसे उलट कर कहते हैं—तूनेई तो लगाया है। इस भाँति नित चोरी कर आते थे, आज हमने पकड़ पाया सो तुम्हें दिखाने लाई हैं।

जसोदा बोलीं—वीर तुम किसका लड़का पकड़ लाईं, कल

से तो घर के बाहर भी नहीं निकला मेरा कुँवर कन्हाई। ऐसाही सच बोलती हो। यह सुन औ अपना ही बालक हाथ में देख, वे हँस कर लजाय रहीं। तहाँ जसोदाजी ने कृष्ण को बुलाय के कहा—पुत्र, तुम किसू के यहाँ मत जाओ जो चहिये सो घर में से ले खाओ।

सुन कै कान्ह कहत तुतुराय। मत मैया तू इन्हें पतियाय।
ये झूठी गोपी झूठौ बोलें। मेरे पीछे लागी डोलें।

कहीं दोहनी बछड़ा पकड़ाती हैं, कभी घर की टहल कराती हैं, मुझे द्वारे रखवाली बैठाय अपने काज को जाती हैं, फिर झूठमूठ आय तुमसे बातें लगाती हैं। यों सुना गोपी हरिमुख देख देख मुसकुरा कर चली गईं।

आगे एक दिन कृष्ण बलराम सखाओं के संग बाखल में खेलते थे कि जों कान्ह ने मट्टी खाई तो एक सखा ने जसोदा से जा लगाई, वह क्रोध कर हाथ में छड़ी ले उठ धाई। मा को रिस भरी आती देख मुँह पोंछ डरकर खड़े हो रहे। इन्होंने जाते ही कहा—क्यों रे तूने माटी क्यों खाई। कृष्ण डरते काँपते बोले, मा तुझसे किसने कहा।

ये बोलीं—तेरे सखा ने। तब मोहन ने कोप कर सखा से पूछा क्यों रे मैंने मट्टी कब खाई है। वह भय कर बोला—भैया मैं तेरी बात कुछ नहीं जानता क्या कहूँगा। जों कान्ह सखा से बतराने लगे तों जसोदा ने उन्हें जा पकड़ा, तहाँ कृष्ण कहने लगे—मैया, तू मत रिसाय, कहीं मनुष भी मट्टी खाते हैं। वह बोली—मैं तेरी अटपटी बात नहीं सुनती, जो तू सच्चा है तो अपना मुख दिखा। जों श्रीकृष्ण ने मुख खोला तों उसमें तीनों लोक दृष्ट आए।

तद जसोदा को ज्ञान हुआ तो मन में कहने लगी कि मैं बड़ी मूरख हूँ जो त्रिलोकी के नाथ को अपना सुत कर मानती हूँ।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव राजा परिक्षित से बोले—हे राजा, जब नंदरानी ने ऐसा जाना तब हरि ने अपनी माया फैलाई। इतने में मोहन को जसोदा प्यार कर कंठ लगाय घर ले आई।

———

दसवाँ अध्याय

एक दिन दही मथने की बिरियाँ जान, भोरही नंदरानी उठी और सब गोपियों को जगाय बुलाया, वे आय घर झाड़, बुहार, लीप, पोत अपनी अपनी मथनियाँ ले ले दधि मथने लगीं। तहाँ नंदमहरि भी एक बड़ा सा कोरा चरुआ ले ईंढुँए पर रख चौकी बिछी नेती और रई मँगाय, टटकी टटकी दहेंडियाँ बाछ राम कृष्ण के लिये बिलोवन बैठी।

तिस समै नंद के घर में ऐसा शब्द दही मथने का हो रहा था कि जैसे मेघ गरजता हो। इतने में कृष्ण जागे तो रो रो मा मा कर पुकारन लागे। जब विनका पुकारना किसूने न सुना तब आपही जसोदा के निकट आए, औ आँखें डबडबाय अनमने हो ठुसक ठुसक तुतलाय कहने लगे कि मा तुझे कै बेर बुलाया पर मुझे कलेऊ देन न आई। तेरा काज अब तक नहीं निबड़ा। इतना कह मचल पड़े। रइ चरुए से निकाल दोनों हाथ डाल लगे माखन काढ़ काढ़ फेंकने, अंग लथेड़ने औ पाँव पटक पटक आँचल खेंच खेंच रोने। तब नंदरानी घबराय झुँझलाय के बोली—बेटा यह क्या चाल निकाली,

चल उठ तुझे कलेऊ दूँ। कृष्ण कहे अब मैं नहिं लूँ॥
पहिले क्यों नहिं दीना माँ। अब तो मेरी लेहै बला॥

निदान जसोदा ने फुसलाय प्यार से मुँह चूँब गोद में उठा लिया और दधि माखन रोटी खाने को दिया। हरि हँस हँस खाते थे

नंदमहरि आँचल की ओट किये खिला रही थी, इसलिये कि मत किसी की दीठि लगे।

इस बीच एक गोपी ने आ कहा कि तुम तो यहाँ बैठी हो वहाँ चूल्हे पर से सब दूध उफन गया। यह सुनते ही झट कृष्ण को गोद से उतार उठ धाई और जाके दूध बचाया। यहाँ कान्ह दही मही के भाजन फोड़, रई तोड़, माखन भरी कमोरी ले, ग्वाल बालों में दौड़ आए। एक उलूखल औंधा धरा पाया तिसपर जा बैठे औ चारों ओर सखाओं को बैठाय लगे आपस में हँस हँस बाँट बाँट माखन खाने।

इसमें जसोदा दूध उतार आय देखे तो आँगन औ तिवारे में दही मही की कीच हो रही है। तब तो सोच समझ हाथ में छड़ी ले निकली और ढूँढ़ती ढूँढ़ती वहाँ आई जहाँ श्रीकृष्ण मंडली बनाए माखन खाय खिलाय रहे थे। जाते ही पीछे से जों कर धरा, तों हरि माँ को देखते ही रोकर हा हा खाय लगे कहने कि मा, गोरस किसने लुढाया मैं नहीं जानूँ, मुझे छोड़ दे। ऐसे दीन बचन सुन जसोदा हँसकर हाथ से छड़ी डाल और आनंद में मगन हो रिस के मिस कंठ लगाय घर लाय कृष्ण को उलूखल से बाँधने लगी। तब श्रीकृष्ण ने ऐसा किया कि जिस रस्सी से बाँधे वही छोटी होय। जसोदा ने सारे घर की रस्सियाँ मँगाई तौ भी बाँधे न गये। निदान मा को दुखित जान आपही बँधाई दिये। नंदरानी बाँध गोपियों को खोलने की सौंह दे फिर घर की टहल करने लगी।

ग्यारहवां अध्याय

श्रीशुकदेव जी बोले—हे राजा, श्रीकृष्ण को बँधे बँधे पूर्व जन्म की सुधि आई कि कुबेर के बेटों को नारद ने श्राप दिया है, तिनका उद्धार किया चाहिये। यह सुन राजा परीक्षित ने शुकदेवजी से पूछा—महाराज, कुबेर के पुत्रों को नारद मुनि ने कैसे श्राप दिया था सो समझाय कर करो। शुकदेव मुनि बोले कि नल कूबर नाम कुबेर के दो लड़के कैलास में रहें, सो शिव की सेवा कर कर अति धनवान हुए। एक दिन स्त्रियाँ साथ ले वे वनबिहार को गये, वहाँ जाय मद पी मदमाते भये, तब नारियों समेत नंगे हो गंगा में न्हाने लगे और गलबहियाँ डाल डाल अनेक अनेक भाँति की कलोलें करने की इतने में तहाँ नारद मुनि आ निकले। विन्हें देखते ही रंडियों ने तो निकल कपड़े पहने और वे मतवारे वहीं खड़े रहे। विनकी दशा देख नारदजी मन में कहने लगे कि इनको धन का गर्व हुआ है, इसीसे मदमाते हो काम क्रोध को सुख मानते हैं। निरधन मनुष्य को अहंकार नहीं होता औ धनवान को धर्म अधर्म का विचार। कहा है। मूरख झूठी देह से नेह कर भूलें संपत कुटुंब देख के फूलें। और साध न धनमद मन में आनें, संपत बिपत एकसम मानें। इतना कह नारद मुनि ने विन्हें श्राप दिया कि इस पाप से तुम गोकुल में जा बृक्ष हो, जब श्रीकृष्ण अवतार लेंगे तब तुम्हें मुक्ति देंगे। ऐसे नारद मुनि ने विन्हें सरापा था, तिसी से वे गोकुल में आ रूख हुए, तब विनका नाम यमलार्जुन हुआ।

इतनी कथा कह सुकदेव जी बोले—महाराज, इसी बात की सुरत कर श्रीकृष्ण ओखली को घसीटे घसीटे वहाँ ले गये, जहाँ यमलार्जुन पेड़ थे, जाते ही विन दोनों तरवर के बीच उलूखल को आड़ा डाल एक ऐसा झटका मारा कि वे दोनों जड़ से उखड़ पड़े औ विनमें से दो पुरुष अति सुंदर निकल हाथ जोड स्तुति कर कहने लगे हे नाथ, तुम बिन हमसे महापापियों की सुध कौन ले। श्रीकृष्ण बोले—सुनो, नारदमुनि ने तुम पर बड़ी दया की जो गोकुल में मुक्ति दी, विन्हीं की कृपा से तुमने मुझे पाया, अब बर माँगो जो तुम्हारे मन में हो।

यमलार्जुन बोले—दीनानाथ, यह नारदजी की कृपा है जो आपके चरन परसे और दरसन किया, अब हमें किसी वस्तु की इच्छा नहीं, पर इतनाही दीजे जो सदा तुम्हारी भक्ति हृदे में रहे। यह सुन वर दे हँसकर श्रीकृष्णचंद ने तिन्हें बिदा किया।

बारहवां अध्याय

श्रीशुकदेव मुनि बोले—राजा, जब वे दोनों तरु गिरे तब तिनका शब्द सुन नंदरानी घबरा कर दौड़ी वहाँ आई जहाँ कृष्ण को उलूखल से बाँध गई थी और विनके पीछे सब गोपी ग्वाल भी आए। जद कृष्ण को वहाँ न पाया तद व्याकुल हो जसोदा मोहन मोहन पुकारती औ कहती चली। कहाँ गया बाँधा था माई, कहीं किसी ने देखा मेरा कुँअर कन्हाई। इतने में सोंहीं से आ एक बोली ब्रजनारी कि दो पेड़ गिरे तहाँ बचे मुरारी। यह सुन सब आगे जाय देखें तो सचही वृक्ष उखड़े पड़े हैं और कृष्ण तिनके बीच ओखली से बँधे सुकड़े बैठे हैं। जाते ही नंदमहरि ने उलूखल से खोल कान्ह को रोकर गले लगा लिया, और सब गोपियाँ डरा जान लगीं चुटकी ताली दे दे हँसाने। तहाँ नंद उपनंद आपस में कहने लगे कि ये जुगान जुग के रूख जमे हुए कैसे उखड़ पड़े यह अचंभा जी में आता है, कुछ भेद इनका समझा नहीं जाता। इतना सुनके एक लड़के ने पेड़ गिरने का व्योरा ज्‍यों का त्यों कहा, पर किसीके जी में न आया। एक बोला—ये बालक इस भेद को क्या समझें। दूसरे ने कहा—कदाचित यही हो, हरि की गति कौन जाने। ऐसे अनेक अनेक भाँति की बातें कर श्रीकृष्ण को लिये सब आनंद से गोकुल आये, तब नंदजी ने बहुत सा दान पुन्य किया।

कितने एक दिन बीते कृष्ण का जन्म दिन आया, तो जसोदा रानी ने सब कुटुम्ब को नोत बुलाया और मंगलाचार कर बरस

गाँठ बाँधी। जद सब मिलि जेंवन बैठे तद नंदराय बोले—सुनो भाइयो, अब इस गोकुल में रहना कैसे बने, दिन दिन होने लगे उपद्रव घने, चलो कहीं ऐसी ठौर जावें जहाँ तृन जल का सुख पावें। उपनंद बोले—बृंदाबन जाय बसिये तो आनंद से रहिये। यह बचन सुन नंदजी ने सबको खिलाय पिलाय पान दे बैठाय, त्योंहीं एक जोतिषी को बुलाय, यात्रा का महूर्त्त पूछा। तिसने विचार के कहा—इस दिसा की यात्रा को कल का दिन अति उत्तम है। बाएँ जोगनी पीछे दिसासूल और सनमुख चंद्रमा है। आप निस्संदेह भोरही प्रस्थान कीजे।

यह सुन तिस समै तो सब गोपी ग्वाल अपने अपने घर गये, पर सबेरे ही अपनी अपनी वस्तु भाव गाड़ों पै लाद लाद आ इकट्ठे भये। तब कुटुम्ब समेत नंदजी भी साथ हो लिये और चले चले नदी उतर साँझ समै जा पहुँचे। ब्रंदादेवी को मनाय ब्रंदाबन बसाया। तहाँ सब सुख चैन से रहने लगे।

जद श्रीकृष्ण पाँच बरस के हुए तद मा से कहने लगे कि मैं बछड़े चरावने जाऊँगा, तू बलदाऊ से कह दे जो मुझे बन में अकेला न छोड़ें। वह बोली—पूत, बछड़े चरावनेवाले बहुत हैं दास तुम्हारे, तुम मत पल ओट हो मेरे नैन आगे से प्यारे। कान्ह बोले जो मैं बन में खेलने जाऊँगा, तो खाने को खाऊँगा, नहीं तो नहीं। यह सुन जसोदा ने ग्वाल बालों को बुलाय कृष्ण बलराम को सोंपकर कहा कि तुम बछड़े चरावने दूर मत जाइयो और साँझ न होते दोनों को संग ले घर आइयो। बन में इन्हें अकेले मत छोड़ियो, साथ ही साथ रहियो, तुम इनके रखवाले हो। ऐसे कह कलेऊ दे राम कृष्ण को तिनके संग कर दिया।

वे जाय जमुना के तीर बछड़े चराने लगे और ग्वाल बालों में खेलने कि इतने में कंस का पठाया कपट रूप किये बच्छासुर आया। विसे देखते ही सब बछड़े डर जिधर तिधर भागे, तब श्रीकृष्ण ने बलदेवजी को सेन से जताया कि भाई, यह कोई राक्षस आया। आगे जों वह चरता चरता घात करने को निकट पहुँचा तों श्रीकृष्ण ने पिछले पाँव पकड़ फिराय कर ऐसा पटका कि विसका जी घट से निकल सटका।

बच्छासुर का मरना सुन कंस ने बकासुर को भेजा। वह ब्रंदाबन में आय अपनी घात लगाय, जमुना के तीर पर्वत सम जा बैठा। विसे देख मारे भय के ग्वाल बाल कृष्ण से कहने लगे कि भैया, यह तो कोई राक्षस बगुला बन आया है, इसके हाथ से कैसे बचेंगे।

ये तो इधर कृष्ण से यों कहते थे और उधर वह जी में यह विचारता था कि आज इसे बिना मारे न जाऊँगा। इतने में जों श्रीकृष्ण उसके निकट गये तों विसने इन्हें चोंच में उठाय मुँह मूंद लिया। ग्वाल बाल ब्याकुल हो चारों ओर देख देख रो रो पुकार पुकार लगे कहने—हाय हाय, यहाँ तो हलधर भी नहीं है, हम जसोदा से क्या जाय कहेंगे। इनको अति दुखित देख श्रीकृष्ण ऐसे तत्ते हुए कि वह मुख में न रख सका। जो विसने इन्हें उगला तो इन्होंने उसे चोंच पकड़ ठोंठ पाँव तले दबाय चीर डाला और बछड़े घेर सखाओं को साथ हँसते खेलते घर आए।

———

तेरहवाँ अध्याय

श्रीशुकदेव बोले—सुनो महाराज, प्रात होते ही एक दिन श्रीकृष्ण बछड़े चरावन बन को चले, तिनके साथ सब ग्वाल बाल भी अपने अपने घर से छाक ले ले हो लिये और हार में जाय छाक धर बछरू चरने को छोड़, लगे खड़ी गेरू से तन चीत चीत बन के फल फूलों के गहने बनाय बनाय पहन पहन खेलने और पशु पंछियों की बोली बोल भाँति भाँति के कुतूहल कर कर नाचने गाने।

इतने में कंस का पठाया अघासुर नाम राक्षस आया, सो अति बड़ा अजगर हो मुँह पसार बैठा और सब सखा समेत श्रीकृष्ण भी खेलते खेलते वहीं जा निकले, जहाँ वह घात लगाये मुँह बाये बैठा था। दूर से विसे देख ग्वाल बाल आपस में लगे कहने कि भाई, यह तो कोई पहाड़ है कि जिसकी कंदरा इतनी बड़ी है। ऐसे कहते औ बछड़े चराते उसके पास पहुँचे तब एक लड़का विसका मुँह खुला देख बोला—भाई, यह तो कोई अति भयावनी गुफा है, इसके भीतर न जावेंगे, हमें देखतेही भय लगता है। फिर तोख नाम सखा बोला—चलो इसमें घुस चलें। कृष्ण साथ रहते हम क्यों डरें। जो कोई असुर होगा तो बकासुर की रीति से मारा जायगा।

यों सब सखा खड़े बातें करते ही थे कि विसने एक ऐसी लंबी साँस खैंची जो बछड़ों समेत सब ग्वाल बाल उड़के विसके मुख में जा पड़े। विषभरी तत्ती भाप जों लगी तों लगे व्याकुल हो बछड़े राँभने औ सखा पुकारने कि हे कृष्ण प्यारे, बेग सुध ले, नहीं तो

सब जल मरते हैं। विनकी पुकार सुनते ही आतुर हो श्रीकृष्ण भी उसके मुख में बड़ गये। विनने प्रसन्न हो मुँह मूंद लिया। तहाँ श्रीकृष्ण ने अपना शरीर इतना बढ़ाया कि विसका पेट फट गया। सब बछरू औ ग्वाल बाल निकल पड़े, तिस समय आनंद कर देवताओं ने फूल औ अमृत बरसाय सबकी तपत हर ली। तब ग्वाल बाल श्रीकृष्ण से कहने लगे कि भैया, इस असुर को मार आज तो तूने भले बचाये, नहीं सब मर चुके थे।

चौदहवां अध्याय

श्रीशुकदेव बोले—हे राजा, ऐसे अघासुर को मार श्रीकृष्ण-चंद बछड़े घेर, सखाओं को साथ ले आगे चले। कितनी एक दूर जाय कदम की छाँह में खड़े हो बंशी बजाय सब ग्वालों को बुलाय कहा—भैया यह भली ठौर है, इसे छोड़ आगे कहाँ जायँ, बैठो यहीं छाकें खाँय। सुनते ही विन्होंने बछड़े तो चरने को हाँक दिये और आक, ढाक, बड़, कदम, कँवल के पात लाय, पत्तल दोने, बनाय, झाड़ बुहार श्रीकृष्ण के चारों ओर पाँति की पाँति बैठ गये, औ अपनी अपनी छाकें खोल खोल लगे आपस में परोसने।

जब परोस चुके तब श्रीकृष्णचंद ने सबके बीच खड़े हो पहले आप कौर उठाय खाने की आज्ञा दी। वे खाने लगे तिनमें मोर मुकुट धरे, बनमाल गरे, लकुट लिये, तृभंगी छब किये, पीतांबर पहने, पीतपट ओढ़े, हँस हँस श्रीकृष्ण भी अपनी छाक से सब को खिलाते थे, और एक एक के पनवारे से उठाय चाख चाख खट्टे मीठे तीते चरपरे का स्वाद कहते जाते थे औ विस मंडली में ऐसे सुहावने लगते थे कि जैसे तारों में चंद्रमा। तिस समै ब्रह्मा आदि सब देवता अपने अपने विमानों में बैठे, आकाश में ग्वाल-मंडली का सुख देख रहे थे- कि तिनमें से आय ब्रह्मा सब बछड़े चुराय ले गया, और यहाँ ग्वाल बालों ने खाते खाते चिंता कर श्रीकृष्ण से कहा—भैया, हम तो निचिंताई से बैठे खाय रहे हैं, न जानिये बछड़े कहाँ निकल गये होयँगे।

तब ग्वालन सों कहत कन्हाई। तुम सब जेंवत रहियो भाई।
जिन कोऊ उठै करै औसेर। सब के बछरा ल्याऊँ घेर॥

ऐसे कह कितनी एक दूर बन में जाय जब जाना कि यहाँ से बछड़े ब्रह्मा हर ले गया, तब श्रीकृष्ण वैसे ही और बनाय लाये। यहाँ आय देखें तो ग्वाल बालों को भी उठाय ले गया है। फिर इन्होंने वे भी जैसे थे तैसे ही बनाये, और साँझ हुई जान सबको साथ ले ब्रंदावन आये। ग्वालबाल अपने अपने घर गये पर किसी ने यह भेद न जाना कि ये हमारे बालक औ बछड़े नहीं, बरन और दिन दिन माया बढ़ती चली।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव बोले—महाराज, वहाँ ब्रह्मा ग्वाल बाल बछड़ों को ले जाय एक पर्वत की कंदरा में भर, विसके मुँह पर पत्थर की सिला धर भूल गया। और यहाँ श्रीकृष्णचंद नित नई नई लीला करते थे। इसमें एक वर्ष बीत गया तद ब्रह्मा को सुध हुई तो मन में कहने लगा कि मेरा तो एक पल भी नहीं हुआ पर नर का बरष हो गया, इससे अब चल देखा चाहिये कि ब्रज में ग्वाल बाल बछड़ों बिन क्या गति भई।

यह बिचार उठकर वहाँ आया जहाँ कंदरा में सबको मूँद गया था। सिला उठाय देखे तो लड़के औ बछड़े घोर निद्रा में सोये पड़े हैं। वहाँ से चल ब्रंदाबन में आय बालक औ बछरू सब जों के तों देख अचंभे हो कहने लगा—कैसे ग्वाल बच्छ यहाँ आये, कै ये कृष्ण नये उपजाये। इतना कह फिर कंदरा को देखने गया। जितने में वह वहाँ से देख कर आवे, तितने बीच यहाँ श्रीकृष्णचंद ने ऐसी माया करी कि जित्ते ग्वाल बाल औ बछड़े

थे सब चतुर्भुज हो गये। और एक एक के आगे ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, हाथ जोड़े खड़े हैं।

देख बिरंच चित्र कौ भयौ। भूल्यौ ज्ञान ध्यान सब गयौ॥
जनो पषान देवी चौमुखी। भई भक्ति पूजा बिन दुखी॥

औ डरकर नैन मूँद लगा थरथर काँपने, जब अंतरजामी श्रीकृष्णचंद ने जाना कि ब्रह्मा अति व्याकुल है तब सबका अंस हर लिया, और आप अकेलेई रह गये, ऐसे कि जैसे भिन्न भिन्न बादल एक हो जाँय।

———

पंद्रहवाँ अध्याय

शुकदेवजी बोले—हे राजा, जद श्रीकृष्ण ने अपनी माया उठा ली तद ब्रह्मा को अपने शरीर का ज्ञान हुआ, तो ध्यान कर भगवान के पास आ अति गिड़गिड़ाय पाओं पड़ बिनती कर हाथ बाँध खड़ा हो कहने लगा कि हे नाथ, तुमने बड़ी कृपा करी जो मेरा गर्व दूर किया, इसीसे अंधा हो रहा था। ऐसी बुद्धि किसकी है जो बिन दया तुम्हारी तुम्हारे चरित्रों को जाने। माया तुम्हारी ने सबको मोहा है। ऐसा कौन है जो तुम्हें मोहे, तुम सबके करता हो, तुम्हारे रोम रोम में मुझसे ब्रह्मा अनेक पड़े हैं, मैं किस गिनती में हूँ, दीन दयाल, अब दया कर अपराध क्षमा कीजे, मेरा दोष चित्त में न लीजे।

इतना सुन श्रीकृष्णचंद मुसकुराये तद ब्रह्मा ने सब ग्वाल बाल औ बछड़े सोते के सोते ला दिये और लज्जित हो स्तुति कर अपने स्थान को गया। जैसी मंडली आगे थी तैसी ही बन गई। बरस दिन बीता सो किसीने न जाना। जों ग्वाल बालकों की नींद गई तों कृष्ण बछरू घेर लाये, तब तिनसे लड़के बोले—भैया, तू तो बछड़े बेग ले आया हम भोजन करने भी न पाये।

सुनत बचन हँस कहत बिहारी। मोकौं चिंता भई तिहारी ॥
निकट चरत इक ठौरे पाए। अब घर चलो भोर के आए ॥

ऐसे आपस में बतराय बछरू ले सब हँसते खेलते अपने घर आये।

सोलहवाँ अध्याय

श्रीशुकदेव बोले—महाराज, जब श्रीकृष्ण आठ बरस के हुए तब एक दिन विन्होंने जसोदा से कहा कि मा, मैं गाय चरावन जाऊँगा, तू बाबा से समझायकर कह जो मुझे ग्वालों के साथ पठाय दे। सुनतेही जसोदा ने नंदजी से कहा, विन्होंने शुभ महूर्त्त ठहराय ग्वाल बालों को बोलाय, कातिक सुदी आठें को राम कृष्ण से खरक पुजवाय बिनती कर ग्वालों से कहा कि भाइयो, आज से गौ चरावन अपने साथ राम कृष्ण को भी ले जाया करो, पर इनके पास ही रहियो, बन में अकेले न छोड़ियो। ऐसे कह छाक दे, कृष्ण बलराम को दही का तिलक कर सबके संग बिदा किया। वे मगन हो ग्वाल बालों समेत गायें लिये बन में पहुँचे, तहाँ बन की छबि देख श्रीकृष्ण बलदेवजी से कहने लगे—दाऊ, यह तो अति मनभावनी सुहावनी ठौर है, देखो कैसे वृक्ष झुक झुक रहे हैं औ भाँति भाँति के पशु पंछी कलोले करते हैं। ऐसे कह एक ऊँचे टीले पर जा चढ़े, और लगे दुपट्टा फिराय फिराय कारी, गोरी, पीरी, धौरी, धूमरि, भूरी, नीली, कह कह पुकारने। सुनते ही सब गायें राँभती हौंकतीं दौड़ आईं। तिस समै ऐसी सोभा हो रही कि जैसे चारों ओर से बरन बरन की घटा घिर आई होयँ।

फिर श्रीकृष्णचंद गौ चरने को हाँक, भाई के साथ छाक खाय कदम की छाँह में एक सखा की जाँघ पै सिर धर सोये। कितनी एक बेर में जो जागे तो बलरामजी से कहा—दाऊ, सुनो खेल

यह करैं, न्यासै कटक बाँध कै लरैं। इतना कह आधी आधी गायें औ ग्वाल बाल बाँट लिये। तब बन के फल फूल तोड़ झोलियों में भर भर लगे तुरही, भेर, भोंपू, डफ, ढोल, दमामे, मुखही से बजाय बजाय लड़ने और मार मार पुकारने। ऐसे कितनी एक बेर तक लड़े, फिर अपनी अपनी टोली निराली ले गायें चराने लगे।

इस बीच बलदेवजी से सखा ने कहा—महाराज, यहाँ से थोड़ी सी दूर पर एक तालबन है, तिसमें अमृत समान फल लगे हैं, तहाँ गधे के रूप एक राक्षस रखवाली करता है। इतनी बात सुनते ही बलरामजी ग्वाल बालों समेत विस बन में गये और लगे ईंट, पत्थर, ढेले, लाठियाँ मार मार फल झाड़ने। शब्द सुन कर धेनुक नाम खर रेंकता आया औ विसने आते ही फिरकर बलदेवजी की छाती में एक दुलत्ती मारी, तब इन्होंने विसे उठाय कर दे पटका, फिर वह लोट पोटके उठा और धरती खूँद खूँद कान दबाय हट हट दुलत्तियाँ झाड़ने लगा। ऐसे बड़ी बेर लग लड़ता रहा। निदान बलरामजी ने विसकी दोनों पिछली टाँग पकड़ फिरायकर एक ऊँचे पेड़ पर फेंका सो गिरते ही मर गया, और साथ उसके वह रूख भी टूट पड़ा। दोनों के गिरने से अति शब्द हुआ और सारे बन के वृक्ष हिल उठे।

देखि दूरि सों कहत मुरारी। हाले रूख शब्द भय भारी॥
तबहि सखा हलधर के आये। चलहु कृष्ण तुम बेग बुलाये॥

एक असुर मारा है सो पड़ा है। इतनी बात के सुनते ही श्रीकृष्ण भी बलरामजी के पास जा पहुँचे, तब धेनुक के साथी जितने राक्षस थे सो सब चढ़ आए। तिन्हें श्रीकृष्णचंदजी ने

सहज ही मार गिराया। तब तो सब ग्वाल बालों ने प्रसन्न हो निधड़क फल तोड़ मनमानती झोलियाँ भर लीं, और गायें घेर लाय श्रीकृष्ण बलदेवजी से कहा—महाराज, बड़ी बेर से आये हैं अब घर को चलिये। इतना बचन सुनतेही दोनों भाई गायें लिये ग्वाल बालों समेत हँसते खेलते साँझ को घर आये, और जो फल लाये थे सो सारे बृंदाबन में बँटवाए। सबको बिदा दे आप सोये, फिर भोर के तड़के उठते ही श्रीकृष्ण ग्वाल बालों को बुलाय कलेऊ कर गायें ले बन को गये और गौ चराते चराते कालीदह जा पहुँचे। वहाँ ग्वालों ने गायों को जमुना में पानी पिलाया औ आप भी पिया, जों जल पी ऊपर उठे तो गायों समेत मारे विप के सब लोट गये। तब श्रीकृष्णजी ने अमृत की दृष्टि से देख सबको जिवाया।

सत्रहवाँ अध्याय

श्रीशुकदेवजी बोले—महाराज, ऐसे सबकी रक्षा कर श्रीकृष्ण ग्वाल बालों के साथ गेंदतड़ी खेलने लगे, और जहाँ काली था तहाँ चार कोस तक जमुना का जल विसके बिष से खौलता था, कोई पशु पंछी वहाँ न जा सकता, जो भूलकर जाता सो लपट से झुलस दह में गिर पचता, औ तीर में कोई रूख भी न उपजता। एक अबिनासी कदम तट पर था, सोई था। राजा ने पूछा—महाराज, वह कदम कैसे बचा। मुनि बोले—किसी समै अमृत चोंच में लिये गरुड़ विस पेड़ पर आ बैठा था, तिसके मुँह से एक बूँद गिरी थी इसलिये वह रूख बचा।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी ने राजा से कहा—महाराज, श्रीकृष्णचंद्रजी काली का मारना जी में ठान, गेंद खेलते खेलते कदम पर जा चढ़े औ जो नीचे से सखा ने गेंद चलाई तो जमुना में गिरी, विसके साथ श्रीकृष्ण भी कूदे। इनके कूदने का शब्द आँख[1] से सुनकर वह लगा विष उगलने औ अग्नि सम फुकारें मार मार कहने, कि यह ऐसा कौन है जो अब लग दह में जीता है। कहीं अखै वृक्ष तो मेरा तेज न सहिके टूट पड़ा, कै कोई बड़ा पशु पंछी आया है जो अब तक जल में आहट होता है।

यों कह वह एक सौ दसों फनों से विष उगलता था औ

१—(ख) कान। पर यहाँ आँख ही ठीक जान पड़ता है, क्योंकि सर्प को कान नहीं होते। वह आँख से ही सुनता है ऐसी प्रसिद्धि है।

श्रीकृष्ण पैरते फिरते। तिस समै सखा रो रो हाथ पसार पसार पुकारते थे। गायें मुँह बाये चारों ओर राँभती हूँकती फिरती थीं। ग्वाल न्यारे ही कहते थे, स्याम, बेग निकल आइये, नहीं तुम बिन घर जाय हम क्या उत्तर देंगे। ये तो यहाँ दुखित हो यों कह रहे थे, इसमें किसी ने बृंदाबन में जा सुनाया कि श्रीकृष्ण कालीदह में कूद पड़े। यह सुन रोहनी जसोदा औ नंद गोपी गोप समेत रोते पीटते उठ धाये, और सबके सब गिरते पड़ते कालीदह आये। तहाँ श्रीकृष्ण को न देख ब्याकुल हो नंदरानी दररानी गिरन चली पानी में, तब गोपियों ने बीच ही जा पकड़ा औ ग्वाल बाल नंदजी को थांभे ऐसे कह रहे थे।

छाँड़ महा बन या बन आये। तौहू दैत्यनि अधिक सताए॥
बहुत कुशल असुरन तें परी। अब क्यों दह तें निकसें हरी॥

कि इतने में पीछे से बलदेवजी भी वहाँ आए औ सब ब्रज-बासियों को समझाकर बोले—अभी आवेंगे कृष्ण अबिनासी, तुम काहे को होते हो उदासी। आज साथ आयो मैं नाहीं। मो बिन हरि पैठे दह माहीं।

इतनी कथा कथ श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षित से कहने लगे कि महराज, इधर तो बलरामजी सबको यों आसा भरोसा देते थे औ उधर श्रीकृष्ण जों पैरकर उसके पास गये तों वह आ इनके सारे शरीर से लिपट गया। तब श्रीकृष्ण ऐसे मोटे हुए कि विसे छोड़ते ही बन आया। फिर जों जों फुंकारें मार मार इनपर फन चलाता था, तों तों ये अपने को बचाते थे। निदान ब्रज-बासियों को अति दुखित जान श्रीकृष्ण एकाएकी उचक उसके सिर पर जा चढ़े।

तीन लोक कौ बोझ ले, भारी भये मुरारि ।
फन फन पर नाचत फिरें, बाजें पग पट तारि ॥

तब तो मारे बोझ के काली मरने लगा औ फन पटक पटक उसने जीभें निकाल दीं, तिनसे लोहू की धारें बह चलीं। जद विष औ बल का गर्व गया तद उनने मन में जाना कि आदि पुरुष ने औतार लिया, नहीं इतनी किसमें सामर्थ है जो मेरे विष से बचे। यह समझ जीव की आस तज सिथिल हो रहा, तद नागपत्नी ने आय हाथ जोड़ सिर नवाय बिनती कर श्रीकृष्णचंद से कहा—महाराज, आपने भला किया जो इस दुखदाई, अति अभिमानी का गर्व दूर किया। अब इसके भाग जागे, जो तुम्हारा दर्शन पाया। जिन चरनों को ब्रह्मा आदि सब देवता जब तप कर ध्यावते हैं, सोई पद काली के सीस पर बिराजते हैं।

इतना कह फिर बोली—महाराज, मुझ पर दया कर इसे छोड़ दीजे, नहीं तो इसके साथ मुझे भी बध कीजे, क्योंकि स्वामी बिन स्त्री को मरना ही भला है औ जो विचारिये तो इसका भी कुछ दोष नहीं, यह जाति स्वभाव है कि दूध पिलाये विष बढ़े।

इतनी बात नागपत्नी से सुन श्रीकृष्णचंद उसपर से उतर पड़े। तब प्रणाम कर हाथ जोड़ काली बोला—नाथ, मेरा अपराध क्षमा कीजे, मैंने अनजाने आप पर फन चलाये। हम अधम जाति सर्प, हमें इतना ज्ञान कहां जो तुम्हें पहचानें। श्रीकृष्ण बोले—जो हुआ सो हुआ पर अब तुम यहाँ न रहो, कुटुंब समेत रौनक दीप में जा बसो।

यह सुन काली ने डरते काँपते कहा—कृपानाथ, वहाँ जाऊँ तो गरुड़ मुझे खा जायगा, विसीके भय से मैं यहाँ भाग आया

हूँ। श्रीकृष्ण बोले—अब तू निरभय चला जा, हमारे पद के चिह्न तेरे सिर पर देख तुझसे कोई न बोलेगा। ऐसे कह श्रीकृष्ण-चंद्र ने तिस समै गरुड़ को बुलाय काली के मन का भय मिटाय दिया। तब काली ने धूप दीप, नैवेद्य, समेत बिधि से पूजा कर बहुत सी भेंट श्रीकृष्ण के आगे धर, हाथ जोड़ बिनती कर बिदा होय कहा—

चार घरी नाचे मो माथा। यह मन प्रीति राखियो नाथा।

यों कह दंडवत कर काली तो कुटुंब समेत रौनक दीप को गया और श्रीकृष्णचंद जल से बाहर आये।

———

अठारहवाँ अध्याय

इतनी कथा सुन राजा परीक्षित ने श्रीशुकदेवजी से पूछा—महाराज, रौनक दीप तो भली ठौर थी, काली वहाँ से क्यों आया औ किसलिये जमुना में रहा, वह मुझे समझाकर कहो जो मेरे मन का संदेह जाय। श्रीशुकदेव बोले—राजा, रौनक दीप में हरि का वाहन गरुड़ रहता है सो अति बलवंत है, तिससे वहाँ के बड़े बड़े सर्पों ने हार मान विसे एक साँप नित देना किया। एक रूख पर धर आवें, वह आवे औ खा जाय। एक दिन कद्रू नागनी का पुत्र काली अपने विष का घमंड कर गरुड़ का भक्ष खाने गया। इतने में वहाँ गरुड़ आया और दोनों में अति युद्ध हुआ। निदान हार मान काली अपने मन में कहने लगा कि अब इसके हाथ से कैसे बचूँ और कहाँ जाऊँ। इतना कह सोचा कि बृंदाबन में जमुना के तीर जा रहूँ तो बचूँ, क्योंकि यह वहाँ नहीं जा सकता। ऐसे विचार काली वहाँ गया। फिर राजा परीक्षित ने शुकदेव मुनि से पूछा कि महाराज, वह वहाँ क्यों नहीं जा सकता था सो भेद कहो। शुकदेव जी बोले—राजा, किसी समय जमुना के तट सौभरि ऋषि बैठे तप करते थे, तहाँ गरुड़ ने जाय एक मछली मार खाई, तब ऋषि ने क्रोध कर उसे यह श्राप दिया कि तू इस ठौर फिर आवेगा तो जीता न रहेगा। इस कारण वह वहाँ न जा सकता था, और जब से काली वहाँ गया तभी से विस स्थान का नाम कालीदह हुआ।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजा जब श्रीकृष्ण-

चंद निकले तब नंद जसोदा ने आनंद कर बहुत सा दान पुन्य किया, पुत्र का मुख देख नैनों को सुख दिया, औ सब व्रजवासियों के भी जी में जी आया। इसी बीच साँझ हुई तो आपस में कहने लगे कि अब दिन भर के हारे, थके, भूखे, प्यासे, घर कहाँ जायँगे, रात की रात यहीं काटें, भोर हुए बृंदाबन चलेंगे। यह कह सब सोय रहे।

आधी रात बीत जब गई। भारी कारी आँधी भई॥
दावा अग्नि चली चहुँ ओर। अति झरबरे बृक्ष बन ढोर॥

आग लगते ही सब चौंक पड़े और घबराकर चारों ओर देख देख हाथ पसार लगे पुकारने कि हे कृष्ण, हे कृष्ण, इस आग से बेग बचाओ, नहीं तो यह छन भर में सबको जलाय भस्म करती है। जब नंद जसोदा समेत ब्रजवासियों ने ऐसे पुकार की तब श्रीकृष्णचंदजी ने उठते ही वह आग पल में पी सबके मन की चिंता दूर की। भोर होते ही सब बृंदाबन आए, घर घर आनंद मंगल हुए बधाए।

उन्नीसवाँ अध्याय

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव बोले—महाराज, अब मैं ऋतु बरनन करता हूँ कि जैसे श्रीकृष्णचंद ने तिनमें लीला करी सो चित दे सुनो। प्रथम ग्रीषम ऋतु आई, तिसने आतेही सब संसार का सुख ले लिया और धरती आकाश को तपाय अग्निसम किया, पर श्रीकृष्ण के प्रताप से बृंदाबन में सदा बसंत ही रहै। जहाँ घनी घनी कुंजों के वृक्षों पर बेलें लहलहा रहीं, बरन बरन के फूल फूले हुए, तिनपर भौरों के झुंड के झुंड गूँज रहे, आँबों की डालियों पै कोयल कुहुक रही, टंढी टंढी छाहों में मोर नाच रहे, सुगंध लिये मीठी पवन बह रही और एक ओर बन के जमुना न्यारी ही सोभा दे रही थी। तहाँ कृष्ण बलराम गायें छोड़ सब सखा समेत आपस में अनूठे अनूठे खेल खेल रहे थे कि इतने में कंस का पठाया ग्वाल का रूप बनाय प्रलंब नाम राक्षस आया विसे देखते ही श्रीकृष्णचंद ने बलदेवजी को सैन से कहा।

अपनौ सखा नहीं बलबीर। कपट रूप यह असुर शरीर।
याके वध कौ करौं उपाय। ग्वाल रूप मार्‍यो नहिं जाय॥
जब यह रूप धरे आपनौ। तब तुम याहि ततक्षन हनौ।

इतनी बात बलदेवजी को जताय श्रीकृष्णजी ने प्रलंब को हँसकर पास बुलाय, हाथ पकड़के कहा—

सबतें नीकौ भेष तिहारौ। भलो कपट बिन मित्र हमारौ॥

यों कह विसे साथ ले आधे ग्वाल बाल बाँट लिये, औ आधे बलरामजी को दे दो लड़कों को बैठाय, लगे फल फूलों का नाम

पूछने औ बताने। इसमें बताते बताते श्रीकृष्ण हारे, बलदेवजी ने तब, श्रीकृष्ण की ओर वाले बलदेव ने साथियों को कांधों पर चढ़ाय ले चले, तहाँ प्रलंब बलरामजी को सब से आगे ले भागा औ बन में जाय उसने अपनी देह बढ़ाई, तिस समै बिस काले काले पहाड़ से राक्षस पर बलदेवजी ऐसे सोभायमान थे, जैसे स्याम घटा पै चाँद, औ कुण्डल की दमक बिजली सी चमकती थी, पसीना मेह सा बरसता था। इतनी कथा कथ श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा-महाराज, कि जों अकेला पाय यह बलरामजी को मारने को हुआ तोंहीं उन्होंने मारे घूँसों के विसे मार गिराया।

———

बीसवाँ अध्याय

श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजा, जब प्रलंब को मारके चले बलराम तभी सोंहीं से सखाओं समेत आन मिले घनस्याम। और जो ग्वाल बाल बन में गायें चराते थे, वे भी असुर मारा सुन गायें छोड़ उधर देखने को गये, तौलों इधर गायें चरती चरती डाभ काँस से निकल मूँज बन में बड़ गईं। वहाँ से आय दोनों भाई, यहाँ देखें तो एक भी गाय नहीं।

बिछुरी गैयाँ बिछुरे ग्वाल। भूले फिरें मूंज बन ताल।
रूखनि चढ़े परस्पर टेरें। लै लै नाम पिछौरी फेरें॥

इसमें किसी सखा ने आय हाथ जोड़ श्रीकृष्ण से कहा कि महाराज, गायें सब मूंज बन में पैठ गईं, तिनके पीछे ग्वाल बाल न्यारे ढूंढ़ते भटकते फिरते हैं। इतनी बात के सुनतेही श्रीकृष्ण ने कदम पर चढ़ ऊँचे सुर से जो बंसी बजाई, तों सुन ग्वाल बाल औ सब गायें मूंज बन को फाड़ कर ऐसे आन मिलीं, जैसे सावन भादों की नदी तुंग तरंग को चीर समुद्र में जा मिले। इस बीच देखते क्या हैं कि बन चारों ओर से दहड़ दहड़ जलता चला आता है। यह देख ग्वाल बाल औ सखा अति घबराय भय खाय कर पुकारे—हे कृष्ण, हे कृष्ण, इस आग से बेग बचाओ, नहीं तो अभी क्षन एक में सब जल मरते हैं। कृष्ण बोले—तुम सब अपनी आँखें मूंदो। जद विन्होंने नैन मूंदे तद श्रीकृष्णजी ने पल भर में आग बुझाय एक और माया करी कि गायों समेत सब ग्वाल बालों को भंडीर बन में ले आय कहा कि अब आँखें खोल दो।

ग्वाल खोल दृग कहत निहारि। कहाँ गई वह अग्नि मुरारि।
कब फिर आये बन भंडीर। होत अचंभौ यह बलवीर॥

ऐसे कह गायें ले सब मिल कृष्ण बलराम के साथ वृंदाबन आए, और सबोंने अपने अपने घर जाय कहा कि आज वन में बलराम जी ने प्रलंब नाम राक्षस को मारा और मूँज बन में आग लगी थी सो भी हरि के प्रताप से बुझ गई।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी ने कहा—हे राजा, ग्वाल बालों के मुख से यह बात सुन सब ब्रजबासी देखने को तो गये पर विन्होंने कृष्णचरित्र का कुछ भेद न पाया।

———

इक्कीसवाँ अध्याय

श्रीशुकदेव मुनि बोले कि महाराज, ग्रीषम की अति अनीति देख नृप पावस प्रचंड पृथ्वी के पशु पक्षी जीव जंतु की दया विचार चारों ओर से दल बादल साथ ले लड़ने को चढ़ आया। तिस समै घन जो गरजता था, सोई तो धौंसा बाजता था और बरन बरन की घटा जो घिर आई थीं सोई सूर, बीर रावत थे। तिनके बीच बीच बिजली की दमक, शस्त्र की सी चमक थीं। बगपाँत ठौर ठौर सेत ध्वजा सी फहराय रही थीं, दादुर मोर कड़खैतों की सी भांति जस बखानते थे और बड़ी बड़ी बूँदों की झड़ी बानों की सी झड़ी लगी थी। इस धूम धाम से पावस को आते देख ग्रीषम खेत छोड़ अपना जीव ले भागा, तब मेघ पिया ने बरस पृथ्वी को सुख दिया। उसने जो आठ महीने पति के बियोग में जोग किया था, तिसका भोग भर लिया। कुच गिर सीतल हुए और गर्भ रहा, तिसमें से अठारह भार पुत्र उपजे सो भी फल फूल भेट ले ले पिता को प्रनाम करने लगे। उस काल बृंदाबन की भूमि ऐसी सुहावनी लगती थी कि जैसे सिंगार किये कामनी और जहाँ तहाँ नदी नाले सरोबर भरे हुए, तिनपर हंस सारस सरस सोभा दे रहे। ऊँचे ऊँचे रूखों की डालियाँ झूम रहीं, उनमें पिक, चातक, कपोत, कीर, बैठे कोलाहल कर रहे थे औ ठाँव ठाँव सूहे कुसुंभे जोड़े पहरे, गोपी ग्वाल झूलों पै झूल झूल ऊँचे सुरों से मलारें गाते थे, तिनके निकट जाय जाय श्रीकृष्ण बलराम भी बाललीला कर कर अधिक सुख दिखाते थे।

इस आनंद से बरषा ऋतु बीती, तब श्रीकृष्ण ग्वाल बालों से कहने लगे कि भैया, अब तो सुखदाई सरद ऋतु आई।

सबको सुख भारी अब जान्यों, स्वाद सुगंध रूप पहिचान्यों।
निसि नक्षत्र उज्जल आकाश, मानहु निर्गुन ब्रह्म प्रकाश॥
चार मास जो बिरमे गेह, भये सरद तिन तजे सनेह।
अपने अपने काजनि धाये, भूप चढ़े तकि देस पराये॥

बाईसवाँ अध्याय

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे महाराज, इतनी बात कह श्रीकृष्ण फिर ग्वाल बाल साथ ले लीला करने लगे। और जबलग कृष्ण बन में धेनु चरावैं, तबलग सब गोपी घर में बैठी हरि का जस गावैं, एक दिन श्रीकृष्ण ने बन में बेनु बजाई तो बंशी की धुन सुन सारी ब्रज युवती हड़बड़ाय उठ धाईं। औ एक ठौर मिलकर बाट में आ बैठीं, तहाँ आपस में कहने लगीं कि हमारे लोचन सुफल तब होंगे जब कृष्ण के दरसन पावेंगे, अभी तो कान्ह गायों के साथ बन में नाचते गाते फिरते हैं, साँझ समय इधर आवेंगे, तब हमें दरसन मिलेंगे। यों सुन एक गोपी बोली—

सुनो सखी; वह बेनु बजाई। बाँस बंस देखौ अधिकाई॥

इसमें इतना क्या गुन है जो दिन भर श्रीकृष्ण के मुँह लगी रहती है, और अधरामृत पी आनंद बरस घन सी गाजती है। क्या हमसे भी वह प्यारी, जो निस दिन लिये रहते हैं बिहारी।

मेरे आगे की यह गढ़ी। अब भई सौत बदन पर चढ़ी॥

जब श्रीकृष्ण इसे पीतांबर से पोंछ बजाते हैं, तब सुर, मुनि, किन्नर औ गंधर्व अपनी अपनी स्त्रियों को साथ ले बिमानों पर बैठे बैठे हाँसकर सुनने को आते हैं, औ सुनकर मोहित हो जहाँ के तहाँ चित्र से रह जाते हैं। ऐसा इस ने क्या तप किया है जो सब इसके आधीन होते हैं।

इतनी बात सुन एक गोपी ने उत्तर दिया, कि पहले तो इसने बाँस के बंस में उपज हरि का सुमरन किया, पीछे घाम, सीत, जल ऊपर लिया, निदान टूक टूक हो देह जलाय धुँआ पिया—

इससे तप करते हैं कैसा। सिद्ध हुई पाया फल ऐसा॥

यह सुन कोई ब्रजनारी बोली कि हमको बेनु क्यों न रची, ब्रजनाथ, जो निसि दिन हरि के रहती साथ। इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षित से कहने लगे कि महाराज, जबतक श्रीकृष्ण धेनु चराय बन से न आवें, तबतक नित गोपी हरि के गुन गावें।

———

तेईसवाँ अध्याय

श्री शुकदेव मुनि बोले कि सरद ऋतु के जाते ही हेमंत ऋतु आई औ अति जाड़ा, पाला पड़ने लगा। तिस काल ब्रजबाला आपस में कहने लगीं कि सुनो सहेली, अगहन के न्हाने से जन्म जन्म के पातक जाते हैं और मन की आस पूजती है, यों हमने प्राचीन लोगों के मुख से सुना है। यह बात सुन सबके मन में आई कि अगहन न्हाइये तो निस्संदेह श्रीकृष्ण बर पाइये।

ऐसे विचार भोर होते ही उठ वस्त्र आभूषन पहर सब ब्रज बाला मिल जमुना न्हान आईं, स्नान कर सूरज को अरघ दे, जल से बाहर आय, माटी की गौर बनाय, चंदन, अक्षत, फूल, फल, चढ़ाय, धूप दीप नैवेद्य आगे धर, पूजा कर, हाथ जोड़, सिर नाय, गौर को मनाय के बोलीं—हे देवी, हम तुमसे बार बार यही बर माँगती हैं कि श्रीकृष्ण हमारे पति होंय। इस बिधि से गोपी नित न्हावें, दिन भर ब्रत कर साँझ को दही भात खा भूमि पर सोवें, इसलिये कि हमारे ब्रत का फल शीघ्र मिले।

एक दिन सब ब्रजबाला मिल स्नान को औघट घाट गईं औ वहाँ जाय चीर उतार तीर पर धर नग्न हो नीर में पैठ लगीं हरि के गुन गाय गाय जल क्रीड़ा करने। तिसी समै श्रीकृष्ण भी बंसीबट की छाँह में बैठे धेनु चरावते थे। दैवी इनके गाने का शब्द सुन वे भी चुपचाप चले आये और लगे छिपकर देखने। निदान देखते देखते जो कुछ उनके जी में आई, तो सब वस्त्र चुराय कदम पर जा चढ़े औ गठड़ी बाँध आगे धर

ली। इतने में गोपी जो देखें तो तीर पै चीर नहीं, तब घबराकर चारों ओर उठ उठ लगीं देखने औ आपस में कहने कि अभी तो यहाँ एक चिड़िया भी नहीं आई, बसन कौन हर ले गया माई। इस बीच एक गोपी ने देखा कि सिर पर मुकुट, हाथ में लकुट, केसर तिलक दिये, बनमाल हिये, पीतांबर पहरे, कपड़ों की गठड़ी बाँधे, मौन साधे, श्रीकृष्ण कदंब पै चढ़े छिपे हुए बैठे हैं। वह देखते ही पुकारी—सखी, वे देखो हमारे चितचोर चीरचोर कदंब पर पोट लिए बिराजते हैं। यह बचन सुन और सब युवती कृष्ण को देख लजाय, पानी में पैठ, हाथ जोड़ सिर नाय, विनती कर हा हा खाय बोलीं—

दीन दयाल, हरन दुख प्यारे। दीजै मोहन, चीर हमारे॥
ऐसे सुनके कहें कन्हाई। यों नहिं दूँगा नंद दोहाई॥
एक एक कर बाहर आओ। तो तुम अपने कपड़े पाओ॥

ब्रजबाला रिसाय के बोलीं—यह तुम भली सीख सीखे हो जो हमसे कहते हो नंगी बाहर आओ, अभी अपने पिता बंधु से जाय कहें तो वे तुम्हें चोर चोर कर आय गहें, औ नंद जसोदा को जा सुनावें, तो वे भी तुमको सीख भली भांति से सिखावें। हम करती हैं किसी की कान, तुमने मेटी सब पहचान।

इतनी बात के सुनतेही क्रोध कर श्रीकृष्णजी ने कहा कि अब चीर तभी पाओगी जब विनको लिवा लावोगी, नहीं तो नहीं। यह सुन डरकर गोपी बोलीं, दीनदयाल हमारी सुध के लिवैया, पति के रखैया तो आप हैं, हम किसे लावेंगी। तुम्हारेही हेतु नेम कर मगसिर मास न्हारी हैं। कृष्ण बोले—जो तुम मन लगाय मेरे लिये अगहन न्हाती हो तो लाज औ कपट तज आय अपने

चीर लो। जद श्रीकृष्णचन्द ने ऐसे कहा तद सब गोपी आपस में सोच विचारकर कहने लगीं कि चलो सखी, जो मोहन कहते हैं सोई मानें, क्योंकि ये हमारे तन मन की सब जानते हैं, इनसे लाज क्या। यों आपस में ठान श्रीकृष्ण की बात मान, हाथ से कुच देह दुराय सब युवती नीर से निकल, सिर नौढ़ाय जब सनमुख तीर पर जा खड़ी हुईं, तब श्रीकृष्ण हँसके बोले कि अब तुम हाथ जोड़ जोड़ आगे आओ तो मैं वस्त्र दूँ। गोपी बोलीं—

काहे कपट करत नँदलाल। हम सूधी भोरी ब्रजबाल॥
परी ठगोरीं सुधि बुधि गई। ऐसी तुम हरि लीला ठई॥
मन सँभारि के करिहैं लाज। अब तुम कछू करो ब्रजराज॥

इतनी बात कह जद गोपियों ने हाथ जोड़े तो श्रीकृष्णचंदजी ने वस्त्र दे उसके पास आय कहा कि तुम अपने मन में कुछ इस बात का बिलग मत मानो, यह मैंने तुम्हें सीख दी है, क्योंकि जल में बरुन देवता का बास है, इससे जो कोई नग्न हो जल में न्हाता है तिसका सब धर्म बह जाता है। तुम्हारे मन की लगन देख मगन हो मैंने यह भेद तुमसे कहा। अब अपने घर जाओ, फिर कातिक महीने में आय मेरे साथ रास कीजियो।

श्रीशुकदेव मुनि बोले कि महाराज, इतना वचन सुन प्रसन्न हो संतोष कर गोपी तो अपने घरों को गईं औ श्रीकृष्ण बंसीबट में आय गोप गाय ग्वाल बाल सखाओं को संग ले आगे चले, तिस समै चारों ओर सघन बन देख देख वृक्षों की बड़ाई करने लगे कि देखो ये संसार में आ अपने पर कितना दुख सह लोगों को सुख देते हैं। जगत् में ऐसे ही परकाजियों का आना सुफल है। यों कह आगे बढ़ जमुना के निकट जा पहुँचे।

चौबीसवाँ अध्याय

श्रीशुकदेवजी बोले कि जब श्रीकृष्ण जमुना के पास पहुँच रूख तले लाठी टेक खड़े हुए, तब सब ग्वाल बाल औ सखाओं ने आय कर जोड़ कहा कि महाराज, हमें इस समय बड़ी भूख लगी है, जो कुछ लाये थे सो खाई पर भूख न गई। कृष्ण बोले—देखो वह जो धुआँ दिखाई देता है तहाँ मथुरिये कंस के डर से छिपके यज्ञ करते हैं, उनके पास जा हमारा नाम ले दंडवत कर हाथ बाँध खड़े हो, दूर से भोजन ऐसे दीन हो मांगियो, जैसे भिखारी अधीन हो माँगना है।

यह बात सुन ग्वाल चले चले वहाँ गये जहाँ माथुर बैठे यज्ञ कर रहे थे। जाते ही उन्होंने प्रनाम कर निपट आधीनता से कर जोड़ के कहा—महाराज, आपको दंडवत कर हमारे हाथ श्री कृष्णचंदजी ने यह कहला भेजा है कि हमको अति भूख लगी है, कुछ कृपा कर भोजन भेज दीजे। इतनी बात ग्वालों के मुख से सुन मथुरिये क्रोध कर बोले—तुम तो बड़े मूर्ख हो जो हमसे अभी यह बात कहते हो। बिन होम हो चुके किसी को कुछ न देंगे। सुनो जब यज्ञ कर लेंगे और कुछ बचेगा सो बाँट देंगे। फिर ग्वालों ने उनसे गिड़गिड़ा के बहुतेरा कहा कि महाराज, घर आये भूखे को भोजन करवाने से बड़ा पुण्य होता है, पर वे इनके कहने को कुछ ध्यान में न लाये, बरन इनकी ओर से मुँह फेर आपस में कहने लगे।

बड़े मूढ़ पशुपालक नीच। माँगत भात होम के बीच॥

तब तो ये वहाँ से निरास हो अछताय पछताय श्रीकृष्ण के पास आय बोले—महाराज, भीख माँग मान महत गँवाया, तौ भी खाने को कुछ हाथ न आया। अब क्या करें। श्रीकृष्णजी ने कहा कि अब तुम तिनकी स्त्रियों से जा माँगों, वे बड़ी दयावंत धर्मात्मा हैं, उनकी भक्ति देखियो, वे तुम्हें देखते ही आदर मान से भोजन देंगी। यों सुन ये फिर वहाँ गये जहाँ वे बैठी रसोई करती थीं। जाते ही उनसे कहा कि बन में श्रीकृष्ण को धेनु चराते क्षुधा भई है सो हमें तुम्हारे पास पठाया है, कुछ खाने को होय तो दो। इतना बचन ग्वालों के मुख से सुनते ही वे सब प्रसन्न हो कंचन के थालों में षटरस भोजन भर ले ले उठ धाईं और किसी की रोकी न रुकीं।

एक मथुरनी के पति ने जो न जाने दिया तो वह ध्यान कर देह छोड़ सबसे पहले ऐसे जा मिली जैसे जल जल में जा मिले औ पीछे से सब चलीं चलीं वहाँ आईं, जहाँ श्रीकृष्णचंद ग्वाल बाल समेत वृक्ष की छाँह में सखा के काँधे पर हाथ दिये, त्रिभंगी छबि किये, कँवल का फूल कर लिये खड़े थे। आते ही थाल आगे धर दंडवत कर हरि मुख देख देख आपस में कहने लगीं कि सखी, येई हैं नंदकिशोर जिनका नाम सुन ध्यान धरती थीं, अब चंदमुख देख लोचन सुफल कीजे औ जीतब का फल लीजे। ऐसे बतराय हाथ जोड़ बिनती कर श्रीकृष्ण से कहने लगीं कि कृपानाथ, आपकी कृपा बिनु तुम्हारा दर्शन कब किसी को होता है, आज धन्य भाग हमारे जो दर्शन पाया औ जन्म जन्म का पाप गँवाया।

मूरख विप्र कृपन्न अभिमानी। श्रीमद लोभ मोह मद सानी॥

ईश्वर को मानुष करि माने। माया अंध कहा पहिचाने॥
जप तप यज्ञ जासु हित कीजे। ताकौं कहाँ न भोजन दीजे॥

महाराज, वही धन्य है धन जन लाज, जो आवे तुम्हारे काज, औ सोई है तप जप ज्ञान, जिसमें आवे तुम्हारा नाम। इतनी बात सुन श्रीकृष्णचंद उनकी क्षेम कुशल पूछ कहने लगे कि,
मत तुम मुझको करो प्रनाम। मैं हूँ नन्द महर का श्याम॥

जो ब्राह्मन की स्त्री से आपको पुजवाते हैं सो क्या संसार में कुछ बड़ाई पाते हैं। तुमने हमें भूखे जान दया कर बन में आन सुध ली, अब हम यहाँ तुम्हारी क्या पहुनई करें।

बृंदाबन घर दूर हमारा। किस विधि आदर करें तुम्हारा॥

जो वहाँ होते तो कुछ फूल फल ला आगे धरते, तुन हमारे कारन दुख पाय जंगल में आई औ यहाँ हमसे तुम्हारी टहल कुछ न बन आई, इस बात का पछतावा ही रहा। ऐसे सिष्टाचार कर फिर बोले—तुम्हें आए बड़ी देर भई, अब घर को सिधारिये, क्योंकि ब्राह्मण तुम्हारे तुम्हारी बाट देखते होंगे, इसलिये कि स्त्री बिन यज्ञ सुफल नहीं। यह बचन श्रीकृष्ण से सुन वे हाथ जोड़ बोलीं—महाराज, हमने आपके चरन कमल से स्नेह कर कुटुंब की माया सब छोड़ी क्योंकि जिनका कहा न मान हम उठ धाईं तिनके यहाँ अब कैसे जायँ, तो वे घर में न आने दें तो फिर कहाँ बसें, इससे आपकी सरण में रहें सो भला, और नाथ, एक नारि हमारे साथ तुम्हारे दरसन की अभिलाषा किये आवती थी, विसके पति ने रोक रक्खा, तब उस स्त्री ने अकुला कर अपना जीव दिया। इस बातके सुनते ही हँसकर श्रीकृष्णचंद ने विसे दिखाया

जो देह छोड़ आई थी। कहा कि सुनो जो हरि से हित करता है तिसका बिनास कभी नहीं होता, यह तुम से पहले आ मिली है।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, विसको देखतेही तो एक बार सब अचंभे रहीं, पीछे ज्ञान हुआ तद हरि गुन गाने लगीं। इस बीच श्रीकृष्णचंद ने भोजन कर उनसे कहा कि अब स्थान को प्रस्थान कीजे, तुम्हारे पति कुछ न कहेंगे, जब श्रीकृष्ण ने विन्हें ऐसे समझाय बुझाय के कहा तब वे बिदा हो दंडवत कर अपने घर गईं। औ विनके स्वामी सोच विचारके पछताय पछताय कह रहे थे कि हमने कथा पुरान में सुना है, जो किसी समै नंद जसोदा ने पुत्र के निमित्त बड़ा तप किया था, तहाँ भगवान ने आ उन्हें यह बर दिया कि हम यदुकुल में औतार ले तुम्हारे यहाँ जायँगे। वेई जन्म ले आये हैं, जिन्होंने ग्वाल बालों के हाथ भोजन मँगवाय भेजा था। हमने यह क्या किया जो आदि पुरुष ने माँगा औ भोजन न दिया।

यज्ञ धर्म जा कारन ठये। तिनके सनमुख आज न भये॥
आदि पुरुष हम मानुष जान्यौ। नाहीं बचन ग्वालन कौ मान्यौ॥
हम मूरख पापी अभिमानी। कीनी दया न हरि गति जानी॥

धिक्कार है हमारी मति को औ इस यज्ञ करने को जो भगवान को पहचान सेवा न करी! हमसे नारीं ही भलीं कि जिन्होंने जप, तप, यज्ञ, बिन किये साहस कर जा श्रीकृष्ण के दरसन किये औ अपने हाथों विन्हें भोजन दिया। ऐसे पछताय मथुरियों ने अपनी स्त्रियों के सनमुख हाथ जोड़ कहा कि धन्य भाग तुम्हारे जो हरि का दरसन कर आईं, तुम्हारा ही जीवन सुफल है।

पचीसवाँ अध्याय

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा, जैसे श्रीकृष्णचंद ने गिर गोवर्धन उठाया औ इन्द्र का गर्व हरा, अब सोई कथा कहता हूँ तुम चित दे सुनो, कि सब ब्रजबासी बरसवें दिन कातिक बदी चौदस को न्हाय धोय केसर चंदन से चौक पुराय भाँति भाँति की मिठाई औ पकवान धर, धूप दीप कर इन्द्र की पूजा किया करें। यह रीति उनके यहाँ परंपरा से चली आती थी। एक दिन वही दिवस आया, तब नंदजी ने बहुतसी खाने की सामग्री बनवाई औ सब ब्रजबासियों के भी घर घर सामग्री भोजन की हो रही थी। तहाँ श्रीकृष्ण ने आ मा से पूछा कि माजी, आज घर भर में पकवान मिठाई जो हो रही है सो क्या है, इसका भेद मुझे समझाकर कहो जो मेरे मन की दुवधा जाय। जसोदा बोली कि बेटा, इस समै मुझे बात कहने का अवकाश नहीं, तुम अपने पिता से जा पूछो वे बुझायकर कहेंगे। यह सुन नंद उपनंद के पास आय श्रीकृष्ण ने कहा कि पिता, आज किस देवता के पूजने की ऐसी धूम धाम है कि जिनके लिये घर घर पकवान मिठाई हो रही है, वे कैसी भक्ति मुक्ति बर के दाता हैं, विनका नाम औ गुन कहो जो मेरे मन का संदेह जाय।

नंदमहर बोले कि पुत्र यह भेद तूने अब तक नहीं समझा कि मेघों के पति जो हैं सुरपति, तिनकी पूजा है, जिनकी कृपा से संसार में रिद्धि सिद्धि मिलती है औ तृन, जल, अन्न होता है, बन उपबन फूलते फलते हैं, विनसे सब जीव, जंतु, पशु, पक्षी

आनंद में रहते हैं, यह इंद्रपूजा की रीति हमारे यहाँ पुरुषाओं के आगे से चली आती है, कुछ आजही नई नहीं निकाली। नंदजी से इतनी बात सुन श्रीकृष्णचंद बोले—हे पिता, जो हमारे बड़ों ने जाने अनजाने इन्द्र की पूजा की तो की, पर अब तुम जान बूझकर धर्म पंथ छोड़ ऊबट बाट क्यों चलते हो। इन्द्र के मानने से कुछ नहीं होता क्योंकि वह भक्ति मुक्ति का दाता नहीं औ विससे रिद्धि सिद्धि किसने पाई है। यह तुमही कहो विनने किसे बर दिया है।

हाँ एक बात यह है कि तप यज्ञ करने से देवताओं ने अपना राजा बनाय इन्द्रासन दे रक्खा है, इससे कुछ परमेश्वर नहीं हो सकता। सुनो, जब असुरों से बार बार हारता है, तब भाग के कहीं जा छिपकर अपने दिन काटता है। ऐसे कायर को क्यों मानो, अपना धर्म किस लिये नहीं पहचानो। इन्द्र का किया कुछ नहीं हो सकता, जो कर्म में लिखा है सोई होता है। सुख, संपत, दारा, भाई, बन्धु, ये भी सब अपने धर्म कर्म से मिलते हैं, और आठ मास जो सूरज जल सोखता है सोई चार महीने बरसता है, तिसीसे पृथ्वी में तृन, जल, अन्न होता है और ब्रह्मा ने जो चारों बरन बनाये हैं, ब्राह्मन, क्षत्री, वैश्य, सूद्र, तिनके पीछे भी एक एक कर्म लगा दिया है कि ब्राह्मन तो वेद विद्या पढ़े, क्षत्री सबकी रक्षा करे, वैश्य खेती बनज, और सूद्र इन तीनों की सेवा में रहैं।

पिता, हम वैश्य हैं, गायें बढ़ीं, इससे गोकुल हुआ, तिसीसे नाम गोप पड़ गया। हमारा यही कर्म है कि खेती बनज करैं और गौ ब्राह्मन की सेवा में रहैं। वेद की आज्ञा है कि अपनी

कुलरीति न छोड़िये, जो लोग अपना धर्म तज और का धर्म पालते हैं सो ऐसे हैं, जैसे कुलबधू हो परपुरुष से प्रीति करै। इससे अब इंद्र की पूजा छोड़ दीजै और बन पर्वत की पूजा कीजै, क्योंकि हम बनबासी हैं, हमारे राजा वेई हैं जिनके राज में हम सुख से रहते हैं, तिन्हें छोड़ और को पूजना हमें उचित नहीं। इससे अब सब पकवान मिठाई अन्न ले चलो और गोवर्द्धन की पूजा करो।

इतनी बात के सुनते ही नंद उपनंद उठकर वहाँ गये जहाँ बड़े बड़े गोप अथाई पर बैठे थे। इन्होंने जाते ही सब श्रीकृष्ण की कही बातें विन्हें सुनाईं। वे सुनतेही बोले कि कृष्ण सच कहता है, तुम बालक जान उसकी बात मत टालो। भला तुम्हीं विचारो कि इंद्र कौन है, और हम किस लिये विसे मानते हैं, जो पालता है उसकी तो पूजाही भुलाई।

हमें कहा सुरपति सों काज, पूजें बन सरिता गिरिराज।

ऐसे कह फिर सब गोपों ने कहा—

भलौ मतौ कान्हर कियौ, तजिये सिगरे देव।
गोवर्द्धन पर्वत बड़ो, ताकी कीजै सेव॥

यह बचन सुनतेही नंदजी ने प्रसन्न हो गाँव में ढँढोरा फिरवाय दिया कि कल हम सारे ब्रजबासी चलकर गोवर्द्धन की पूजा करेंगे, जिस जिसके घर में इंद्र की पूजा के लिए पकवान मिठाई बनी है सो सब ले ले भोरही गोवर्द्धन पै जाइयो। इतनी बात सुन सकल ब्रजबासी दूसरे दिन भोरके तड़के उठ, स्नान ध्यान कर, सब सामग्री झालों, परातों, थालो, डलों, हंडों, चरुओं में भर, गाडों, बहंगियों पर रखवाय गोवर्द्धन को चले। तिसी समै नंद

उपनंद भी कुटुंब समेत सामान ले सबके साथ हो लिये और बाजे गाजे से चले चले सब मिल गोवर्द्धन पहुँचे।

वहाँ जाय पर्वत के चारों ओर भाड़ बुहार, जल छिड़क, घेवर, बाबर, जलेबी, लड्डू, खुरमे, इमारती, फेनी, पेड़े, बरफी, खाजे, गूंझे, मठडी, सीरा, पूरी, कचौरी, सेव, पापड़, पकौड़ी आदि पकवान और भाँति भाँति के भोजन, बिंजन, संधाने, चुन चुन रख दिये, इतने कि जिनसे पर्वत छिप गया और ऊपर फूलों की माला पहराय, बरन बरन के पाटंबर तान दिये।

तिस समै की शोभा बरनी नहीं जाती। गिरि ऐसा सुहावना लगता था, जैसे किसीने गहने कपड़े पहराय नख सिख से सिंगारा होय, और नंदजी ने पुरोहित बुलाय सब ग्वाल बालों को साथ ले, रोली अक्षत पुष्प चढ़ाय, धूप दीप नैवेद्य कर, पान सुप्यारी दक्षिना धर, वेद की विधि से पूजा की तब श्रीकृष्ण ने कहा कि अब तुम शुद्ध मन से गिरिराज का ध्यान करो तो वे आय दरसन दे भोजन करें।

श्रीकृष्ण से यों सुनतेही नंद जसोदा समेत सब गोपी गोप कर जोड़ नैन मूंद ध्यान लगाय खड़े हुए, तिस काल नंदलाल उधर तो अति मोटी भारी दूसरी देह धर बड़े बड़े हाथ पाँव कर, कमल-नैन, चंदमुख हो, मुकुट धरे, बनमाल गरे, पीत बसन और रतन जटित आभूषन पहरे, मुँह पसारे चुप चाप पर्वत के बीच से निकले, और इधर आपही अपने दूसरे रूप को देख सबसे पुकारके कहा—देखो गिरिराज ने प्रगट होय दरसन दिया, जिनकी पूजा तुमने जी लगाय करी है। इतना बचन सुनाय श्रीकृष्णचंद जी ने गिरिराज को दंडवत की, उनकी देखादेखी सब गोपी गोप

प्रनाम कर आपस में कहने लगे कि इस भाँति इंद्र ने कब दरसन दिया था, हम वृथा उसकी पूजा किया किये और क्या जानिये पुरुषाओं ने ऐसे प्रत्यक्ष देव को छोड़ क्यों इंद्र को माना था, यह बात समझी नहीं जाती ।

यों सब बतराय रहे थे कि श्रीकृष्ण बोले—अब देखते क्या हो, जो भोजन लाये हो सो खिलाओ। इतना बचन सुनते ही गोपी गोप षटरस भोजन थाल परातों में भर भर उठाय उठाय लगे देने और गोवर्द्धननाथ, हाथ बढ़ाय बढ़ाय ले ले भोजन करने। निदान जितनी सामग्री नंद समेत सब ब्रजबासी ले गये सो खाई, तब वह मूरत पर्वत में समाई । इस भाँति अद्भुत लीला कर श्रीकृष्णचंद सबको साथ ले पर्वत की परिक्रमा दे, दूसरे दिन गोवर्द्धन से चल हँसते खेलते बृंदाबन आए। तिस काल घर घर आनंद मंगल बधाए होने लगे और ग्वाल बाल सब गाय बछड़ों को रंग रंग उनके गले में गंडे घंटालियाँ घूँघरू बाँध बाँध न्यारे ही कुतूहल कर रहे थे ।

छब्बीसवाँ अध्याय

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव मुनि बोले—

सुरपति की पूजा तजी, करी पर्बत की सेव।
तबहि इंद्र मन कोपि कै, सबै बुलाए देव॥

जब सारे देवता इंद्र के पास गये तब वह विनसे पूछने लगा कि तुम मुझे समझाकर कहो कल ब्रज में पूजा किसकी थी? इस बीच नारद जी आय पहुँचे तो इंद्र से कहने लगे कि सुनो महाराज, तुम्हें सब कोई मानता है पर एक ब्रजवासी नहीं मानते क्योंकि नंद के एक बेटा हुआ है, तिसीका कहा सब करते हैं, विन्होंने तुम्हारी पूजा मेट कल सबसे पर्बत पुजवाया। इतनी बात के सुनते ही इंद्र क्रोध कर बोला कि ब्रजवासियों के धन बढ़ा है, इसीसे विन्हें अति गर्व हुआ है।

तप जप यज्ञ तज्यौ ब्रज मेरौ। काल दरिद्र बुलायौ नैरो॥
मानुष कृष्ण देव कै मानैं। ताकी बातें साँची जानैं॥
वह बालक मूरख अज्ञान। बहुबादी राखै अभिमान॥
अब हौं उनकौ गर्ब परिहरौं। पशु खोऊँ लक्ष्मी बिन करौं॥

ऐसे बक झक खिजलायकर सुरपति ने मेघपति को बुलाय भेजा, वह सुनते ही डरता काँपता हाथ जोड़ सनमुख आ खड़ा हुआ, विसे देखते ही इंद्र तेह कर बोला कि तुम अभी अपना सब दल साथ ले जाओ और गोवर्द्धन पर्बत समेत ब्रजमंडल को बरस बहाओ, ऐसा कि कहीं गिरि का चिह्न औ ब्रजबासियों का नाम न रहे।

इतनी आज्ञा पाय मेघपति दंडवत कर राजा इंद्र से बिदा हुआ और विसने अपने स्थान पर आय बड़े बड़े मेघों को बुलाय के कहा—सुनो, महाराज की आज्ञा है कि तुम अभी जाय ब्रज-मंडल को बरस के बहा दो। यह बचन सुन सब मेघ अपने अपने दल बादल ले ले मेघपति के साथ हो लिये। विसने आते ही ब्रजमंडल को घेर लिया और गरज गरज बड़ी बड़ी बूँदों से लगा मूपलाधार जल बरसाने और उँगली से गिरि को बतावने।

इतनी कथा कथ श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज, जब ऐसे चहूँ ओर से घनघोर घटा अखंड जल बरसने लगीं, तब नंद जसोदा समेत सब गोपी ग्वाल बाल भय खाय भींगते थर थर काँपते श्रीकृष्ण के पास जाय पुकारे कि हे कृष्ण, इस महाप्रलय के जल से कैसे बचैंगे, तब तो तुमने इंद्र की पूजा मेट पर्वत पुजवाया, अब बेग उसको बुलाइये जो आय रक्षा करे, नहीं तो क्षन भर में नगर समेत सब डूब मरते हैं। इतनी बात सुन औ सबको भयातुर देख श्रीकृष्णचंद बोले कि तुम अपने जी में किसी बात की चिंता मत करो, गिरिराज अभी आय तुम्हारी रक्षा करते हैं। यों कह गोबर्द्धन को तेज से तपाय अग्नि सम किया औ बायें हाथ की छिंगुली पर उठाय लिया। तिस काल सब ब्रजबासी अपने ढोरों समेत आ उसके नीचे खड़े हुए और श्रीकृष्णचंद को देख देख अजरज कर आपस में कहने लगे।

है कोऊ आदि पुरुष औतारी। देवन हू को देव मुरारी॥
मोहन मानुष कैसो भाई। अंगुरी पर क्यों गिरि ठहराई॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव मुनि राजा परीक्षित से कहने लगे कि उधर तो मेघपति अपना दल लिये क्रोध कर मूसला

धार जल बरसाता था और इधर पर्वत पै गिर छनाक तवे की बूँद हो जाता था। यह समाचार सुन इंद्र भी कोप कर आप चढ आया और लगातार उसी भाँति सात दिन बरसा, पर ब्रज में हरि प्रताप से एक बूँद भी न पड़ी। और सब जल निबड़ा तब मेघों ने आ हाथ जोड़ कहा कि हे नाथ, जितना महाप्रलय का जल था सबका सब हो चुका, अब क्या करें। यों सुन इंद्र ने अपने ज्ञान ध्यान से विचारा कि आदि पुरुष ने औतार लिया, नहीं तो किसमें इतनी सामर्थ थी जो गिरि धारन कर ब्रज की रक्षा करता। ऐसे सोच समझ अछता पछता मेघों समेत इंद्र अपने स्थान को गया और बादल उघड़ प्रकाश हुआ। तब सब ब्रजबासियों ने प्रसन्न हो श्रीकृष्ण से कहा—महाराज, अब गिरि उतार धरिये, मेघ जाता रहा। यह बचन सुनते ही श्रीकृष्णचंद ने पर्वत जहाँ का जहाँ रख दिया।

सत्ताइसवाँ अध्याय

श्रीशुकदेव बोले कि जद हरि ने गिरि कर से उतार धरा तिस समै सब बड़े बड़े गोप तो इस अद्भुत चरित्र को देख यों कह रहे थे, कि जिसकी शक्ति ने इस महाप्रलय से आज व्रजमण्डल बचाया तिसे हम नंदसुत कैसे कहेंगे, हाँ किसी समय नंद जसोदा ने महातप किया था, इसीसे भगवान ने आ इनके घर जन्म लिया है। औ ग्वाल बाल आय आय श्रीकृष्ण के गले मिल मिस पूछने लगे कि भैया, तूने इस कोमल कमल से हाथ पर कैसे ऐसे भारी पर्वत का बोझ सँभाला, औ नन्द जसोदा करुना कर पुत्र को हृदय लगाय हाथ दाब उँगली चटकाय कहने लगे, कि सात दिन गिरि कर पर रक्खा, हाथ दुखता होयगा, और गोपी जसोदा के पास आय पिछली सब कृष्ण की लीला गाय कहने लगीं—

यह जो बालक पूत तिहारो। चिर जीवौ व्रज को रखवारौ ॥
दानव दैयत असुर सँहारे। कहाँ कहाँ व्रज जन न उबारे ॥
जैसी कही गर्ग ऋषिराई। सोइ सोइ बात होति है आई ॥

———

अट्ठाइसवाँ अध्याय

श्रीशुकदेव मुनि बोले कि महाराज, भोर होते ही सब गायें औ ग्वाल बालों को संग कर अपनी अपनी छाक ले कृष्ण बलराम बैन बजाते औ मधुर सुर से गाते जों धेनु चरावन बन को चले तो राजा इन्द्र सकल देवताओं को साथ लिये कामधेनु को आगे किये, ऐरावत हाथी पर चढ़ा, सुरलोक से चला चला बृंदाबन में आय, बन की बाट रोक खड़ा हुआ। जद श्रीकृष्णचंद उसे दूर से दिखाई दिये तद गज से उतर, नंगे पाओं, गले में कपड़ा डाले, थर थर काँपता आ श्रीकृष्ण के चरनों पर गिरा और पछ-ताय पछताय रो रो कहने लगा कि हे ब्रजनाथ, मुझ पर दया करो।

मैं अभिमान गर्व अति किया। राजस तामस में मन दिया॥
धन मद कर संपति सुख माना। भेद न कुछौ तुम्हारा जाना॥
तुम परमेश्वर सब के ईस। और दूसरों को जगदीस॥
ब्रह्मा रुद्र आदि बरदाई। तुम्हरी दई संपदा पाई॥
जगत पिता तुम निगमनिवासी। सेवत नित कमला भई दासी॥
जन के हेत लेत औतार। तब तब हरत भूमि कौ भार॥
दूर करौ सब चूक हमारी। अभिमानी मूरख हौं भारी॥

जब ऐसे दीन हो इन्द्र ने स्तुति करी तब श्रीकृष्णचंद दयाल हो बोले कि अब तो तू कामधेनु के साथ आया इससे तेरा अप-राध क्षमा किया, पर फिर गर्व मत कीजो क्योंकि गर्व करने से ज्ञान जाता है औ कुमति बढ़ती है, उसीसे अपमान होता है।

इतनी बात श्रीकृष्ण के मुख से सुनते ही इन्द्र ने उठकर वेद की विधि से पूजा की औ़र गोविंद नाम धर चर्नामृत ले परिक्रमा करी। तिस समय गंधर्व भाँति भाँति के बाजे बजा बजा श्रीकृष्ण का जस गाने लगे औ देवता अपने विमानों में बैठे आकाश से फूल बरसावने। उस काल ऐसा समां हुआ कि मानो फेरकर श्रीकृष्ण ने जन्म लिया। जब पूजा से निचंत हो इंद्र हाथ जोड़ सनमुख खड़ा हुआ तब श्रीकृष्ण ने आज्ञा दी कि अब तुम कामधेनु समेत अपने पुर को जाओ। आज्ञा पाते ही कामधेनु औ इंद्र बिदा होय दंडवत कर इंद्रलोक को गये। और श्रीकृष्णचंद गौ चराय साँझ हुए सब ग्वाल बालों को लिये बृंदाबन आए। उन्होंने अपने अपने घर जाय जाय कहा—आज हमने हरिप्रताप से इंद्र का दरसन बन में किया।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा—राजा यह जो श्रीगोविंद कथा मैंने तुम्हें सुनाई इसके सुनने औ सुनाने से संसार में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, चारों पदारथ मिलते हैं।

———

उन्तीसवाँ अध्याय

श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, एक दिन नंदजी ने संयम कर एकादशी व्रत किया। दिन तो स्नान, ध्यान, भजन, जप, पूजा में काटा और रात्रि जागरन में बिताई। जब छ घड़ी रैन रही औ द्वादशी भई, तब उठके देह शुद्ध कर भोर हुआ जान धोती, अँगोछा, झारी, ले जमुना न्हान चले, तिनके पीछे कई एक ग्वाल भी हो लिये। तीर पर जाय प्रनाम कर कपड़े उतार नंद जी जो नीर में पैठे, तों बरुन के सेवक जो जल की चौकी देते थे कि कोई रात को न्हाने न पावे, विन्होंने जा बरुन से कहा कि महाराज कोई इस समै जमुना में न्हाय रहा है, हमें क्या आज्ञा होती है। बरुन बोला—विसे अभी पकड़ लाओ। आज्ञा पातेही सेवक फिर वहाँ आए, जहाँ नंदजी स्नान कर जल में खड़े जप करते थे। आतेही अचानक नागफाँस डाल नंदजी को बरुन के पास ले गये, तब नंदजी के साथ जो ग्वाल गये थे विन्होंने आय श्रीकृष्ण से कहा कि महाराज, नंदरायजी को बरुन के गन जमुना तीर से पकड़ बरुनलोक को ले गये। इतनी बात के सुनते ही श्रीगोबिंद क्रोध कर उठ धाये औ पल भर में बरुन के पास जा पहुँचे। इन्हें देखतेही वह उठ खड़ा हुआ और हाथ जोड़ बिनती कर बोला—

सफल जन्म है आज हमारौ। पायो यदुपति दरस तुम्हारौ॥
कीजे दोष दूर सब मेरे। नंद पिता इस कारन घेरे॥
तुमकौं सब के पिता बखाने। तुम्हरे पिता नहीं हम जाने॥

रात का न्हाते देख अनजाने गन पकड़ लाये, भला इसी मिस मैंने दरसन आपके पाये। अब दया कीजे, मेरा दोष चित्त में न लीजे। ऐसे अति दीनता कर बहुतसी भेंट लाय नंद औ श्रीकृष्ण के आगे धर, जद बरुन हाथ जोड़ सिर नाय सनमुख खड़ा हुआ, तद श्रीकृष्ण भेंट ले पिता को साथ कर वहाँ से चल बृंदावन आए। इनको देखते ही सब ब्रजवासी आय मिले। तिस समै बड़े बड़े गोपों ने नंदराय से पूछा कि तुम्हें बरुन के सेवक कहाँ ले गये थे। नंद जी बोले—सुनो, जों वे यहाँ से पकड़ मुझे बरुन के पास ले गये, तोंही पीछे से श्रीकृष्ण पहुँचे, इन्हें देखते ही वह सिंहासन से उतर पाओं पर गिर अति बिनती कर कहने लगा—नाथ मेरा अपराध क्षमा कीजे, मुझसे अनजाने यह दोष हुआ सो चित्त में न लीजे। इतनी बात नंदजी के मुख से सुनतेही गोप आपस में कहने लगे कि भाई, हमने तो यह तभी जाना था जब श्रीकृष्णचंद ने गोवर्द्धन धारन कर ब्रज की रक्षा करी, कि नंद महर के घर में आदि पुरुष ने आय औतार लिया है।

ऐसे आपस में बतराय फिर सब गोपों ने हाथ जोड़ श्रीकृष्ण से कहा कि महाराज, आपने हमें बहुत दिन भरमाया, पर अब सब भेद तुम्हारा पाया। तुम्हीं जगत के करता दुखहरता हो। त्रिलोकीनाथ, दया कर अब हमें बैकुंठ दिखाइये। इतना बचन सुन श्रीकृष्णजी ने छिन भर में बैकुंठ रच तिन्हें ब्रजही में दिखाया। देखते ही ब्रजबासियों को ज्ञान हुआ तो कर जोड़ सिर झुकाय बोले—हे नाथ, तुम्हारी महिमा अपरंपार है, हम कुछ कह नहीं सकते, पर आपकी कृपा से आज हमने यह जाना कि

तुम नारायन हो, भूमि का भार उतारने को संसार में जन्म ले आए हो।

श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, जब ब्रजबासियों ने इतनी बात कही तभी श्रीकृष्णचंद ने सबको मोहित कर, जो बैकुंठ की रचना रची थी सो उठाय ली औ अपनी माया फैलाय दी, तो सब गोपों ने सपना सा जाना और नंद ने भी माया के बस हो श्रीकृष्ण को अपना पुत्र ही कर माना।

तीसवाँ अध्याय

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी बोले—

जैसे हरि गोपिन सहित, कीनौ रास विलास।
सो पंचाध्याई कहौं, जैसो बुद्धि प्रकास॥

जब श्रीकृष्णजी ने चीर हरे थे तब गोपियों को यह बचन दिया था कि हम कार्तिक महीने में तुम्हारे साथ रास करेंगे, तभी से गोपी रास की आस किये मन में उदास रहें औ नित उठ कार्तिक मास ही को मनाया करें। दैवी उनके मनाते मनाते सुखदाई सरद ऋतु आई।

लाग्यौ जब तें कार्तिक मास। घाम सीत वरषा कौ नास॥
निर्मल जल सरबर भर रहे। फूले कँवल होय डहडहे॥
कुमुद चकोर कंत कामिनी। फूलहिं देख चंद्रजामिनी॥
चकई मलिन कँवल कुम्हिलाने। जे निज मित्र भानु कौ माने॥

ऐसे कह श्रीशुकदेव मुनि फिर बोले कि पृथ्वीनाथ, एक दिन श्रीकृष्णचंद कार्तिकी पून्यो की रात्रि को घर से निकल बाहर आय देखें तो निर्मल आकाश में तारे छिटक रहे हैं, चाँदनी दसों दिसा में फैल रही है। सीतल सुगंध सहित मंद गति पौन बह रही है। औ एक ओर सघन बन की छबि अधिक ही सोभा दे रही है। ऐसा समा देखते ही उनके मन में आया कि हमने गोपियों को यह बचन दिया है जो सरद ऋतु में तुम्हारे साथ रास करेंगे, सो पूरा किया चाहिये। यह बिचारकर बन में जाय श्रीकृष्ण ने

बाँसुरी बजाई। बंसी की धुनि सुनि सब ब्रज युवती बिरह की मारी कामातुर हो अति घबराईं। निदान कुटुंब की माया छोड़, कुलकान पटक, गृहकाज तज, हड़बड़ाय उलटा पुलटा सिंगार कर उठ धाईं। एक गोपी जो अपने पति के पास से जों उठ चली तों उसके पति ने वाट में जा रोका औ फेरकर घर ले आया, जाने न दिया, तब तो वह हरि का ध्यान कर देह छोड़ सबसे पहले जा मिली। विसके चित की प्रीति देख श्रीकृष्णचंद ने तुरंत मुक्ति गति दी।

इतनी कथा सुन राजा परीक्षित ने श्रीशुकदेवजी से पूछा कि कृपानाथ, गोपी ने श्रीकृष्णजी को ईश्वर जानके तो नहीं माना, केवल विषय की वासना कर भजा, वह मुक्त कैसे हुई, सो मुझे समझाके कहो जो मेरे मन का संदेह जाय। श्रीशुकदेव मुनि बोले—धर्म्मावतार, जो जन श्रीकृष्णचंद की महिमा का अनजाने भी गुन गाते हैं सो भी निस्संदेह भक्ति मुक्ति पाते हैं, जैसे कोई बिन जाने अमृत पियेगा, वह भी अमर हो जियेगा औ जान के पियेगा विसे भी गुन होगा। यह सब जानते हैं कि पदारथ का गुन औ फल बिन हुए रहता नहीं। ऐसेही हरिभजन का प्रताप है, कोई किसी भाव से भजो मुक्त होयगा। कहा है—

जप माला छापा तिलक, सरै न एकौ काम।
मन काचे नाचै वृथा, सांचे राचे राम॥

औ सुनो जिन जिनने जैसै जैसे भाव से श्रीकृष्ण को मान के मुक्ति पाई सो कहता हूँ कि नंद जसोदादि ने तो पुत्र कर बूझा, गोपियों ने जार कर समझा, कंस ने भय कर भजा, ग्वाल बालों ने मित्र कर जपा, पांडवों ने प्रीतम कर जाना, सिसुपाल ने शत्रु

कर माना, यदुबंसियों ने अपना कर ठाना औ जोगी जती मुनियों ने ईश्वर कर ध्याया, पर अंतमें मुक्ति पदारथ सबही ने पाया। जो एक गोपी प्रभु का ध्यान कर तरी तो क्या अचरज हुआ।

यह सुन राजा परीक्षित ने श्रीशुकदेव मुनि से कहा कि कृपा-नाथ, मेरे मन का संदेह गया, अब कृपा कर आगे कथा कहिये। श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, जिस काल सब गोपियाँ अपने अपने झुंड लिये, श्रीकृष्णचंद जगत-उजागर रूपसागर, से धायकर यों जाय मिलीं कि जैसे चौमासे की नदियाँ बल कर समुद्र को जाय मिलें। उस समैं के बनाव की सोभा बिहारीलाल की कुछ बरनी नहीं जाती, कि सब सिंगार करे, नटवर भेष धरे, ऐसे मन-भावने सुंदर सुहावने लगते थे कि ब्रज युवती हरि छबि देखतेही छक रहीं। तब मोहन विनकी क्षेम कुशल पूछ रूखे हो बोले—कहो रात समैं भूत प्रेत की बिरियाँ भयावनी बाट काट, उलटे पुलटे वस्त्र आभूषण पहने, अति घबराई, कुटुम्ब की माया तज इस महाबन में तुम कैसे आईं। ऐसा साहस करना नारी को उचित नहीं। स्त्री को कहा है कि कादर, कुमत, कूढ़, कपटी, कुरूप, कोढ़ी, काना, अन्धा, लूला, लँगड़ा, दरिद्री, कैसाही पति हो पर इसे उसकी सेवा करनी जोग है, इसीमें उसका कल्यान है औ जगत में बड़ाई। कुलवन्ती पतिव्रता का धर्म है कि पति को क्षण भर न छोड़े और जो स्त्री अपने पुरुष को छोड़ पर पुरुष के पास जाती है सो जन्म जन्म नर्क बास पाती है। ऐसे कह फिर बोले कि सुनो, तुमने आय सघन बन, निर्मल चाँदनी, औ जमुना तीर की सोभा देखी, अब घर जाय मन लगाय कंत की सेवा करो, इसीमें तुम्हारा सब भाँति भला है। इतना बचन श्रीकृष्ण के

मुख से सुनतेही सब गोपी एक बार तो अचेत हो अपार सोच सागर में पड़ीं, पीछे—

नीचे चितै उसासें लईं। पद नख तें भौं खोदत भईं।
यों दृग सों छूटी जलधारा। मानहु टूटे मोतीहारा।

निदान दुख से अति घबराय रो रो कहने लगीं कि अहो कृष्ण, तुम बड़े ठग हो, पहले तो बंसी बजाय अचानक हमारा ज्ञान ध्यान मन धन हर लिया, अब निर्दई होय कपट कर कर्कस बचन कह प्रान लिया चाहते हो। यों सुनाय पुनि बोलीं—

लोग कुटुम घर पति तजे, तजी लोक की लाज।
हैं अनाथ, कोऊ नहीं, राखि सरन ब्रजराज॥

औ जो जन तुम्हारे चरनों में रहते हैं सो धन तन लाज बड़ाई नहीं चाहते तिनके तो तुम्हीं हो जन्म जन्म के कंत, हे प्रानरूप भगवंत।

करिहैं कहा जाय हम गेह। अरुझे प्रान तुम्हारे नेह॥

इतनी बात के सुनतेही श्रीकृष्णचंद ने मुसकुराय सब गोपियों को निकट बुलायके कहा—जो तुम राची हो इस रंग, तो खेलो रास हमारे संग। यह बचन सुन दुख तज गोपी प्रसन्नता से चारों ओर घिर आईं औ हरिमुख निरख निरख लोचन सुफल करने लगीं।

ठाढ़े बीच जु स्याम घन, इहि बिधि काछिनि केलि॥
मनहुँ नील गिरि तरे तें, उलही कंचन बेलि॥

आगे श्रीकृष्णजी ने अपनी माया को आज्ञा की कि हम रास करेंगे उसके लिये तू एक अच्छा स्थान रच औ यहाँ खड़ी रह, जो जो जिस जिस बस्तु की इच्छा करै सो सो ला दीजो। महाराज, तिसने सुनतेही जमुना के तीर जाय एक कंचन का मंडला-

कार बड़ा चौंतरा बनाय, मोती हीरे जड़, उसके चारों ओर सपल्लव केले के खंभ लगाय, तिनमें बंदनवार औ भाँति भाँति के फूलों की माला बाँध, आ श्रीकृष्णचंद से कहा। ये सुनतेही प्रसन्न हो सब ब्रज युवतियों को साथ ले जमुना तीर को चले। वहाँ जाय देखें तो चंद्रमंडल से रासमंडल के चौंतरे की चमक चौगुनी सोभा दे रही है। उसके चारों ओर रेती चाँदनी सी फैल रही है। सुगंध समेत शीतल मीठी मीठी पौन चल रही है औ एक ओर सघन बन की हरियाली उजाली रात में अधिक छबि ले रही है।

इस समैं को देखतेही सब गोपी नगन हो, उसी स्थान के निकट मानसरोवर नाम एक सरोवर था तिसके तीर जाय मन मानते सुथरे वस्त्र आभूषन पहन, नख सिख से सिंगार कर अच्छे बाजे बीन पखावज आदि सुर बाँध बाँध ले आईं, औ लगीं प्रेम मद माती हो सोच संकोच तज श्रीकृष्ण के साथ मिल बजाने, गाने, नाचने। उस समैं श्रीगोबिंद गोपियों की मंडली के मध्य ऐसे सुहावने लगते थे जैसे तारामंडल में चंद।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले—सुनो महाराज, जब गोपियों ने ज्ञान विवेक छोड़ रास में हरि को मन से बिषई पति कर माना औ अपने आधीन जाना, तब श्रीकृष्णचंद ने मन सें बिचारा कि—

अब मोहि इन अपने बस जान्यौ। पति बिषई सम मनमें आन्यौ॥
भई अज्ञान लाज तजि देह। लपटहिं पकरहिं कंत सनेह॥
ज्ञान ध्यान मिलकै बिसरायौ। छाँड़ि जाउँ इनि गर्व बढ़ायौ॥

देखूँ मुझ बिन पीछे बन में क्या करती हैं और कैसे रहती हैं। ऐसे विचार श्रीराधिका को साथ ले श्रीकृष्णचंद अंतरध्यान हुए।

———

इकतीसवाँ अध्याय

श्रीशुकदेव मुनि बोले कि महाराज, एकाएकी श्रीकृष्णचंद को न देखतेही गोपियों की आँख के आगे अँधेरा हो गया औ अति दुख पाय ऐसे अकुलाईं जैसे मनि .खोय सर्प घबराता है। इसमें एक गोपी कहने लगी—

कहौ सखी मोहन कहाँ, गये हमें छिटकाय।
मेरे गरे भुजा धरे, रहे हुते उर लाय॥

अभी तो हमारे संग हिले मिले रास बिलास कर रहे थे, इतनेही में कहाँ गये, तुममें से किसीने भी जाते न देखा। यह बचन सुन सब गोपी बिरह की मारी निपट उदास हो हाय मार बोलीं—

कहाँ जायँ कैसी करैं, कासों कहैं पुकारि।
हैं कित कछू न जानिये, क्योंकर मिले मुरारि॥

ऐसे कह हरि मदमाती होय सब गोपी लगीं चारों ओर ढूंढ़ ढूंढ़ गुन गाय गाय रो रो यों पुकारने—

हमको क्यों छोड़ी ब्रजनाथ, सरबस दिया तुम्हारे साथ।

जब वहाँ न पाया तब आगे जाय आपस में बोलीं—सखी, यहाँ तो हम किसी को नहीं देखतीं, किससे पूछें कि हरि किधर गए। यों सुन एक गोपी ने कहा—सुनो आली, एक बात मेरे जी में आई है कि ये जितने इस बन में पशु पक्षी औ वृक्ष हैं सो सब ऋषि मुनि हैं, ये कृष्णलीला देखने को औतार ले आये हैं,

इन्हीं से पूछो, ये यहाँ खड़े देखते हैं, जिधर हरि गए होंगे तिधर बता देंगे। इतना बचन सुनते ही सब गोपी बिरह से व्याकुल हो क्या जड़ क्या चैतन्य लगी एक एक से पूछने—

हे बड़ पीपल पाकड़ वीर। लहा पुण्य कर उच्च शरीर॥
पर उपकारी तुमही भये। वृक्ष रूप पृथ्वी पर लये॥
घाम सीत बरषा दुख सहौ। काज पराये ठाढ़े रहौ॥
बकला फूल मूल फल डार। तिनसों करत पराई सार॥
सबका मन धन हर नंदलाल। गये इधर को कहो दयाल॥
हे कदम्ब अम्ब कचनारि। तुम कहुँ देखे जात मुरारि॥
हे अशोक चम्पा करवीर। जात लखे तुमने बलबीर॥
हे तुलसी अति हरि की प्यारी। तन तें कहूँ न राखत न्यारी॥
फूली आज मिले हरि आय। हमहूँ को किन देत बताय॥
जाती जुही मालती माई। इत ह्वै निकसे कुँवर कन्हाई॥
मृगनि पुकारि कहैं व्रजनारी। इत तुम जात लखे बनवारी॥

इतना कह श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, इसी रीति से सब गोपी पशु पक्षी द्रुम बेलि से पूछतीं पूछतीं श्रीकृष्णमय हो लगी पूतना बध आदि सब श्रीकृष्ण की करी हुई बाललीला करने औ ढूंढ़ने। निदान ढूंढ़ते ढूंढ़ते कितनी एक दूर जाय देखैं तो श्रीकृष्णचंद के चरनचिन्ह, कँवल, जव, ध्वजा, अंकुश समेत रेत पर जगमगाय रहे हैं। देखतेही व्रजयुवती, जिस रज को सुर, नर, मुनि, खोजते हैं तिस रज को दण्डवत कर सिर चढ़ाय हरि के मिलने की आस धर वहाँ से बढ़ीं तो देखा, जो उन चरनचिन्हों के पास पास एक नारी के भी पाँव उपड़े हुए हैं। उन्हें देख अचरज कर

आगे जाय देखैं तो एक ठौर कोमल पातों के बिछौने पर सुन्दर जड़ाऊ दरपन पड़ा है, लगीं उससे पूछने, जब बिरह भरा वह भी न बोला तब विन्होंने आपस में पूछा—कहो आली, यह क्यों कर लिया, विसी समयैं जो पिय प्यारी के मन की जानती थी उसने उत्तर दिय कि सखी जद प्रीतम प्यारी की चोटी गूँथन बैठे औ सुंदर वदन बिलोकने में अन्तर हुआ, तिस बिरियाँ प्यारी ने दरपन हाथ में ले पिय को दिखाया, तद श्रीमुख का प्रतिबिंब सनमुख आया। यह बात सुन गोपियाँ कुछ न कोपियाँ, बरन कहने लगीं कि उसने शिव पार्वती को अच्छी रीत से पूजा है औ बड़ा तप किया है, जो प्रानपति के साथ एकांत में निधड़क बिहार करती है। महाराज, सब गोपी तो इधर बिरह मदमाती वक बक झक झक ढूँढ़ती फिरतीही थीं, कि उधर श्रीराधिकाजी हरि के साथ अधिक सुख मान प्रीतम को अपने बस जान आपको सबसे बड़ा ठान, मन में अभिमान आन बोलीं—प्यारे, अब मुझसे चला नहीं जाता, काँधे चढ़ाय ले चलिये। इतनी बात के सुनते ही गर्वप्रहारी अंतरयामी श्रीकृष्णचंद ने मुसकुराय बैठकर कहा कि आइए, हमारे काँधे चढ़ लीजिये। जद वह हाथ बढ़ाय चढ़ने को हुई तद श्रीकृष्ण अंतरध्यान हुए। जों हाथ बढ़ाये थे तों हाथ पसारे खड़ी रह गई, ऐसे कि जैसे घन से मान कर दामिनी बिछड़ रही हो, कै चंद्र से चंद्रिका रूस पीछे रह गई हो। और गोरे तन की जोति छूटि क्षिति पर छाय यों छबि दे रही थी कि मानों सुंदर कंचन की भूमि पै खड़ी है। नैनों से जल की धार बह रही थी औ सुबास के बस जो मुख पास भँवर आय आय बैठते थे तिन्हें भी उड़ाय न सकती थी, और हाय हाय कर बन में बिरह की मारी इस भाँति रो रही थी अकेली जिसके रोने की धुन सुन सब रोते थे पशु पक्षी औ द्रुम बेली और यों कह रही थी—

हा हा नाथ परम हितकारी। कहाँ गये स्वच्छंद बिहारी ॥
चरन सरन दासी मैं तेरी। कृपासिंधु लीजे सुध मेरी ॥

कि इतने में सब गोपी भी ढूँढ़ती ढूँढ़ती उसके पास जा पहुँचीं, औ विसके गले लग लग सबों ने मिल मिल ऐसा सुख माना कि जैसे कोई महा धन खोय मध्य आधा धन पाय सुख माने। निदान सब गोपी भी विसे अति दुखित जान साथ ले महा बन में पैठीं, औ जहाँ लग चाँदना देखा तहाँ लग गोपियों ने वन में श्रीकृष्ण-चंद्र को ढूंढ़ा, जब साधन बन के अँधेरे में बाट न पाई तब वे सब वहाँ से फिर धीरज धर मिलने की आस कर, जमुना के उसी तीर पर आय बैठीं, जहाँ श्रीकृष्णचंद ने अधिक सुख दिया था।

बत्तीसवाँ अध्याय

श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, सब गोपी जमुना तीर पर बैठ प्रेम मदमाती हो हरि के चरित्र और गुन गाने लगीं कि प्रीतम जब से तुम व्रज में आए तब से नये नये सुख यहाँ आनकर छाए। लक्ष्मी ने कर तुम्हारे चरन की आस, किया है अचल आय के बास। हम गोपी हैं दासी तुम्हारी, बेग सुध लीजे दया कर हमारी। जद से सुंदर साँवली सलोनी मूरति है हेरी, तद से हुई हैं बिन मोल की चेरी। तुम्हारे नैन बानों ने हने हैं हिय हमारे, सो प्यारे, किस लिए लेखे नहीं है तुम्हारे। जीव जाते हैं हमारे, अब करुना कीजे, तजकर कठोरता बेग दरसन दीजे। जो तुम्हें मारनाही था तो हमको विषधर, आग औ जल से किस लिये बचाया, तभी मरने क्यों न दिया। तुम केवल जसोदासुत नहीं हो, तुम्हें तो ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्रादि सब देवता बिनती कर लाये हैं संसार की रक्षा के लिये।

हे प्राननाथ, हमें एक अचरज बड़ा है कि जो अपनोंही को मारोगे, तो करोगे किसकी रखवाली। प्रीतम, तुम अन्तरजामी होय हमारे दुख हर मन की आस क्यों नहीं पूरी करते। क्या अबलाओं पर ही सूरता धारी है। हे प्यारे, जब तुम्हारी मन्द मुसकानयुत प्यार भरी चितवन, औ भृकुटी की मरोर, नैनों की मटकन-ग्रीवा की लटक, औ बातों की चटक, हमारे जिय में आती है, तब क्या क्या न दुख पाती हैं। और जिस समैं तुम गौ चरावन जाते थे बन में, तिस समैं तुम्हारे कोमल चरन का ध्यान करने

से बन के कंकर काँटे आ कसकते थे हमारे मन में। भोर के गये साँझ को फिर आते थे, तिस पर भी हमें चार पहर चार युग से जानते थे। जद सनमुख बैठ सुंदर बदन निहारती थीं, तद अपने जी में बिचारती थीं कि ब्रह्मा कोई बड़ा मूरख है जो पलक बनाई है, हमारे इकटक देखने में बाधा डालने को।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, इसी रीत से सब गोपी बिरह की मारीं श्रीकृष्णचंद के गुन औ चरित अनेक अनेक प्रकार से गाय गाय हारीं, तिसपर भी न आए बिहारी। तब तो निपट निरास हो, मिलने की आस कर, जीने का भरोसा छोड़, अति अधीरता से अचेत हो, गिरकर ऐसे रो पुकारीं कि सुनकर चर अचर भी दुखित भये भारी।

तेतीसवाँ अध्याय

श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, जद श्रीकृष्णचंद अंतरजामी ने जाना जो अब ये गोपियाँ मुझ बिन जीती न बचगी।

तब तिनहीं में प्रगट भये नंदनंदन यौं।
दृष्टवंध कर छिपै फेर प्रगटै नटबर ज्यौं॥
आए हरि देखे जबै, उठी सबै यौं चेत।
प्रान परे ज्यौं मृतक में, इंद्री जगें अचेत॥
बिन देखे सबकौ मन व्याकुल हो भयौ।
मानो मनमथ भुवंग सबनि डसि कै गयौ॥
पीर खरी पिय जान पहुँचे आइ कै।
अमृत बेलनि सींच लई सब जाइ कै॥
मनहु कमल निसि मलिन, हैं, ऐसेही ब्रजबाल।
कुंडल रवि छबि देखिकै, फूले नैन बिसाल॥

इतनी कथा कथ श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज श्रीकृष्णचंद आनंदकंद को देखतेही सब गोपियाँ एकाएकी विरहसागर से निकल उनके पास जाय ऐसे प्रसन्न हुईं कि जैसे कोई अथाह समुद्र में डूब थाह पाय प्रसन्न होय। और चारों ओर से घेरकर खड़ी भईं। तब श्रीकृष्ण उन्हें साथ लिये वहाँ आए जहाँ पहले रास विलास किया था। जातेही एक गोपी ने अपनी ओढ़नी उतार के श्रीकृष्ण के बैठने को बिछा दी। जों वे उस पर बैठे तो कई एक गोपी क्रोध कर बोलीं कि महाराज, तुम बड़े कपटी

बिराना मन धन ले जानते हो, पर किसी का कुछ गुन नहीं मानते। इतना कह आपस में कहने लगीं—

> गुन छाँड़ै औगुन गहै, रहै कपट मन भाय।
> देखो सखी बिचारि कै तासों कहा बसाय॥

यह सुन एक तिनमें से बोली कि सखी, तुम अलगी रहो, अपने कहे कुछ सोभा नहीं पातीं। देखो मैं कृष्णही से कहाती हूँ। यों कह तिसने मुसकुरायके श्रीकृष्ण से पूछा कि महाराज, एक बिन गुन किये गुन मान ले, दूसरा किये गुन का पलटा दे, तीसरा गुन के पलटे औगुन करै, चौथा किसीके किये गुन को भी मन में न धरै। इन चारों में कौन भला है औ कौन बुरा, यह तुम हमें समझाके कहो। श्रीकृष्णचंद बोले कि तुम सब मन दे सुनौ भला औ बुरा मैं बुझा कर कहता हूँ। उत्तम तो वह है जो बिन किये करे, जैसे पिता पुत्र को चाहता है, और किये पर करने से कुछ पुन्य नहीं, सो ऐसे है जैसे बाँट के हेत गौ दूध देती है। गुन को औगुन माने तिसे शत्रु जानिये। सबसे बुरा कृतघ्नी जो किये को मेटे।

इतना बचन सुनतेही जब गोपियाँ आपस में एक एक का मुँह देख हँसने लगीं, तब तो श्रीकृष्णचंद घबराकर बोले कि सुनौ मैं इन चार की गिनती में नहीं, जो तुम जानके हँसती हो, बरन मेरी तो यह रीति है कि जो मुझसे जिस बात की इच्छा रखता है तिसके मन की बाँछा पूरी करता हूँ। कदाचित तुम कहो कि जो तुम्हारी यह चाल है तो हमें बन में ऐसे क्यों छोड़ गये, इस का कारन यह है कि मैंने तुम्हारी प्रीति की परीक्षा ली, इस बात का बुरा मत मानो, मेरा कहा सचही जानौ। यों कह फिर बोले-

अब हम परचौ लियौ तिहारौ। कीनौ सुमिरन ध्यान हमारौ ॥
मोही सों तुम प्रीत बड़ाई। निर्धन मनो संपदा पाई ॥
ऐसें आई मेरे काज। छाँड़ी लोक वेद की लाज ॥
जो वैरागी छाँड़े गेह। मन दे हरि सों करै सनेह ॥
कहा तिहारी करें बड़ाई। हमपै पलटौ दियौ न जाई ॥
जो ब्रह्मा के सौ बरस जियें तौ भी हम तुम्हारे ऋन से उतरन न होंय।

चौतीसवाँ अध्याय

श्रीशुकदेव मुनि बोले—राजा, जब श्रीकृष्णचंद ने इस ढब से रस के बचन कहे, तब तो सब गोपियाँ रिस छोड़ प्रसन्न हो उठ हरि से मिलि भाँति भाँति के सुख मान आनन्द मगन हो कुतूहल करने लगीं। तिस समै,

कृष्ण जोगमाया ठई, भये अंस बहु देह।
सब कौं सुख चाहत दियौ, लीला परम सनेह॥

जितनी गोपियाँ थीं तितने ही शरीर श्रीकृष्णचंद ने धर, उसी रासमंडल के चौंतरे पर, सब को साथ ले फिर रास बिलास का आरम्भ किया।

द्वै द्वै गोपी जोरे हाथा। तिन के बीच बीच हरि साथा॥
अपनी अपनी ढिग सब जाने। नहीं दूसरे कौं पहिचाने॥
अंगुरिन में अंगुरी कर दिये। प्रफुलित फिरें संग हरि लिये॥
बिच गोपी बिच नंद किशोर। सघन घटा दामिनि चहुँ ओर॥
स्याम कृष्ण गोपी ब्रज बाला। मानहुँ कनक नील मनि माला॥

महाराज, इसी रीति से खड़े होय गोपी और कृष्ण लगे अनेक अनेक प्रकार के यंत्रों के सुर मिलाय मिलाय, कठिन कठिन राग अलाप अलाप, बजाय बजाय गाने औ तीखी, चोखी, आड़ी, डौढ़ी, दुगन, तिगन की ताने उपजें ले ले बोल बताय बताय नाचने। औ आनन्द में ऐसे मगन हुए कि उनको तन मन की भी सुध न थी। कहीं इनका अंचल उघड़ जाता था, कहीं उनका मुकुट खिसल। इधर मोतियों के हार टूट टूट गिरते थे, उधर बनमाल।

पसीने की बूँदें माथों पर मोतियों की लड़ी सी चमकती थीं औ गोपियों के गोरे गोरे मुखड़ों पर अलकें यों बिखर रही थीं, कि जैसे अमृत के लोभ से संपोलिये उड़कर चाँद को जा लगे होयँ। कभी कोई गोपी श्रीकृष्ण की मुरली के साथ मिलकर जील में गाती थी, कभी कोई अपनी तान अलग ही ले जाती थी औ जब कोई बंसी को छेक उसकी तान समूची जों की तों गले से निकालती थी, तब हरि ऐसे भूल रहते थे कि जों बालक दरपन में अपना प्रतिबिंब देख भूल रहै।

इसी ढब से गाय गाय, नाच नाच, अनेक अनेक प्रकार के हाव, भाव, कटाक्ष कर कर सुख लेते देते थे, औ परस्पर रीझ रीझ हँस हँस, कंठ लगाय लगाय, वस्त्र आभूषन निछावर कर रहे थे। उस काल ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, आदि सब देवता औ गंधर्व अपनी अपनी स्त्रियों समेत विमानों में बैठे रास मंडली का सुख देख देख आनन्द से फूल बरसावते थे, और उनकी स्त्रियाँ वह सुख लख हौंस कर मन में कहती थीं कि जो जन्म ले ब्रज में जातीं तो हम भी हरि के साथ रास बिलास करतीं। औ राग रागनियों का ऐसा समा बँधा हुआ था कि जिसे सुन के पौन पानी भी न बहता था, औ तारामंडल समेत चन्द्रमा थकित हो किरनों से अमृत बरसाता था। इसमें रात बढ़ी तो छः महीने बीत गये औ किसी ने न जाना, तभी से उस रैन का नाम ब्रह्मरात्रि हुआ।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी बोले—पृथ्वीनाथ, रास लीला करते करते जो कुछ श्रीकृष्णचंद के मन में तरंग आई तो गोपियों को लिये यमुनातीर पै जाय, नीर में पैठ, जल क्रीड़ा कर, श्रम मिटाय, बाहर आय, सब के मनोरथ पूरे कर बोले कि

अब चार घड़ी रात रही है तुम सब अपने घर जाओ। इतना बचन सुन, उदास हो गोपियों ने कहा—नाथ, आपके चरन-कँवल छोड़के घर कैसे जाँय, हमारा लालची मन तो कहा मानता ही नहीं। श्रीकृष्ण बोले कि सुनौ, जैसे जोगी जन मेरा ध्यान धरते हैं, तैसे तुम भी ध्यान कीजियो, मैं तुम्हारे पास जहाँ रहोगी तहाँ रहूँगा। इतनी बात के सुनते ही संतोष कर सब बिदा हो अपने अपने घर गईं औ यह भेद उनके घरवालों में से किसी ने न जाना कि ये यहाँ न थीं।

इतनी कथा सुन राजा परीक्षित ने श्रीशुकदेव मुनि से पूछा कि दीनदयाल, यह तुम मुझे समझाकर कहो जो श्रीकृष्णचंद तो असुरों को मार पृथ्वी का भार उतारने औ साध संत को सुख दे धर्म का पंथ चलाने के लिये औतार आये थे, विन्होने पराई स्त्रियों के साथ रास बिलास क्यों किया, यह तो कुछ लंपट का कर्म है जो बिरानी नारी से भोग करै। शुकदेवजी बोले,—

सुन राजा यह भेद न जान्यौ। मानुष सम परमेश्वर मान्यौ।
जिनके सुमिरे पातक जात। तेजवंत पावन हैं गात॥
जैसे अग्नि माँझ कछु परै। सोऊ अग्नि होय कै जरै॥

सामर्थी क्या नहीं करते क्योंकि वे तो करके कर्म की हानि करते हैं, जैसे शिवजी ने विष लिया औ खाके कंठ को भूषन दिया, औ काले साँप का किया हार, कौन जाने उनका व्यौहार। वे तो अपने लिये कुछ भी नहीं करते जो विनका भजन सुमिरन कर कोई वर मांगता है तैसाही तिसको देते हैं।

उनकी तो यह रीति है कि सब से मिले दृष्ट आते हैं औ ध्यान कर देखिये तो सब ही से ऐसे अगल जनाते हैं जैसे जल में

कँवल का पाता, और गोपियों की उत्पत्ति तो मैं तुम्हें पहले ही सुना चुका हूँ कि देवी औ वेद की ऋचाएँ हरि का दरस परस करने को ब्रज में जन्म ले आई हैं औ इसी भाँति श्रीराधिका भी ब्रह्मा से बर पाय श्रीकृष्णचंद की सेवा करने को जन्म ले आई और प्रभु की सेवा में रही।

इतना कह श्रीशुकदेवजी बोले—महाराज, कहा है कि हरि के चरित्र मान लीजे पर उनके करने में मन न दीजे। जो कोई गोपीनाथ का जस गाता है सो निर्भय अटल परम पद पाता है, औ जैसा फल होता है अठसठ तीरथ के न्हाने में; तैसा ही फल मिलता है श्रीकृष्ण जस गाने में।

पैंतीसवाँ अध्याय

श्रीशुकदेव मुनि कहने लगे कि राजा, जैसे श्रीकृष्णजी ने विद्याधर को तारा औ शंखचूड़ को मारा सो प्रसंग कहता हूँ, तुम जी लगाय सुनो। एक दिन नन्दजी ने सब गोप ग्वालों को बुलायके कहा कि भाइयो जब कृष्ण का जन्म हुआ था, तब मैंने कुलदेवी अम्बिका की यह मानता करी थी कि जिस दिन कृष्ण बारह बरस का होगा तिस दिन नगर समेत बाजे गाजे से जाकर पूजा करूँगा, सो दिन उनकी कृपा से आज देखा, अब चलकर पूजा किया चाहिए।

इतना बचन नन्दजी के मुख से सुनतेही सब गोप ग्वाल उठ धाए औ झटपटही अपने अपने घरों से पूजा की सामग्री ले आए। तद तो नन्दराय भी पुजापा औ दूध दही माखन सगड़ों बहँगियों में रखवाय, कुटुम्ब समेत उनके साथ हो लिये औ चले चले अंबिका के स्थान पर पहुँचे। वहाँ जाय सरस्वती नदी में न्हाय, नंदजी ने पुरोहित बुलाय, सब को साथ ले देवी के मंदिर में जाय शास्त्र की रीति से पूजा की। औ जो पदारथ चढ़ाने को ले गये थे सो आगे धर, परिक्रमा दे, हाथ जोड़, बिनती कर कहा कि मा आपकी कृपा से कान्ह बारह बरस का हुआ।

ऐसे कह दंडवत कर मंदिर के बाहर आय, सहस्र ब्राह्मन जिमाए। इसमें अबेर जो हुई तो ब्रजबासियों समेत, नंदजी तीरथ ब्रत कर वहाँही रहे। रात को सोते थे कि एक अजगर ने आय नंदराय का पाँव पकड़ा औ लगा निगलने, तब तो वे देखते

ही भय खाय घबरायके लगे पुकारने, हे कृष्ण, हे कृष्ण, वेग सुध ले, नहीं तो यह मुझे निगले जाता है। उनका शब्द सुनते ही सारे ब्रजबासी स्त्री क्या पुरुष नींद से चौंक नंदजी के निकट जाय, उजाला कर देखें तो एक अजगर उनका पाँव पकड़े पड़ा है। इतने में श्रीकृष्णचंदजी ने पहुँच सबके देखतेही जो उसकी पीठ में चरन लगाया तोंही वह अपनी देह छोड़ सुंदर पुरुष हो प्रनाम कर सनमुख हाथ जोड़ खड़ा हुआ। तब श्रीकृष्ण ने उससे पूछा कि तू कौन है औ किस पाप से अजगर हुआ था सो कह। वह सिर झुकाय विनती कर बोला—अंतरजामी, तुम सब जानते हो मेरी उतपत्ति कि मैं सुदरसन नाम विद्याधर हूँ। सुरपुर में रहता था औ अपने रूप गुन के आगे गर्व से किसी को कुछ न गिनता था।

एक दिन बिमान में बैठ फिरने को निकला तो जहाँ अंगिरा ऋषि बैठे तप करते थे, तिनके ऊपर हो सौ बेर आया गया। एक बेर जों उन्होंने बिमान की परछाईं देखी तो ऊपर देख क्रोध कर मुझे श्राप दिया कि रे अभिमानी, तू अजगर साँप हो।

इतना बचन उनके मुख से निकला कि मैं अजगर हो नीचे गिरा। तिस समै ऋषि ने कहा था कि तेरी मुक्ति श्रीकृष्णचंद के हाथ होगी। इसीलिये मैंने नंदरायजी के चरन आन पकड़े थे जो आप आयके मुझे मुक्त करें। सो कृपानाथ, आपने आय कृपा कर मुझे मुक्ति दी। ऐसे कह विद्याधर तो परिक्रमा दे, हरि से आज्ञा ले, दंडवत कर, बिदा हो, बिमान पर चढ़ सुर लोक को गया और यह चरित्र देख सब ब्रजबासियों को अचरज हुआ। निदान भोर होतेही देवी का दरसन कर सब मिल बृंदाबन आए।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव मुनि बोले कि पृथ्वीनाथ, एक

दिन हलधर औ गोबिंद गोपियों समेत चाँदनी रात को आनंद से बन में गाय रहे थे कि इस बीच कुबेर का सेवक शंखचूड़ नाम यक्ष, जिसके सीस में मनि औ जो अति बलवान था, सो आ निकला। देखे तो एक ओर सब गोपियाँ कुतूहल कर रही हैं, औ एक ओर कृष्ण बलदेव मगन हो मत्तवत गाय रहे हैं। कुछ इसके जी में जो आई तो सब ब्रज युवतियों को घेर आगे धर ले चला, तिस समै भय खाय पुकारीं ब्रजबाम, रक्षा करो कृष्ण बलराम।

इतना बचन गोपियों के मुख से निकलतेही सुनकर दोनों भाई रूख उखाड़ हाथों में ले यों दौड़ आए कि मानौ गज माते सिंह पर उठ धाए। औ वहाँ जाय गोपियों से कहा कि तुम किसी से मत डरो हम आन पहुँचे। इनको काल समान देखतेही यक्ष भयमान हो गोपियों को छोड़ अपना प्रान ले भागा। उस काल नंदलाल ने बलदेवजी को तो गोपियों के पास छोड़ा औ आप जाय उसके झोंटे पकड़ पछाड़ा, निदान तिरछा हाथ कर उसका सिर काट मनि ले आन बलरामजी को दिया।

छत्तीसवाँ अध्याय

श्रीशुकदेव मुनि बोले—राजा, जब तक हरि बन में धेनु चरावें तब तक ब्रज युवतियाँ नंदरानी के पास आय बैठ कर प्रभु का जस गावें। जो लीला श्रीकृष्ण बन में करें, सो गोपियाँ घर बैठी उच्चरें।

सुनौ सखी बाजति है बैन। पशु पक्षी पावत हैं चैन॥
पति सँग देवी थकी बिमान। मगन भई हैं धुनि सुन कान॥
करतें परहिं चुरी मूंदरी। बिहबल मन तन की सुधि हरी॥
तबहीं एक कहै ब्रजनारि। गरजनि मेघ तजी अति हारि॥
गावत हरि आनंद अडोल। भौंह नचावत पानि कपोल॥
पिय सँग मृगी थकी सुनि बेनु। जमुना फिरी घिरी तहँ धेनु॥
मोहे बादर छैयाँ करें। मानौ छत्र कृष्ण पर धरें॥
अब हरि सघन कुंज कौ धाए। पुनि सब बंसीबट तर आए॥
गायन पाछें डोलत भये। घेर लईं जल प्यावन गये॥
साँझ भई अब उलटे हरी। रांभति गाय धेनु धुनि करी॥

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज, इसी रीति से नित गोपियाँ दिन भर हरि के गुन गावें औ साँझ समय आगे जाय श्रीकृष्णचंद आनंदकंद से मिल सुख मान ले आवें। औ तिस समै जसोदा रानी भी रजमंडित पुत्र का मुख प्यार से पोंछ कंठ लगाय सुख माने।

———

सैंतीसवाँ अध्याय

श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, एक दिन श्रीकृष्ण बलराम साँझ समै धेनु चरायके बन से घर को आते थे, इस बीच एक असुर अति बड़ा बैल बन आय गायों में मिला।

आकाश लौं देह तिनि धरी। पीठ कड़ी पाथर सी करी।
बड़े सींग तीछन दोउ खरे। रक्त नैन अति ही रिस भरे॥
पूँछ उठाय डकारतु फिरै। रहि रहि मूतत गोबर करै॥
फड़कै कंध हिलावै कान। भजे देव सब छोड़ बिमान॥
खुर सों खोदै नदी करारे। पर्वत उथल पीठ सों डारे॥
सब कौं त्रास भयो तिहि काल। कंपहि लोकपाल दिगपाल॥
पृथ्वी हलै शेष थरहरै। तिय औ धेनु गर्भ भू परै॥

उसे देखतेही सब गायें तो जिधर तिधर फैल गईं औ ब्रज-वासी दौड़ वहाँ आए, जहाँ सब के पीछे कृष्ण बलराम चले आते थे। प्रनाम कर कहा—महाराज, आगे एक अति बड़ा बैल खड़ा है, उससे हमें बचाओ। इतनी बात के सुनतेही अन्तरजामी श्रीकृष्णचंद बोले कि तुम कुछ मत डरो उससे, वह वृषभ का रूप बनकर आया है नीच, हमसे चाहता है अपनी मीच। इतना कह आगे जाय उसे देख बोले बनवारी, कि आव हमारे पास कपट तन धारी। तू और किसू को क्यौ डराता है, मेरे निकट किस लिये नहीं आता। जो बैरी सिंह का कहावता है, सो मृग पर नहीं धावता। देख मैं ही हूँ कालरूप गोविंद, मैंने तुझसे वहुतों को मार के किया है निकंद।

यों कह फिर ताल ठोक ललकारे—आ मुझसे संग्राम कर। यह बचन सुनते ही असुर ऐसे क्रोध कर धाया कि मानौ इंद्र का बज्र आया। जों जों हरि उसे हटाते थे त्यों त्यों वह सँभल सँभल बढ़ा आता था। एक बार जों इन्होंने विसे दे पटका तों ही खिज-लाकर उठा औ दोनों सींगों में उसने हरि को दबाया, तब तो श्रीकृष्णजी ने भी फुरती से निकल झट पाँव पर पाँव दे उसके सींग पकड़ यों मरोड़ा कि जैसे कोई भींगे चीर को निचोड़ै। निदान वह पछाड़ खाय गिरा औ उसका जी निकल गया। तिस समै सब देवता अपने अपने बिमानों में बैठ आनंद से फूल बर-सावने लगे औ गोपी गोप कृष्णजस गाने। इस बीच श्रीराधि-काजी ने आ हरि से कहा कि महाराज वृषभ रूप जो तुमने मारा इसका पाप हुआ, इससे अब तुम तीरथ न्हाय आओ तब किसी को हाथ लगाओ। इतनी बात के सुनते ही प्रभु बोले कि सब तीरथों को मैं ब्रजही में बुला लेता हूँ। यों कह गोवर्द्धन के निकट जाय दो औंडे कुंड खुदवाए, तहीं सब तीरथ देह धर आए और अपना नाम कह कह उनमें जल डाल डाल चले गये। तब श्रीकृष्णचंद उसमें स्नान कर, बाहर आय, अनेक गोदान दे, बहुत से ब्राह्मन जिमाय शुद्ध हुए, औ विसी दिन से कृष्णकुंड, राधा-कुंड करके वे प्रसिद्ध हुए।

यह प्रसंग सुनाय श्रीशुकदेव मुनि बोले कि महाराज, एक दिन नारद मुनि जी कंस के पास आए, औ उसका कोप बढ़ाने को जब उन्होंने बलराम औ स्याम के होने औ माया के आने औ कृष्ण के जाने का भेद समझाकर कहा तब कंस क्रोध कर बोला—नारद जी तुम सच कहते हो।

प्रथम दियौ सुत आनिकै, मन परतीत बढ़ाय।
जौं ठग कछू दिखाइ कै, सर्वसु ले भजि जाय॥

इतना कह बसुदेव को बुलाय पकड़ बाँधा औ खांड़े पर हाथ रख अकुला कर बोला।

मिला रहा कपटी तू मुझे। भला साध जाना मैं तुझे॥
दिया नंद के कृष्ण पठाय। देवी हमें दिखाई आय॥
मन में कुछी कही मुख और। आज अवश्य मारूं इहिं ठौर॥
मित्र सगा सेवक हितकारी। करै कपट सो पापी भारी॥
मुख मीठा मन विष भरा, रहे कपट के हेत।
आप काज पर द्रोहिया, उससे भला जु प्रेत॥

ऐसे बक झक फिर कंस नारदजी से कहने लगा कि महाराज, हमने कुछ इसके मन का भेद न पाया, हुआ लड़का औ कन्या को ला दिखाया, जिसे कहा अधूरा गया, सोई जा गोकुल में बलदेव भया। इसना कह क्रोध कर ओठ चबाय खड़ग उठाय जो चाहा कि वसुदेव को मारूँ, तों नारद मुनि ने हाथ पकड़कर कहा—राजा, बसुदेव को तों तू रख आज, औ जिसमें कृष्ण बलदेव आवं सो कर काज। ऐसे समझाय बुझाय जब नारद मुनि चले गये, तब कंस ने बसुदेव देवकी को तो एक कोठड़ी में मूँद दिया औ आप भयातुर हो केसी नाम राक्षस को बुलाके बोला।

महा बली तू साथी मेरा। बड़ा भरोसा मुझको तेरा।
एक बार तू ब्रज में जा। रामकृष्ण हनि मुझे दिखा॥

इतना बचन सुनतेही केसी तो आज्ञा पा विदा हो दंडवत कर बृंदावन को गया औ कंस ने साल, तुसाल, चानूर, अरिष्ट, व्योमासुर, आदि जितने मंत्री थे सब को बुला भेजा। वे आए,

तिन्हें समझाकर कहने लगा कि मेरा वैरी पास आय बसा है, तुम अपने जी में सोच बिचार करके मेरे मन का सूल जो खटकता है निकालो। मन्त्री बोले—पृथ्वीनाथ, आप महा बली हो, किससे डरते हैं। राम कृष्ण का मारना क्या बड़ी बात है, कुछ चिंता मत करो, जिस छल बल से वे यहाँ आवें सोई हम मता बतावें।

पहले तो यहाँ भली भाँति से एक ऐसी सुंदर रंगभूमि बनवावें, कि जिसकी सोभा सुनतेही देखने को नगर नगर गाँव गाँव के लोग उठ धावें। पीछे महादेव का जज्ञ करवाओ औ होम के लिये बकरे भैंसे मँगवाओ। यह समाचार सुन सब ब्रजबासी भेट लावेंगे, तिनके साथ रामकृष्ण भी आवेंगे। उन्हें तभी कोई मल्ल पछाड़ेगा, कै कोई और ही बली पौर पै मार डालेगा। इतनी बात के सुनते ही—

कहै कंस मन लाय, भलौ मतौ मन्त्री कियौ।
लीने मल्ल बुलाय, आदर कर बीरा दए॥

फिर सभा कर अपने बड़े बड़े रासक्षों से कहने लगा कि जब हमारे भानजे राम कृष्ण यहाँ आवें तब तुममें से कोई उन्हें मार डालियो, जो मेरे जी का खटका जाय। विन्हें यों समझाय पुनि महावत को बुलाके बोला कि तेरे बश में मतवाला हाथी है, तू द्वार पर लिये खड़ा रहियो। जद वे दोनों आवें औ बार में पाँव दें तद तू हाथी से चिरवा डालियो, किनी भाँति भागने न पावे। जो विन दोनों को मारेगा, सो मुँह माँगा धन पावेगा।

ऐसे सब को सुनाय समझाय बुझाय कात्तिक बदी चौदस को शिव का जज्ञ ठहराय, कंस ने साँझ समै अक्रूर को बुलाय

अति आवभगति कर, घर भीतर ले जाय, एक सिंहासन पर अपने पास बैठाय, हाथ पकड़ अति प्यार से कहा कि तुम यदुकुल में सबसे बड़े, ज्ञानी, धरमात्मा, धीर हो, इस लिये तुम्हें सब जानते हैं। ऐसा कोई नहीं जो तुम्हें देख सुखी न होय, इससे जैसे इन्द्र का काज बावन ने जा किया जो छल कर बलि का सारा राज ले दिया औ राजा बलि को पाताल पठाया, तैसे तुम हमारा काम करो तो एक बेर बृंदाबन जाओ और देवकी के दोनों लड़कों को जों बने तों छल बल कर यहाँ ले आओ।

कहा है जो बड़े हैं सो आप दुख सह करते हैं पराया काज, तिसमें तुम्हें तो है हमारी सब बात की लाज। अधिक क्या कहेंगे जैसे बने वैसे उन्हें ले आओ, तो यहाँ सहजही में मारे जायँगे। कै तो देखते चानूर पछाड़ेगा, कै गज कुबलिया पकड़ चीर डालेगा, नहीं तो मैं ही उठ मारूँगा, अपना काज अपने हाथ सँवारूँगा। और उन दोनों को मार पीछे उग्रसेन को हनूँगा, क्योंकि वह बड़ा कपटी है, मेरा मरना चाहता है। फिर देवकी के पिता देवक को आग से जलाय पानी में डबोऊँगा। साथ ही उसके बसुदेव को मार हरिभक्तों को जड़ से खोऊँगा, तब निकंटक राज कर जरासिंधु जो मेरा मित्र है प्रचंड, उसके त्रास से काँपते हैं नौखंड। औ नरकासुर, बामासुर, आदि बड़े बड़े महाबली राक्षस जिसके सेवक हैं तिससे जा मिलूँगा, जो तुम राम कृष्ण को ले आओ।

इतनी बातें कहकर कंस फिर अक्रूर को समझाने लगा कि तुम बृंदाबन में जाय नंद के यहाँ कहियो जो शिव का यज्ञ है, धनुष धरा है औ अनेक प्रकार के कुतूहल वहाँ होयँगे। यह सुन

नंद उपनंद गोपों समेत बकरे भैंसे ले भेंट देने लावेंगे, तिनके साथ देखने को कृष्ण बलदेव भी आवेंगे। यह तो मैंने तुम्हें उनके लावने का उपाय बता दिया, आगे तुम सज्ञान हो, जो और उकत बनि आवे सो करि कहियो, अधिक तुमसे क्या कहें। कहा है—

होय बिचित्र बसीठ, जाहि बुद्धि बल आपनौ।
पर कारज पर ढीठ, करहिं भरोसो ता तनौ॥

इतनी बात के सुनतेही पहले तो अक्रूर ने अपने जी में विचारा कि जो मैं अब इसे कुछ भली बात कहूँगा तो यह न मानेगा, इससे उत्तम यही कि इस समय इनके मनभाती सुहाती बात कहूँ। ऐसे और भी ठौर कहा है कि वही कहिए जो जिसे सुहाय। यों सोच विचार अक्रूर हाथ जोड़ सिर झुकाय बोला—महाराज, तुमने भला मता किया, यह वचन हमने भी सिर चढ़ाय लिया, होनहार पर कुछ बस नहीं चलता। मनुष्य अनेक मनोरथ कर धावता है, पर करम का लिखा ही फल पावता है। आगम बाँध तुमने यह बात विचारी है, न जानिए कैसी होय, मैंने तुम्हारी बात मान ली, कल भोर को जाऊँगा औ रामकृष्ण को ले आऊँगा। ऐसे कह कंस से बिदा हो अक्रूर अपने घर आया।

———

अड़तीसवाँ अध्याय

श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, जो श्रीकृष्णचंद ने केसी को मारा औ नारद ने जाय स्तुति करी, पुनि हरि ने व्योमासुर को हना तों सब चरित्र कहता हूँ, तुम चित्त दे सुनो कि भोर होते ही केसी अति ऊँचा भयावना घोड़ा बन बृंदाबन में आया और लगा लाल लाल आँखें कर नथने चढ़ाय कान पूंछ उठाय टाप टाप भूँ खोदने, हींस हींस कांधा कपाय लातें चलाने।

उसे देखते ही ग्वालबालों ने भय खाय भाग श्रीकृष्ण से जा कहा। वे सुनके वहाँ आये, जहाँ वह था औ विसे देख लड़ने को फेंट बाँध ताल ठोंक सिंह की भाँति गरज कर बोले—अरे, जो तू कंसका बड़ा प्रीतम है औ घोड़ा आया है तो और के पीछे क्यों फिरता है, आ मुझसे लड़ जो तेरा बल देखूं। दीप पतंग की भाँति कब तक फिरेगा, तेरी मृत्यु तो निकट आन पहुँची है। यह बचन सुन केसी कोप कर अपने मन में कहने लगा कि आज इसका बल देखूंगा औ पकड़ ईख की भाँति चबाय कंस का कारज कर जाऊँगा।

इतना कह मुँह बाय के ऐसे दौड़ा कि मानो सारे संसार को खा जायगा। आतेही पहले जों उसने श्रीकृष्ण पर मुँह चलाया तो उन्होंने एक बेर तो धकेल कर पीछे हटाया। जब दूसरी बेर वह फिर सँभल के मुख फैलाय धाया, तब श्रीकृष्ण ने अपना हाथ उसके मुँह में डाल लोह लाठ सा कर ऐसा बढ़ाया कि जिसने उसके दसो द्वार जा रोके, तब तो केसी घबरा जी में कहने लगा कि अब देह फटती है, यह कैसी भई अपनी मृत्यु आप मुँह में

ली, जैसे मछली बंसी को निगल प्राण देती है, तैसे मैंने भी अपना जीव खोया।

इतना कह उसने बहुतेरे उपाय हाथ निकालने को किये पर एक भी काम न आया। निदान सांस रुक कर पेट फट गया तो पछाड़ खाय के गिरा तब उसके शरीर से लोहू नदी की भाँति बह निकला। तिस समय ग्वालबाल आय आय देखने लगे औ श्रीकृष्णचंद आगे जाय वन में एक कदम की छाँह तले खड़े हुए।

इस बीच बीन हाथ में लिए नारद मुनि जी आन पहुँचे, प्रनाम कर खड़े होय बीन बजाय श्रीकृष्णचंद की भूत भविष्य की सब लीला औ चरित्र गायके बोले कि कृपानाथ तुम्हारी लीला अपरंपार है, इतनी किस में सामर्थ है जो आपके चरित्रों को बखाने, पर तुम्हारी दया से मैं इतना जानता हूँ कि आप भक्तों को सुख देने के अर्थ औ साधों की रक्षा के निमित्त औ दुष्ट असुरों के नाश करने के हेतु बार बार औतार ले संसार में प्रगट हो भूमि का भार उतारते हो।

इतना बचन सुनतेही प्रभु ने नारद मुनि को तो बिदा दी। वे दंडवत कर सिधारे औ आप सब ग्वालबाल सखाओं को साथ लिये, एक बड़ के तले बैठ पहले तो किसी को मंत्री, किसी को प्रधान, किसी को सेनापति बनाय आप राजा हो राजरीति के खेल खेलने लगे औ पीछे आँखमिचौली। इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी बोले कि पृथ्वीनाथ,

मार्‍यो केसी भोर ही, सुनी कंस यह बात।
ब्योमासुर सों कहतु है, झंखत कंपत गात॥

अरि कंदन ब्योमासुर बली। तेरी जग में कीरति भली॥

ज्यों राम के पवन को पूत । त्यों ही तू मेरे यमदूत ॥
बसुदेव के पूत हनि ल्याव । आज काज मेरो करि आव ॥

यह सुन, कर जोड़ व्योमासुर बोला—महाराज जो बसायगी सो करूंगा आज, मेरी देह है आप ही के काज । जो जी के लोभी हैं, तिन्हें स्वामी के अर्थ जी देते आती है लाज । सेवक औ स्त्री को तो इसी में जस धरम है जो स्वामी के निमित्त प्रान दे।

ऐसे कह कृष्ण बलदेव पर बीड़ा उठाय कंस को प्रनाम कर व्योमासुर बृंदाबन को चला । बाट में जाय ग्वाल का भेष बनाय चला चला वहाँ पहुँचा, जहाँ हरि ग्वालबाल सखाओं के साथ आँखमिचौली खेल रहे थे। जातेही दूर से जब उसने हाथ जोड़ श्रीकृष्णचंदसे कहा—महाराज, मुझे भी अपने साथ खिलाओ, तब हरि ने उसे पास बुला कर कहा—तू अपने जी में किसी बात की हौंस मत रख जो तेरा मन माने सो खेल हमारे संग खेल। यों सुन वह प्रसन्न हो बोला कि वृक मेंढ़े का खेल भला है। श्रीकृष्णचंद ने मुसकुराय के कहा—बहुत अच्छा, तू बन भेड़िया औ सब ग्वालबाल होवें मेंढ़े । सुनते ही फूलकर व्योमासुर तो ल्यारो हुआ औ ग्वालबाल बने मेंढ़े, मिलकर खेलने लगे ।

तिस समै वह असुर एक एक को उठा ले जाय औ पर्बत की गुफा में रख उस के मुँह पर आड़ी सिला धर मूंद के चला आवे। ऐसे जब सब को वहाँ रख आया औ अकेले श्रीकृष्ण रहे, तब ललकार कर बोला कि आज कंस का काज सारूँगा औ सब यदुबंसियों को मारूँगा । यों कह ग्वाल का भेष छोड़ सचमुच भेड़िया बन जों हरि पर झपटा तों उन्होंने उसको पकड़ गला घोंट मारे घूसों के यों मार पटका कि जैसे यज्ञ के बकरे को मार डालते हैं।

उँतालीसवाँ अध्याय

श्रीशुकदेव मुनि बोले कि महाराज, कार्त्तिक बदी द्वादशी को तो केसी औ ब्योमासुर मारा गया और त्रयोदशी को भोर के तड़केही, अक्रूर कंस के पास आय बिदा हो रथपर चढ़ अपने मन में यों विचारता बृंदावन को चला कि ऐसा मैंने क्या जप, तप, यज्ञ, दान, तीरथ, व्रत किया है, जिसके पुन्य से यह फल पाऊँगा। अपने जाने तो इस जन्म भर कभी हरि का नाम नहीं लिया, सदा कंस की संगति में रहा, भजन का भेद कहाँ पाऊँ। हाँ अगले जन्म कोई बड़ा पुन्य किया हो, उस धर्म के प्रताप का यह फल हो तो हो जो कंस ने मुझे श्रीकृष्णचंद आनंदकंद के लेने को भेजा है, अब जाय उनका दरसन पाय जन्म सुफल करूँगा।

हाथ जोरि कै पायन परिहौं। पुनि पगरेनु सीस पर धरिहौं॥
पाप हरन जेई पग आहि। सेवत श्रीब्रह्मादिक ताहि॥
जे पग काली के सिर परे। जे पग कुच चंदन सों भरे॥
नाचे रास मंडली आछै। जे पग डोलें गायन पाछै॥
जा पगरेनु अहिल्या तरी। जा पग तें गंगा निसरी॥
बलि छलि कियौ इंद्र कौ काज। ते पग हौं देखौंगो आज॥
मौ कौं सगुन होत हैं भले। मृग के झुंड दाहने चले॥

महाराज, ऐसे विचार फिर अक्रूर अपने मन में कहने लगा कि कहीं मुझे वे कंस का दूत तो न समझें। फिर आपही सोचा कि जिनका नाम अंतरजामी है, ऐसा कभी न समझेंगे, बरन मुझे देखतेही गले लगाय दया कर अपना कोमल, कंवल सा कर मेरे सीस पर धरेंगे। तब मैं उस चंद्र बदन की

शोभा इकटक निरख अपने नैन चकोरों को सुख दूँगा, कि जिस का ध्यान ब्रह्मा, इंद्र, आदि सब देवता सदा करते हैं।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज, इसी भाँति सोच विचार करते रथ हाँके इधर से तो अक्रूर जी गये औ उधर बन से गौ चराय, ग्वाल-बाल समेंत कृष्ण बलदेव भी आए, तो इनसे उनसे बृंदाबन के बाहरही भेंट भई। हरि छबि दूर से देखते ही अक्रूर रथ से उतर अति अकुलाय दौड़ उनके पाँओं पर जा गिरा, औ ऐसा मगन हुआ कि मुँह से बोल न आया, महा आनंद कर नैनों से जल बरसावने लगा, तब श्रीकृष्णजी उसे उठाय अति प्यार से मिल हाथ पकड़ घर लिवाय ले गये। वहाँ नंदराय अक्रूरजी को देखतेही प्रसन्न हो उठकर मिले औ बहुत सा आदर मान किया, पाँव धुलवाय आसन दिया।

लिये तेल मरदनियाँ आए। उबटि सुगंध चुपरि अन्हवाए।
चौका पटा जसोदा दियो। षटरस रुचि सों भोजन कियौ॥

जब अचायके पान खाने बैठे तब नंदजी उनसे कुशल क्षेम पूछ बोले, कि तुम तो यदुवंशियों में बड़े साध हो औ वहाँ के लोगों की क्या गति है, सो सब भेद कहो। अक्रूरजी बोले—

जबतें कंस मधुपुरी भयौ। तबतें सबही कौं दुख दयौ॥
पूछौ कहा नगर कुशलात। परजा दुखी होत है गात॥
जौ लौं है मथुरा में कंस। तौ लौं कहाँ बचै यदुबंस॥
पशु मेंढे छेरीन कौं, ज्यौं खटीक रिपु होइ।
त्यों परजा को कंस है, दुख पावें सब कोइ॥

इतना कह फिर बोले कि तुम तो कंस का व्योहार जानते हो। हम अधिक क्या कहेंगे।

चालीसवाँ अध्याय

श्रीशुकदेवजी बोले कि पृथ्वीनाथ, जब नन्दजी बातें कर चुके तब अक्रूर को कृष्ण बलराम सैन से बुलाय अलग ले गये।

आदर कर पूछी कुशलात। कहौ कका मथुरा की बात॥
हैं बसुदेव देवकी नीके। राजा बैर पर्यो तिनहीं के॥
अति पापी है मामा कंस। जिन खोयौ सिगरौ यदुवंस॥

कोई यदुकुल का महारोग जन्म ले आया है, तिसीने सब यदुबंसियों को सताया है। औ सच पूछो तो बसुदेव देवकी हमारे लिये इतना दुख पाते हैं, जो हमें न छिपाते तो वे इतना दुख न पाते। यों कह कृष्ण फिर बोले—

तुमसों कहा चलत उनि कह्यो। तिन कौ सदा ऋनी हौं रह्यो॥
करतु होयँगे सुरत हमारी। संकट में पावत दुख भारी॥

यह सुन अक्रूरजी बोले कि कृपानाथ, तुम सब जानते हो, क्या कहूँगा कंस की अनीति, विसकी किसी से नहीं है प्रीति। बसुदेव औ उग्रसेन को नित मारने का विचार किया करता है, पर वे आज तक अपनी प्रारब्ध से बच रहे हैं और जद से नारद मुनि आय आप के होने का सब समाचार बुझाय के कह गये हैं, तद से बसुदेव जी को बेड़ी हथकड़ी दे महा दुख में रक्खा है औ कल उसके यहाँ महादेव का यज्ञ है, औ धनुष धरा है, सब कोई देखने को आवेंगे, सो तुम्हें बुलाने को मुझे भेजा है यह कहकर, कि तुम जाय राम कृष्ण समेत नंदराय को यज्ञ की भेट सुद्धां

लिवाय लाओ, सो मैं तुम्हें लेन को आया हूँ। इतनी बात अक्रूर जी से सुन राम कृष्ण ने अनंदराय से कहा—

कंस बुलाये हैं सुनौ तात। कही अक्रूर कका यह बात॥
गोरस मेंढ़े छेरी लेउ। धनुष यज्ञ है ताकों देउ॥
सब मिल चलौं साथ आपने। राजा बोले रहत न बने॥

जब ऐसे समुझाय बुझायकर श्रीकृष्णचंद्रजी ने नंदजी से कहा, तब नंदरायजी ने उसी समै ढंढोरिये को बुलवाय सारे नगर में यों कह डोंडी फिरवाय दी, कि कल सबेरेही सब मिल मथुरा को जायँगे, राजा ने बुलाया है। इस बात के सुनने से भोर होतेही भेट ले ले सकल बृजबासी आन पहुँचे औ नंदजी भी दूध, दही माखन, मेंढ़े, बकरें, भैंसे ले सगड़ जुतवाय उनके साथ हो लिये और कृष्ण बलदेव भी अपने ग्वालबाल सखाओं को साथ ले रथ पर चढ़े।

आगे भये नंद उपनंद। सब पाछैं हलधर गोविंद॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि पृथ्वीनाथ, एकाकी श्रीकृष्ण का चलना सुन सब ब्रज की गोपियाँ, अति घबराय व्याकुल हो घर छोड़ हड़बड़ाय उठ धाईं, और कुढ़ती झखती गिरती पड़ती वहाँ आईं, जहाँ श्रीकृष्णचंद का रथ था। आते ही रथ के चारों ओर खड़ी हो हाथ जोड़ विनती कर कहने लगीं—हमें किस लिये छोड़ते हो ब्रजनाथ, सर्वस दिया है तुम्हारे हाथ। साध की तो प्रीति कभी घटती नहीं, कर की सी रेखा सदा रहती है, औ मूढ़ की प्रीति नहीं ठहरती, जैसे बालू की भीति। ऐसा तुम्हारा क्या अपराध किया है जो हमें पीठ दिये जाते हो। यों श्रीकृष्णचंद को सुनाय फिर गोपियाँ अक्रूर की ओर देख बोलीं—

यह अक्रूर अक्रूर है भारी। जानी कछू न पीर हमारी ॥
जा बिन छिन सब होति अनाथ। ताहि ले चल्यो अपने साथ ॥
कपटी क्रूर कठिन मन भयौ। नाम अक्रूर वृथा किन दयौ ॥
हे अक्रूर कुटिल मतिहीन। क्यौं दाहत अबला आधीन ॥

ऐसे कड़ी कड़ी बातें सुनाय, सोच संकोच छोड़, हरि का रथ पकड़ आपस में कहने लगीं—मथुरा की नारियाँ अति चंचल, चतुर, रूप गुन भरी हैं, उनसे प्रीति कर गुन औ रस के बस हो वहाँ ही रहेंगे बिहारी, तब काहे को करेंगे सुरत हमारी। उन्हीं के बड़े भाग हैं जो प्रीतम के संग रहैंगी, हमारे जप तप करने में ऐसी क्या चूक पड़ी थी, जिससे श्रीकृष्णचंद बिछड़ते हैं। यों आपस में कह फिर हरि से कहने लगीं, तुम्हारा तो नाम है गोपी-नाथ, किस लिये नहीं ले चलते हमें अपने साथ ॥

तुम बिन छिन छिन कैसे कटै। पलक ओट भये छाती फटै ॥
हित लगाय क्यौं करत बिछोह। निठुर निर्दई धरत न मोह ॥
ऐसे तहाँ जपैं सुंदरी। सोचैं दुख समुद्र में परी ॥
चाहि रहीं इकटक हरि ओर। ठगी मृगी सी चंद चकोर ॥
परहिं नैन तें आँसू टूट। रहीं बिथुरि लट मुख पर छूट ॥

श्रीशुकदेव मुनि बोले कि राजा, उस समै गोपियों की तो यह दसा थी जो मैंने कही औ जसोदा रानी ममता कर पुत्र को कंठ लगाय रो रो अति प्यार से कहती थीं कि बेटा, जै दिन में तुम वहाँ से फिर आओ, तै दिन के लिये कलेऊ ले जाओ, तहाँ जाय किसी से प्रीति मत कीजो, वेग आय अपनी जननी को दरसन दीजो। इतनी बात सुन श्रीकृष्ण रथ से उतर सबको समझाय बुझाय, मा से बिदा दंडवत कर असीस ले, फिर रथ पर

चढ़ चले तिस काल इधर से तो गोपियों समेत जसोदाजी अति अकुलाय रो रो कृष्ण कृष्ण कर पुकारती थीं औ उधर से श्रीकृष्ण रथ पर खडे पुकार पुकार कहते जाते थे कि तुम घर जाओ किसी बात की चिंता मत करो, हम पाँच चार दिन में ही फिरकर आते हैं।

ऐसे कहते कहते औ देखते देखते जब रथ दूर निकल गया औ धूलि आकाश तक छाई, तिसमें रथ की ध्वजा भी नहीं दिखाई, तब निरास हो एक बेर तो सबकी सब नीर बिन मीन की भाँति तड़फड़ाय मूर्छा खाय गिरीं, पीछे कितनी एक बेर के चेत कर उठीं औ अवध की आस मन में धर, धीरज कर, उधर जसोदाजी तो सब गोपियों को ले बृंदावन को गईं औ इधर श्रीकृष्णचंद्र सब समेत चले चले यमुना तीर आ पहुँचे तहाँ ग्वालबालों ने जल पिया औ हरि ने भी एक बड़ की छाँह में रथ खड़ा किया। जब अक्रूर जी न्हाने का विचारकर रथ से उतरे, तद श्रीकृष्णचंद्र ने नंदराय से कहा कि आप सब ग्वालोंको ले आगे चलिये, चचा अक्रूर स्नान कर लें तो पीछे से हम भी आ मिलते हैं।

यह सुन सब को ले नंदजी आगे बढ़े औ अक्रूरजी कपड़े खोल हाथ पाँव धोय, आचमन कर तीर पर जाय, नीर में पैठ डुबकी ले पूजा, तर्पण, जप, ध्यान कर फिर चुभकी मार आँख खोल जल में देखें तो वहाँ रथ समेत श्रीकृष्ण दृष्ट आए।

पुनि उन देख्यौ सीस उठाय। तिहिं ठाँ बैठे हैं यदुराय ॥
करै अचंभौ हिये बिचारि। वे रथ ऊपर दूर मुरारि ॥
बैठे दोऊ बर की छाँह। तिनहीं कौं देखौं जल माँह ॥
बाहर भीतर भेद न लहों। साँचौ रूप कौन सों कहों ॥

महाराज, अक्रूरजी तो एक ही मूरत बाहर भीतर देख सोचते- ही थे, कि इस बीच पहले तो श्रीकृष्णचंदजी ने चतुर्भुज हो शंख, चक्र, गदा, पद्म, धारन कर, सुर, मुनि, किन्नर, गंधर्व, आदि सब भक्तों समेत जल में दरसन दिया औ पीछे शेषशाई हो। तो अक्रूर देख और भी भूल रहा।

एकतालीसवाँ अध्याय

श्री शुकदेवजी बोले कि महाराज, पानी में खड़े खड़े अक्रूर को कितनी एक बेर में प्रभु का ध्यान करने से ज्ञान हुआ, तो हाथ जोड़ प्रनाम कर कहने लगा कि करता हरता तुम्हीं हो भगवंत, भक्तों के हेतु संसार में आय धरते हो भेष अनंत, और सुर नर मुनि तुम्हारे अंस हैं, तुम्हीं से प्रकट हो, तुम्हीं में ऐसे समाते हैं, जैसे जल सागर से निकल सागर में समाता है। तुम्हारी महिमा है अनूप, कौन कह सके सदा रहते हो विराट सरूप। सिर स्वर्ग, पृथ्वी पांव, समुद्र पेट, नाभि आकाश, बादल केस, वृक्ष रोम, अग्नि मुख, दसों दिसा कान, नैन चंद्र औ भानु, इंद्र भुजा, बुद्धि ब्रह्मा, अहंकार रुद्र, गरजन बचन, प्रान पवन, जल वीर्य्य, पलक लगाना रात दिन, इस रूप से सदा विराजते हो। तुम्हें कौन पहचान सके। इस भांति स्तुति कर अक्रूर ने प्रभु के चरन ध्यान धर कहा—कृपानाथ, मुझे अपनी सरन में रक्खो।

———

बयालीसवाँ अध्याय

श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, जद श्रीकृष्णचंद ने नट माया की भाँति जल में अनेक रूप दिखाय हर लिये, तद अक्रूर जी ने नीर से निकल तीर पर आ हरि को प्रनाम किया। तिस काल नंदलाल ने अक्रूर से पूछा कि कका, सीत समै जल के बीच इतनी बेर क्यों लगी ? हमें यह अति चिंता थी तुम्हारी, कि चचा ने किस लिये बाट चलने की सुधि बिसारी; क्या कुछी अचरज तो जाकर नहीं देखा, यह समझाय के कहो जो हमारे मन की दुबधा जाय।

सुनि अक्रूर कहै जोरे हाथ। तुम सब जानत हौ ब्रजनाथ ॥
भलौ दरस दीनों जल माहिं। कृष्णचरित को अचरज नाहिं ॥
मोहि भरोसौ भयौ तिहारौ। बेग नाथ मथुरा पग धारौ ॥

अब यहाँ बिलंब न करिये शीघ्र चल कारज कीजे। इतनी बात के सुनतेही हरि झट रथ पर बैठ अक्रूर को साथ ले चल खड़े हुए। औ नंद आदि जो सब गोप ग्वाल आगे गये थे उन्होंने जा मथुरा के बाहर डेरो किये, औ कृष्ण बलदेव की बाट देख देख अति चिंता कर आपस में कहने लगे, इतनी अबेर न्हाते क्यों लगी और किस लिये अबतक नहीं आए हरी, कि इस बीच चले चले आनंदकंद श्रीकृष्णचंद भी जाय मिले। उस समै हाथ जोड़ सिर झुकाय बिनती कर अक्रूरजी बोले कि ब्रजराज, अब चलके मेरा घर पवित्र कीजे औ अपने भक्तों को दरस दिखाय सुख दीजे। इतनी बात के सुनतेही हरि ने अक्रूर से कहा—

पहले सोध कंस को देहुँ। तब अपनो दिखरावौं गेहु ॥
सब की बिनती कहौ जु जाय। सुनि अक्रूर चले सिर नाय ॥

चले चले कितनी एक बेर में रथ से उतरकर वहाँ पहुँचे, जहाँ कंस सभा किये बैठा था। इनको देखते ही सिंहासन से उठ नीचे आय अति हित कर मिला और बड़े आदर मान से हाथ पकड़ ले जाय सिंहासन पर अपने पास बैठाय, इनकी कुशल क्षेम पूछ बोला—जहाँ गये थे वहाँ की बात कहो।

सुनि अक्रूर कहै समझाय। ब्रज की महिमा कही न जाय ॥
कहा नंद की करों बड़ाई। बात तुम्हारी सीस चढ़ाई ॥
राम कृष्ण दोऊ हैं आए। भेंट सबै ब्रजबासी लाए ॥
डेरा किये नदी के तीर। उतरे गाड़ा भारी भीर ॥

यह सुन कंस प्रसन्न हो बोला, अक्रूरजी, आज तुमने हमारा बड़ा काम किया जो राम कृष्ण को ले आए, अब घर जाय विश्राम करो।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज, कंस की आज्ञा पाय अक्रूरजी तो अपने घर गये। वह सोच विचार करने लगा और जहाँ नंद उपनंद बैठे थे, तहाँ उनसे हलधर औ गोविन्द ने पूछा—जो हम आपकी आज्ञा पावें तो नगर देख आवें। यह सुन पहले तो नंदरायजी ने कुछ खाने को मिठाई निकाल दी। उन दोनों भाइयों ने मिलकर खाय ली। पीछे बोले—अच्छा जाओ देख आओ, पर बिलम्ब मत कीजो।

इतना बचन नंदमहर के मुख से निकलतेही आनन्द कर दोनों भाई अपने ग्वालबाल सखाओं को साथ ले नगर देखने चले। आगे बढ़ देखें तो नगर के बाहर चारों ओर उपबन फूल

फल रहे हैं, तिनपर पंछी बैठे अनेक अनेक भाँति की मनभावन बोलियाँ बोलते हैं, औ बड़े बड़े निर्मल जल भरे सरोवर हैं, उनमें कँवल खिले हुए, जिनपर भौरों के झुंड के झुंड गूँज रहे, औ तीर में हंस सारस आदि पक्षी कलोलें कर रहे। सीतल सुगंध सनी मंद पौन बह रही, औ बड़ी बड़ी बाड़ियों की बाड़ों पर पनवाड़ियाँ लगी हुई। बीच बीच बरन बरन के फूलों की क्यारियाँ कोसों तक फूली हुई, ठौर ठौर इँदारों बावड़ियों पर रहट परोहे चल रहे, माली मीठे सुरों से गाय गाय जल सींच रहे।

यह शोभा बन उपवन की निरख हरष प्रभु सब समेत मथुरा पुरी में पैठे। वह पुरी कैसी है कि जिसके चहुँ ओर तांबे का कोट, औ पक्की चुआन चौड़ी खाई, स्फटक के चार फाटक, तिनमें अष्ट-धाती किवाड़ कंचन खचित लगे हुए, औ नगर में बरन बरन के राते पीले हरे धौले पंचखने सतखने मंदिर ऊँचे ऐसे कि घटा से बातें कर रहे, जिनके सोने के कलस कलसियों की जोति बिजली सी चमक रही, ध्वजा पताका फहराय रही, जाली झरोखों मोखों से धूप की सुगंध आय रही, द्वार द्वार पर केले के खंभ औ सुव-रन कलस से पल्लव भरे धरे हुए, तोरन बंदनवार बँधी हुई, घर घर बाजन बाज रहे, औ एक ओर भाँति भाँति के मनिमय कंचन के मंदिर राजा के न्यारेही जगमगाय रहे, तिनकी सोभा कुछ बरनी नहीं जाती। ऐसी जो सुंदर सुहावनी मथुरा पुरी तिसे श्रीकृष्ण बलदेव ग्वालबालों को साथ लिये देखते चले।

परी धूम मथुरा नगर, आवत नन्द कुमार।
सुनि धाए पुर लोग सब, गृह को काज बिसार॥

और जो मथुरा की सुन्दरी। सुनत कान अति आतुर खरी॥

कहैं परस्पर बचन उचारि। आवत हैं भलभद्र मुरारि॥
तेन्हें अक्रूर गये हैं लैन। चलहु सखी अब देखहिं नैन॥
कोऊ खात न्हात तें भजै। गुहत सीस कोऊ उठि तजे॥
काम केलि पिय की बिसरावे। उलटे भूषन बसन बनावे॥
जैसें ही तैसे उठि धाईं। कृष्ण दरस देखन को आईं॥

लाज कान डर डार, कोउ खिरकिन कोउ अटन पर।
कोऊ खरी दुवार, कोउ दौरी गलियन फिरत॥

ऐसे जहाँ तहाँ खड़ी नारि। प्रभुहिं बतावें बाँह पसारि॥
नील बसन गोरे बलराम। पीतांबर ओढ़े घनश्याम॥
ये भानजे कंस के दोऊ। इनते असुर बचौ नहिं कोऊ॥
सुनत हुती पुरुषारथ जिनको। देखहु रूप नैन भरि तिनको॥
पूरब जन्म कुकृत कोउ कीनौं। सो बिधि दरसन फल दीनौं॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव मुनि बोले कि महाराज, इसी रीत से सब पुरबासी, क्या स्त्री क्या पुरुष, अनेक प्रकार की बातें कह कह दरसन कर मगन होते थे, और जिस हाट, बाट, चौहटे में हो सब समेत कृष्ण बलराम निकलते थे, तहीं अपने अपने कोठों पर खड़े इन पर चोवा चंदन छिड़क छिड़क आनंद से वे फूल बरसावते थे औ ये नगर की शोभा देख देख ग्वालबालों से यों कहते जाते थे—भैया, कोई भूलियो मत औ जो कोई भूले तो पिछले डेरों पर जाइयो। इसमें कितनी एक दूर जाय के देखते क्या हैं, कि कंस के धोबी धोए कपड़ों की लादिया लादे, पोटें मोटें लिए, मद पिये, रंग राते, कंस जस गाते, नगर के बाहर से चले आते हैं। उन्हें देख श्रीकृष्णचंद ने बलदेवजी से कहा कि भैया, इनके सब चीर छीन लीजिए, और आप पहर

ग्वाल बालों को पहराय बचे सो लुटाय दीजिए। भाई यों सुनाय सब समेत धोबियों के पास जाय हरि बोले—

हमकौं उज्जल कपरा देहु। राजहिं मिलि आवें फिर लेहु॥
जा पहिरावनि नृप सों पैहैं। तामें तें कछु तुम कौं दैहैं॥

इतनी बात के सुनतेही विनमें से जो बड़ा धाबी था सो हँस कर कहने लगा—

राखैं धरी बनाय, ह्वै आवौ नृप द्वार लौं।
तब लीजो पट आय, जो चाहो सो दीजियो॥

बन बन फिरत चरावत गैया। अहिर जाति कामरी उढ़ैया॥
नट को भेष बनाय कै आए। नृप अंबर पहरन मन भाए॥
जुरिके चले नृपति के पास। पहिरावनि लैवे की आस॥
नेक आस जीवन की जोऊ। खोवन चहत अबहिं पुनि सोऊ॥

यह बात धोबी की सुनकर हरि ने फिर मुसकुराय कहा कि हम तो सूधी चाल से माँगते हैं तुम उलटी क्यों समझते हो, कपड़े देने से कुछ तुम्हारा न बिगड़ेगा, वरन जस लाभ होगा। यह बचन सुन रजक झुंझलाकर बोला—राजा के बागे पहरने का मुँह तो देखो। मेरे आगे से जा, नहीं अभी मार डालता हूँ। इतनी बात के सुनतेही क्रोधकर श्रीकृष्णचंद ने तिरछा कर एक हाथ ऐसा मारा कि उसका सिर भुट्टा सा उड़ गया। तब जितने उसके साथी औ टहलुये थे सब के सब पोटें मोटें लादियाँ छोड़ अपना जीव ले भागे औ कंस के पास जाय पुकारे। यहाँ श्रीकृष्णजी ने सब कपड़े लेलिए औ आप पहन भाई को पहराय ग्वालबालों को बाँट, रहे सो लुटाय दिये। तिस समय ग्वालबाल अति प्रसन्न हो हो लगे उलटे पुलटे वस्त्र पहनने।

कटि कस पग पहरें झगा, सूथन मेलें बाँह।
बसन भेद जानें नहीं हँसत कृष्ण मन माँह ॥

जो वहाँ से आगे बढ़े तो एक सूजी ने आय दंडवत कर खड़े होय कर जोड़ कहा—महाराज, मैं कहने को तो कंस का सेवक कहलाता हूँ पर मन से सदा आपही का गुन गाता हूँ, दया कर कहिये तो बागें पहिराऊँ जिससे तुम्हारा दास कहाऊँ।

इतनी बात उसके मुख से निकलतेही अंतरजामी श्रीकृष्ण-चंद ने विसे अपना भक्त जान निकट बुलाय कहा कि तू भले समय आया, अच्छा पहराय दे। तब तो उसने झटपट ही खोल उधेड़ कतर छाँट सीकर ठीक ठाक बनाय चुन चुन राम कृष्ण समेत सबको बागे पहराय दिये। उस काल नंदलाल विसे भक्ति दे साथ ले आगे चले।

तहाँ सुदामा माली आयो। आदर कर अपने घर लायो ॥
सबही को माला पहराई। माली के घर भई बधाई ॥

तैंतालिसवाँ अध्याय

श्री शुकदेवजी बोले कि पृथ्वीनाथ, माली की लगन देख मगन हो श्रीकृष्णचंद विसे भक्ति पदारथ दे, वहाँ से आगे जाय देखें तो सोंही गली में एक कुबड़ी केसर चंदन से कटोरिया भरे थाली के बीच धरे लिए हाथ में खड़ी है। उससे हरि ने पूछा—तू कौन है औ यह कहाँ ले चली है। यह बोली—दीनदयाल मैं कंस की दासी हूँ, मेरा नाम है कुबजा, नित चंदन घिस कंस को लगाती हूँ, औ मन से तुम्हारे गुन गाती हूँ। तिसीके प्रताप से आज आपका दर्शन पाय जन्म सार्थक किया, औ नैनों का फल लिया। अब दासी का मनोरथ यह है कि जो प्रभु की आज्ञा पाऊँ तो चंदन अपने हाथों चढ़ाऊँ।

उसकी अति भक्ति देख हरि ने कहा—जो तेरी इसी में प्रसन्नता है तो लगाव। इतना वचन सुनतेही कुबजा ने बड़े राव चाव से चित्त लगाय जब राम कृष्ण को चंदन चरचा, तब श्री-कृष्णचंद ने उसके मन की लाग देख दया कर पाँव पर पाँव धर, दो उँगली ठोढ़ी के तले लगाय उचकाय विसे सीधा किया। हरि का हाथ लगतेही वह महा सुंदरी हुई औ निपट विनती कर प्रभु से कहने लगी कि कृपानाथ, जो आपने कृपा कर इस दासी की देह सूधी की, तोंही दयाकर अब चलके घर पवित्र कीजै औ विश्राम ले दासी को सुख दीजे। यह सुन हरि उसका हाथ पकड़ मुसकुराय के कहने लगे—

तैं श्रम दूर हमारौ कियौ। मिल कै सीतल चंदन दियौ।
रूप सील गुन सुंदरि नीकी। तोंसों प्रीति निरंतर जी की।
आय मिलौंगो कंसहि मारि। यों कह आगे चले मुरारि।

औ कुबजा अपने घर जाय केसर चंदन से चौक पुराय, हरि के मिलने की आस मन में रख मंगलाचार करने लगी।

आवें तहाँ मथुरा की नारि। करैं अचंभौ कहैं निहारि॥
धनि धनि कुबजा तेरौ भाग। जाकौ बिधना दियौ सुहाग॥
ऐसो कहा कठिन तप कियौ। गोपीनाथ भेट भुज लियौ॥
हम नीके नहिं देखे हरी। तोकों मिले प्रीति अति करी॥
ऐसे तहाँ कहत सब नारि। मथुरा देखत फिरत मुरारि॥

इस बीच नगर देखते देखते सब समेत प्रभु धनुष पौर पर जा पहुँचे। इन्हें अपने रंग राते माते आते देखतेही पौरिये रिसाय के बोले—इधर किधर चले आते हो गँवार, दूर खड़े रहो, यह है राजद्वार। द्वारपालों की बात सुनी अनसुनी कर हरि सब समेत दर्राने वहाँ चले गये, जहाँ तीन ताड़ लंबा अति मोटा भारी महादेव का धनुष धरा था। जातेही झट उठाय चढ़ाय सहज सुभावही खैंच यों तोड़ डाला कि जों हाथी गाडा तोड़ता है।

इसमें सब रखवाले जो कंस के बिठाये धनुष की चौकी देते थे सो चढ़ आए। प्रभु ने उन्हें भी मार गिराया। तिस समै पुरवासी तो यह चरित्र देख विचारकर निसंक हो आपस में यों कहने लगे कि देखो राजा ने घर बैठे अपनी मृत्यु आप बुलाई है, इन दोनों भाइयों के हाथ से अब जीता न बचेगा, और धनुष टूटने का अति शब्द सुन कंस भय खाय अपने लोगों से पूछने लगा, कि यह महाशब्द काहे का हुआ। इस बीच कितने एक लोग राजा के जो दूर खड़े देखते थे, वे मूड़ फिकार यों जा पुकारे कि महाराज की दुहाई, राम कृष्ण ने आय नगर में बड़ी धूम मचाई। शिव का धनुष तोड़ सब रखवालों को मार डाला।

इतनी बात के सुनतेही कंस ने बहुत से जोधाओं को बुलाके कहा—तुम इनके साथ जाओ औ कृष्ण बलदेव को छल बल कर अभी मार आओ। इतना बचन कंस के मुख से निकलतेही ये अपने अपने अस्त्र शस्त्र ले वहाँ गये जहाँ वे दोनों भाई खड़े थे। इन्होंने उन्हें ज्यों ललकारा, त्यों विन्होंने इन सबको भी आय मार डाला। जद हरि ने देखा कि यहाँ कंस का सेवक अब कोई नहीं रहा, तद बलरामजी से कहा भाई, हमें आए बड़ी बेर हुई, डेरों पर चलना चाहिये क्योंकि बाबा नंद हमारी बाट देख देख भावना करते होयँगे। यों कह सब ग्वालबालों को साथ ले प्रभु बलराम समेत चलकर वहाँ आए, जहाँ डेरे पड़े थे। आते ही नंदमहर से तो कहा कि पिता, हम नगर में जाय भला कुतूहल देख आए, औ गोपग्वालों को अपने बागे दिखलाए।

तब लखि नंद कहै समुझाय। कान्ह तुम्हारी टेव न जाय॥
ब्रज बन नहीं हमारौ गाँव। यह है कंस राय की ठाँव॥
ह्याँ जिन कछू उपद्रव करौ। मेरी सीख पूत मन धरौ॥

जब नंदरायजी ऐसे समझाय चुके, तद नंदलाल बड़े लाड़ से बोले कि पिता, भूख लगी है जो हमारी माता ने खाने को साथ कर दिया है सो दीजिए। इतनी बात के सुनतेही उन्होंने जो पदारथ खाने को साथ आया था सो निकाल दिया। कृष्ण बलदेव ने ग्वालबालों के साथ मिलकर खाय लिया। इतनी कथा कह श्रीशुकदेव मुनि बोले कि महाराज इधर तो ये आय परमानंद से ब्यालू कर सोये औ उधर श्रीकृष्ण की बातें सुन सुनकर कंस के चित्त में अति चिंता हुई तो उसे न बैठे चैन था न खड़े, मन ही मन कुढ़ता था, अपनी पीर किसी से न कहता था। कहा है—

ज्यों काठहि घुन खात है, कोउ न जाने पीर।
त्यों चिंता चित में भये, बुधि बल घटत शरीर॥

निदान अति घबराया तब मंदिर में जाय सेज पर सोया, पर उसे मारे डर के नींद न आई।

तीन पहर निस जागत गई। लागी पलक नींद छिन भई॥
तब सपनौ देख्यौ मन मांह। फिरे सीस बिन धर की छांह॥
कबहूँ नगन रेत में न्हाय। धावै गदहा चढ़ विष खाय॥
बसे मसान भूत संग लिये। रक्त फूल की माला हिये॥
बरत रूप देखै चहुँ ओर। तिन पर बैठे बाल किशोर॥

महाराज, जब कंस ने ऐसा सपना देखा तब तो वह अति व्याकुल हो चौंक पड़ा औ सोच विचार करता उठकर बाहर आया, अपने मंत्रियों को बुलाय बोला—तुम अभी जाओ रंगभूमि को झड़वाय छिड़कवाय सँवारो और नंद उपनंद समेत सब व्रजबासियों को औ बसुदेव आदि यदुबंसियों को रंगभूमि में बुलाय बिठाओ, औ सब देस देस के जो राजा आए हैं तिन्हें भी, इतने में मैं भी आता हूँ।

कंस की आज्ञा पाय मंत्री रंगभूमि आए, उसे झड़वाय छिड़कवाय तहाँ पाटंबर छाय बिछाय, ध्वजा पताका तोरन बंदनवार बंधवाय, अनेक अनेक भांति के बाजे बजवाय, सबको बुलाय भेजा। वे आए औ अपने अपने मंच पर जाय जाय बैठे। इस बीच राजा कंस भी अति अभिमान भरा अपने मचान पर आय बैठा। उस काल देवता विमानों में बैठे आकाश से देखने लगे।

चौआलीसवाँ अध्याय

श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, भोरही जब नंद उपनंद आदि सब बड़े बड़े गोप रंगभूमि की सभा में गये, तब श्रीकृष्ण-चंदजी ने बलदेव जी से कहा कि भाई, सब गोप आगे गये, अब बिलंब न करिये, शीघ्र ग्वालबाल सखाओं को साथ ले रंगभूमि देखने चलिये।

इतनी बात के सुनतेही बलरामजी उठ खड़े हुए औ सब ग्वाल सखाओं से कहा कि भाइयो, चलो रंगभूमि की रचना देख आवें। यह बचन सुनतेही तुरंत सब साथ हो लिये, निदान श्रीकृष्ण बलराम नटवर भेष किये, ग्वालबाल सखाओं को साथ लिये, चले चले रंगभूमि की पौर पर आय खड़े हुए, जहाँ दस सहस्र हाथियों का बलवाला गज कुबलिया खड़ा झूमता था।

देखि मतंग द्वार मतवारौ। गजपालहि बलराम पुकारौ।
सुनो महावत बात हमारी। लेहु द्वार तें गज तुम टारी।
जान देहु हम कौं नृप पास। ना तर ह्वैहे गज कौ नास॥
कहे देत नहिं दोष हमारौ। मत जाने हरि कौं तू बारौ॥

ये त्रिभुवनपति हैं, दुष्टों को मार भूमि का भार उतारने को आए हैं। यह सुन महावत क्रोध कर बोला—मैं जानता हूँ, गौ चराय के त्रिभुवनपति भए हैं, इसीसे यहाँ आय बड़े सूर की भाँति अड़े खड़े हैं। धनुष का तोड़ना न समझियो, मेरा हाथी दस सहस्र हाथियों का बल रखता है, जब तक इससे न लड़ोगे तब तक भीतर न जाने पाओगे। तुमने तो बहुत बली मारे हैं

पर आज इसके हाथ से बचोगे तब मैं जानूँगा कि तुम बड़े बली हो।

तबै कोपि हलधर कह्यो, सुन रे मूढ़ कुजात।
गज समेत पटकौं अबहि, मुख सँभार बहु बात।
नेकु न लगिहै बार, हाथी मरि जैहै अबहि।
तो सों कहत पुकार, अजहु मान मेरौ कह्यौ॥

इतनी बात के सुनतेही झुँझलाकर गजपाल ने गज पेला, जों वह बलदेवजी पर टूटा तो इन्होंने हाथ घुमाय एक थपेड़ा ऐसा मारा कि वह सूँड़ सकोड़ चिंघाड़ मार पीछे हटा। यह चरित्र देख कंस के बड़े बड़े जोधा जो खड़े देखते थे सो अपने जियों से हार मान मनहीं मन कहने लगे कि इन महा बलवानों से कौन जीत सकेगा, औ महावत भी हाथी को पीछे हटा जान अति भय मान जी में विचार करने लगा कि जो ये बालक न मारे जायँ तो कंस मुझे भी जीता न छोड़ेगा। यों सोच समझ उसने फिर अंकुस मार हाथी को तत्ता किया औ इन दोनों भाइयों पर हूल दिया। उसने आतेही सूँड़ से हरि को पकड़ पछाड़ खुनसाय जों दांतों से दबाया, तों प्रभु सूक्ष्म शरीर बनाय दांतों के बीच बच रहे।

डरपि उठे तिहि काल सब, सुर मुनि पुर नर नारि।
दुहूँ दसन बिच ह्वै कढ़े, बलनिधि प्रभु दे तारि॥
उठे गजहि के साथ, बहुरि ख्यालहीं हांकि दै।
तुरतहिं भये सनाथ, देखि चरित सब स्याम के॥

हांक सुनत अति कोप बढ़ायौ। झटकि सूँड़ बहुरा गज धायौ॥
रहे उदर तर दबकि मुरारि। गये जानि गज रह्यो निहारि॥

पाछें प्रगट फेर हरि टेऱ्यो। बलदाऊ आगे तें घेऱ्यो॥
लागे गजहिं खिलावन दोऊ। भौंचक रहे देख सब कोऊ।

महाराज, उसे कभी बलराम सूँड़ पकड़ खैंचते थे, कभी स्याम पूँछ पकड़ और जब वह इन्हें पकड़ने को जाता था तब ये अलग हो जाते थे। कितनी एक बेर तक उससे ऐसे खेलते रहे जैसे बछड़ों के साथ बालकपन में खेलते थे। निदान हरि ने पूँछ पकड़ फिराय उसे दे पटका औ मारे घूंसों के मार डाला। दाँत उखाड़ लिये तब उसके मुँह से लोहू नदी की भाँति बह निकला। हाथी के मरतेही महावत ललकार कर आया। प्रभु ने उसे भी हाथी के पाँव तले झट मार गिराया, औ हँसते हँसते दोनों भाई नटवर भेष किये एक एक दाँत हाथी का हाथ में लिये, रंगभूमि के बीच जा खड़े हुए। उस काल नंदलाल को जिन जिनने जिस जिस भाव देखा उस उसको विसी विसी भाव से दृष्ट आए। मल्लों ने मल्ल माना, राजाओं ने राजा जाना, देवताओं ने अपना प्रभु बूझा, ग्वालबालों ने सखा, नंद उपनंद ने बालक समझा औ पुर की युवतियों ने रूपनिधान, औ कंसादिक राक्षसों ने काल समान देखा। महाराज, इनको निहारते ही कंस अति भयमान हो पुकारा—अरे मल्लो, इन्हें पछाड़ मारो, कै मेरे आगे से टालो।

इतनी बात जों कंस के मुँह से निकली तों सब मल्ल गुरु सुत चेले संग लिये, बरन बरन के भेष किये, ताल ठोक ठोक भिड़ने को श्रीकृष्ण बलराम के चारों ओर घिर आए। जैसे वे आए तैसे ये भी सँभल खड़े हुए, तब उनमें से इनकी ओर देख चतुराई कर चानूर बोला—सुनौ आज हमारे राजा कुछ उदास हैं इससे जी बहलाने को तुम्हारा युद्ध देखा चाहते हैं, क्योंकि तुमने बन में

रह सब विद्या सीखी है और किसी बात का मन में सोच न कीजे, हमारे साथ मल्लयुद्ध कर अपने राजा को सुख दीजे।

श्रीकृष्ण बोले—राजाजी ने बड़ी दया कर हमें बुलाया है आज, हमसे क्या सरेगा इनका काज, तुम अति बली गुनवान, हम बालक अजान, तुमसे हाथ कैसे मिलावें। कहा है, व्याह बैर औ प्रीति समान से कीजे, पर राजाजी से कुछ हमारा बस नहीं चलता इससे तुम्हारा कहा मानते हैं। हमें बचा लीजो बलकर पटक न दीजो। अब हमें तुम्हें उचित है जिसमें धर्म रहे सो कीजिये औ मिलकर अपने राजा को सुख दीजिये।

सुनि चानूर कहै भय खाय। तुम्हरी गति जानी नहिं जाय॥
तुम बालक मानस नहिं दोऊ। कीन्हे कपट बली हौ कोऊ॥
खेलत धनुष खंड द्वै कर्‍यो। मार्‍यो तुरत कुबलिया तर्‍यो॥
तुम सों लरे हानि नहिं होइ। या बातें जाने सब कोइ॥

———

पैंतालीसवाँ अध्याय

श्रीशुकदेव मुनि बोले कि पृथ्वीनाथ, ऐसे कितनी एक बातें कर ताल ठोक चानूर तो श्रीकृष्ण के सौंही हुआ, औ मुष्टक बलरामजी से आय भिड़ा। इनसे उनसे मल्ल युद्ध होने लगा।

सिर सों सिर भुज सों भुजा, दृष्ट दृष्ट सों जोरि।
चरन चरन गहि झपट कै, लपटत झपट झकोरि॥

उस काल सब लोग उन्हें इन्हें देख देख आपस में कहने लगे कि भाइयों, इस सभा में अति अनीति होती है, देखो कहाँ ये बालक रूपनिधान, कहाँ ये सबल मल्ल वज्र समान। जो बरजे तो कंस रिसाय, न बरजे तो धर्म जाय, इससे अब यहाँ रहना उचित नहीं, क्योंकि हमारा कुछ बस नहीं चलता।

महाराज, इधर तो ये सब लोग यों कहते थे और उधर श्रीकृष्ण बलराम मल्लों से मल्लयुद्ध करते थे। निदान इन दोनों भाइयों ने उन दोनों मल्लों को पछाड़ मारा। विनके मरतेही सब मल्ल आय टूटे। प्रभु ने पल भर में तिन्हें भी मार गिराया। तिस समै हरिभक्त तो प्रसन्न हो बाजन बजाय बजाय जैजैकार करने लगे औ देवता आकाश से अपने विमानों में बैठे कृष्णजस गाय गाय फूल बरसावने। औ कंस अति दुख पाय व्याकुल हो रिसाय अपने लोगों से कहने लगा—अरे बाजे क्यों बजाते हो, तुम्हें क्या कृष्ण की जीत भाती है।

यों कह बोला – ये दोनों बालक बड़े चंचल हैं, इन्हें पकड़ बाँध सभा से बाहर ले जाओ और देवकी समेत उग्रसेन बसुदेव

कपटी को पकड़ लाओ। पहले उन्हें मार पीछे इन दोनों को भी मार डालो। इतना बचन कंस के मुख से निकलतेही, भक्तों के हितकारी मुरारी सब असुरों को छिन भर में मार उछलके वहाँ जा चढ़े, जहाँ अति ऊँचे मंच पर झिलम पहने, टोप दिये, फरी खाँड़ा लिये, बड़े ही अभिमान से कंस बैठा था। वह इनको काल समान निकट देखते ही भय खाय उठ खड़ा हुआ औ लगा थर थर काँपने।

मन से तो चाहा कि भागूँ, पर मारे लाज के भाग न सका। फरी खाँड़ा सँभाल लगा चोट चलाने। उस काल नंदलाल अपनी घात लगाये उसकी चोट बचाते थे औ सुर, नर, मुनि, गन्धर्व, यह महायुद्ध देख देख भयमान हो यों पुकारते थे—हे नाथ, हे नाथ, इस दुष्ट को बेग मारो। कितनी एक बेर तक मंच पर युद्ध रहा। निदान प्रभु ने सबको दुखित जान उसके केस पकड़ मंच से नीचे पटका औ ऊपर से आप भी कूदे कि उसका जीव घट से निकल सटका। तब सब सभा के लोग पुकारे—श्रीकृष्णचंद ने कंस को मारा। यह शब्द सुन सुर, नर मुनि सबको अति आनंद हुआ।

करि अस्तुति पुनि पुनि हरष, बरख सुमन सुर बृंद॥
मुदित बजावत दुन्दुभी, कहि जै जै नँदनंद॥
मथुरा पुर नर नारि, अति प्रफुलित सबकौ हियौ॥
मनहुँ कुमुद बन चारु, बिकसित हरि ससि मुख निरखि॥

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा कि धर्मावतार, कंस के मरतेही जो अति बलवान आठ भाई उसके थे सो लड़ने को चढ़ आए। प्रभु ने उन्हें भी मार गिराया।

जब हरि ने देखा कि अब यहाँ राक्षस कोई नहीं रहा, तब कंस की लोथ को घसीट यमुना तीर पर ले आए, औ दोनों भाइयों ने बैठ विश्राम लिया। तिसी दिन से उस ठौर का नाम विश्रांत घाट हुआ।

आगे कंस का मरना सुन कंस की रानियाँ द्यौरानियों समेत अति व्याकुल हो रोती पीटती वहाँ आईं, जहाँ यमुना के तीर दोनों बीर मृतक लिये बैठे थे, औ लगीं अपने पति का मुख निरख निरख, सुख सुमिर सुमिर, गुन गाय गाय, व्याकुल हो हो, पछाड़ खाय खाय मरने कि इस बीच करुनानिधान कान्ह करुनाकर उनके निकट जाय बोले।

माई[1] सुनहु शोक नहिं कीजै। मामा जू कौं पानी दीजै॥
सदा न कोऊ जीवत रहै। गूढ़ौ सो जो अपनौ कहै॥
मात-पिता सुत बंधु न कोई। जन्म मरन फिरही फिर होई॥
जौ लौं जासो सनमंद रहै। तौही लौं मिलि कै सुख लहै॥

महाराज, जद श्रीकृष्णचंद ने रानियों को ऐसे समझाया तद विन्होंने वहाँ से उठ धीरज धर यमुना तीर पै आ पति को पानी दिया औ आप प्रभु ने अपने हाथ कंस को आग दे उसकी गति की।

---

(१) दोनों प्रतियों में माई शब्द है पर यह पद लल्लूलालजी ने श्रीमद् भागवत से ले लिया है जिसमें मामी शब्द है। यही शब्द यहाँ उपयुक्त भी है।

छौआलीसवाँ अध्याय

श्रीशुकदेव मुनि बोले कि हे राजा, रानियाँ तो धौरानियों समेत वहाँ न्हाय धोय रोय राजमंदिर को गईं औ श्रीकृष्ण बल-राम बसुदेव देवकी के पास आय, उनके हाथ पाँव की हथ-कड़ियाँ बेड़ियाँ काट दंडवत कर हाथ जोड़ कर सनमुख खड़े हुए। तिस समै प्रभु का रूप देख वसुदेव देवकी को ज्ञान हुआ तो उन्होंने अपने जी में निहचै कर जाना कि ये दोनों विधाता हैं। असुरों को मार भूमि का भार उतारने को संसार में औतार ले आए हैं।

जब वसुदेव देवकी ने यों जी में जाना तब अंतरजामी हरि ने अपनी माया फैलाय दी, उसने उनकी वह मति हर ली। फिर तो विन्होंने इन्हें पुत्र कर समझा कि इतने में श्रीकृष्णचंद अति-दीनता कर बोले—

तुम बहु दिवस लह्यो दुख भारी। करत रहे अति सुरत हमारी॥

इसमें हमारा कुछ अपराध नहीं क्योंकि जबसे आप हमें गोकुल में नंद के यहाँ रख आए तब से परबस थे, हमारा बस न था, पर मन में सदा यह आता था कि जिसके गर्भ में दस महीने रह जन्म लिया, विसे न कभी कुछ सुख दिया, न हम ही माता पिता का सुख देखा वृथा जन्म पराये यहां खोया, विन्होंने हमारे लिये अति बिपति सही, हमसे कुछ विनकी सेवा न भई, संसार में सामर्थी वेई हैं जो मा बाप की सेवा करते हैं। हम विनके ऋनी रहे, टहल न कर सके।

पृथ्वीनाथ, जब श्रीकृष्णजी ने अपने मन का खेद यों कह सुनाया तब अति आनंद कर उन दोनों ने इन दोनों को हितकर कंठ लगाया औ सुख मान पिछला दुख सब गँवाया। ऐसे मात पिता को सुख दे दोनों भाई वहाँ से चले चले उग्रसेन के पास आए और हाथ जोड़कर बोले—

नानाजू अब कीजे राज। शुभ नक्षत्र नीकौ दिन आज।

इतना हरिमुख से निकलतेही राजा उग्रसेन उठकर आ श्रीकृष्णचंद के पाओं पर गिर कहने लगे, कि कृपनाथ मेरी बिनती सुन लीजिये, जैसे आपने सब असुरों समेत कंस महादुष्ट को मार भक्तों को सुख दिया तैसेही सिंहासन पै बैठ अब मधुपुरी का राज कर प्रजापालन कीजिये। प्रभु बोले—महाराज, यदुबंसियों को राज का अधिकार नहीं, इस बात को सब कोई जानता है; जब राजा जजाति बूढ़े हुए तब अपने पुत्र यदु को उन्होंने बुलाकर कहा कि अपनी तरुन अवस्था मुझे दे और मेरा बुढ़ापा तू ले। यह सुन उसने अपने जी में बिचारा कि जो मैं पिता को युवा अवस्था दूँगा तो यह तरुन हो भोग करैगा, इसमें मुझे पाप होगा, इससे नहीं करनाही भला है। यों सोच समझके उसने कहा कि पिता, यह तो मुझसे न हो सकेगा। इतनी बात के सुनतेही राजा जजाति ने क्रोध कर यदु को श्राप दिया कि जा तेरे बंस में राजा कोई न होगा।

इसी बीच पुर नाम उनका छोटा बेटा सनमुख आ हाथ जोड़ बोला-पिता, अपनी वृद्ध अवस्था मुझे दो और मेरी तरुनाई तुम लो। यह देह किसी काम की नहीं, जो आपके काम आवै तो इससे उत्तम क्या है। जब पुर ने यों कहा तब राजा जजाति

प्रसन्न हो अपनी वृद्ध अवस्था दे उसकी युवा अवस्था ले बोले, कि तेरे कुल में राजगादी रहेगी। इससे नाना जी, हम यदुबंसी हैं हमें राज करना उचित नहीं।

करो बैठ तुम राज, दूर करहु संदेह सब।
हम करिहैं सब काज, जो आयसु दैहो हमें॥

जो न मानिहै आन तुम्हारी। ताहि दंड करिहैं हम भारी।
और कछू चित सोच न कीजै। नीति सहित परजहि सुख दीजै॥
यादव जितने कंस के त्रास। नगर छांड़ि कै गये प्रवास॥
तिनको अब कर खोज मँगाओ। सुख दै मथुरा मांझ बसाओ॥
विप्र धेनु सुर पूजन कीजै। इनकी रक्षा में चित दीजै॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव मुनि बोले कि धर्मावतार, महाराजाधिराज भक्तहितकारी श्रीकृष्णचंद ने उग्रसेन को अपना भक्त जान ऐसा समझाय सिंहासन पर बिठाय राजतिलक दिया, औ छत्र फिरवाय दोनों भाइयों ने अपने हाथों चँवर किया।

उस काल सब नगर के बासी अति आनंद में मगन हो धन्य धन्य कहने लगे, और देवता फूल बरसावने। महाराज, यों उग्रसेन को राज पाट पर बिठाय दोनों भाई बहुत से वस्त्र आभूषन अपने साथ लिवाये वहाँ से चले चले नंदरायजी के पास आए, और सनमुख हाथ जोड़ खड़े हो अति दीनता कर बोले—हम तुम्हारी क्या बड़ाई करें जो सहस्र जीभ होय तौ भी तुम्हारे गुन का बखान हम से न हो सके। तुमने हमें अति प्रीति कर अपने पुत्र की भाँति पाला, सब लाड़ प्यार किया और जसोदा मैया भी बड़ा स्नेह करतीं, अपना हित हमही पर रखतीं, सदा निज पुत्र समान जानतीं, कभी मन से भी हमें पराया कर न मानतीं।

ऐसे कह फिर श्रीकृष्णचंद बोले कि हे पिता, तुम यह बात सुन कर कुछ बुरा मत मानो, हम अपने मन की बात कहते हैं, कि माता पिता तो तुम्हैही कहेंगे पर अब कुछ दिन मथुरा में रहेंगे, अपने जात भाइयों को देख यदुकुल की उत्पत्ति सुनेंगे, और अपने माता पिता से मिल उन्हें सुख देंगे। क्यौंकि विन्होंने हमारे लिये बड़ा दुख सहा है जो हमें तुम्हारे यहाँ न पहुँचा आते तो वे दुख न पाते। इतना कह वस्त्र आभूषन नंद महर के आगे धर प्रभु ने निरमोही हो कहा—

मैया सों पालागन कहियो। हम पै प्रेम करै तुम रहियो॥

इतनी बात श्रीकृष्ण के मुँह से निकलतेही नंदराय तो अति उदास हो लगे लंबी साँसें लेने, औ ग्वालबाल बिचारकर मनहीं मन यों कहने कि यह क्या अचंभे की बात कहते हैं, इससे ऐसा समझ में आता है कि अब ये कपट कर जाया चाहते हैं, नहीं तो ऐसे निठुर बचन न कहते। महाराज, निदान उसमें से सुदामा नाम सखा बोला, भैया कन्हैया, अब मथुरा में तेरा क्या काम है, जो निठुराई कर पिता को छोड़ यहाँ रहता है। भला किया कंस को मारा, सब काम सँवारा, अब नंद के साथ हो लीजिये, औ बृंदाबन में चल राज कीजिये, यहाँ का राज देख मन में मत ललचाओ, वहाँ का सुख न पाओगे।

सुनौ, राज देख मूरख भूलते हैं औ हाथी घोड़े देख फूलते हैं। तुम बृंदाबन छोड़ कहीं मत रहो, वहाँ बसंत ऋतु रहती है, सघन बन औ यमुना की सोभा मन से कभी नहीं बिसरती। भाई, जो वह सुख छोड़ हमारा कहा न मान, मात पिता की माया तज यहाँ रहोगे, तो इसमें तुम्हारी क्या बड़ाई होगी।

उग्रसेन की सेवा करोगे औ रात दिन चिंता में रहोगे, जिसे तुमने राज दिया विसी के अधीन होना होगा। इससे अब उत्तम यही है कि नंदराय को दुख न दीजे, इनके साथ हो लीजे।

प्रज बन नदी बिहार बिचारौ। गायन कों मन तें न बिसारौ॥
नहीं छाँड़िहैं हम ब्रजनाथ। चलिहैं सबै तिहारे साथ॥

इतनी कथा कथ श्रीशुकदेव मुनि ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज, ऐसे कितनी एक बातें कह दस बीसेक सखा श्रीकृष्ण बलरामजी के साथ रहे, औ विन्होंने नंदराय से बुझाकर कहा कि आप सब को ले निस्संदेह आगे बढ़िये, पीछे से हम भी इन्हें साथ लिये चले आते हैं। इतनी बात के सुनतेही हुए—

व्याकुल सबै अहीर, मानहुँ पन्नग के डसे।
हरिमुख लखत अधीर, ठाढे काढ़े चित्र से॥

उस समै बलदेवजी नंदराय को अति दुखित देख समझाने लगे कि पिता, तुम इतना दुख क्यौं पाते हो, थोड़े एक दिनों में यहाँ का काज कर हम भी आते हैं, आपको आगे इस लिये बिदा करते हैं कि माता हमारी अकेली ब्याकुल होती होंगी, तुम्हारे गये से विन्हें कुछ धीरज होगा। नंदजी बोले कि बेटा, एक बार तुम मेरे साथ चलो, फिर मिलकर चले आइयो।

ऐसे कह अति विकल हो, रहे नंद गहि पाय।
भई छीन दुति मंद मति, नैनन जल न रहाय॥

महाराज, जब माया रहित श्रीकृष्णचंदजी ने ग्वालबालों समेत नंद महर को महा व्याकुल देखा, तब मन में बिचारा कि ये मुझसे बिछड़ेंगे तो जीते न बचेंगे, तोंही उन्होंने अपनी उस माया को छोड़ा जिसने सारे संसार को भुला रक्खा है, उनने

आतेही नंदजी को सब समेत अज्ञान किया। फिर प्रभु बोले कि पिता, तुम इतना क्यौं पछताते हो, पहले यही बिचारो जो मथुरा औ बृंदाबन में अंतर ही क्या है, तुमसे हम कहीं दूर तो नहीं जाते जो इतना दुख पाते हो, बृंदाबन के लोग दुखी होंगे, इस लिये तुम्हें आगे भेजते हैं।

जद ऐसे प्रभु ने नंद महर को समझाया तद वे धीरज धर हाथ जोड़ बोले—प्रभु, जो तुम्हारे ही जी में यौं आया तो मेरा क्या बस है, जाता हूँ, तुम्हारा कहा टाल नहीं सकता। इतना वचन नंदजी के मुख से निकलते ही, हरि ने सब गोप ग्वालबालों समेत नंदराय को तो बृंदाबन बिदा किया औ आप कई एकसखाओं समेत दोनों भाई मथुरा में रहे। उस काल नंद सहित गोप ग्वाल

चले सकल मग सोचत भारी। हारे सर्बसु मनहुँ जुआरी॥
काहू सुधि काहू बुधि नाहीं। लटपत चरन परत मगमाहीं॥
जात बृँदाबन देखत मधुबन। बिरह बिथा बाढ़ी व्याकुल तन॥

इसी रीति से जों तों कर बृंदाबन पहुँचे। इनका आना सुनतेही जसोदा रानी अति अकुलाकर दौड़ी आईं, और राम कृष्ण को न देख महा व्याकुल हो नंदजी से कहने लगीं—

अहो कंत सुत कहाँ गँवाए। बसन अभूषन लीने आए॥
कंचन फैंक काच घर राख्यौ। अमृत छाँड़ि मूढ विष चाख्यौ॥
पारस पाय अंध जों डारै। फिरि गुन सुनहिं कपारहि मारै॥

ऐसे तुमने भी पुत्र गँवाए औ बसन आभूषन उनके पलटे ले आए। अब विन बिन धन ले क्या करोगे। हे मूरख कंत, जिनके पलक ओट भये छाती फटे, कहो विन बिन दिन कैसे कटे। जब उन्होंने तुमसे बिछड़ने को कहा, तब तुम्हारा हिया कैसे रहा।

इतनी बात सुन नंदजी ने बड़ा दुख पाया औ नीचा सिर कर यह वचन सुनाया, कि सच है, ये वस्त्र अलंकार श्रीकृष्ण ने दिये, पर मुझे यह सुध नहीं जो किसने लिये, और मैं कृष्ण की बात क्या कहूँगा, सुन कर तू भी दुख पावेगी।

कंस मार मो पै फिर आए। प्रीति हरन कहि बचन सुनाए॥
वसुदेव के पुत्र वे भए। कर मनुहार हमारी गए॥
हों तब महरि अचंभे रह्यो। पोषन भरन हमारौ कह्यो॥
अब न महरि हरि सों सुत कहिये। ईश्वर जानि भजन करि रहिये॥

विसे तो हमने पहलेही नारायन जाना था, पर माया बस पुत्र कर माना। महराज, जद नंदरायजी ने सच सच बातें श्रीकृष्ण की कही कह सुनाई, तिस समै माया बस हो जसोदा रानी कभी तो प्रभु को अपना पुत्र जान मनही मन पछताय व्याकुल हो हो रोती थीं, और इसी रीति से सब बृंदाबनबासी क्या स्त्री क्या पुरुष हरि के प्रेम रंग राते, अनेक अनेक प्रकार की बातें करते थे, सो मेरी सामर्थ नहीं जो मैं बरनन करूँ, इससे अब मथुरा की लीला कहता हूँ, तुम चित दे सुनो।

जब हलधर औ गोविंद नंदराय को बिदा कर बसुदेव देवकी के पास आए तब विन्होंने इन्हें देख दुख भुलाय ऐसे सुख माना, कि जैसे तपी तप कर अपने तप का फल पाय सुख माने। आगे बसुदेवजी ने देवकी से कहा कि कृष्ण बलदेव पराये यहाँ रहे हैं, इन्होंने विनके साथ खाया पिया है औ अपनी जात को ब्योहार भी नहीं जानते, इससे अब उचित है कि पुरोहित को बुलाय पूछें, जो वह कहें सो करें। देवकी बोली—बहुत अच्छा।

तद बसुदेवजी ने अपने कुलपूज गर्ग मुनिजी को बुला भेजा।

वे आए। उनसे इन्होंने अपने मन का संदेह सब कहके पूछा, कि महाराज, अब हमें क्या करना उचित है सो दया कर कहिये। गर्ग मुनि बोले—पहले सब जात भाइयों को नौत बुलाइये, पीछे जात कर्म कर राम कृष्ण का जनेऊ दीजे।

इतना वचन पुरोहित के मुख से निकलतेही वसुदेवजी ने नगर में नौता भेज सब ब्राह्मन औ यदुबंसियों को नौत बुलाया; वे आए, तिन्हें अति आदर मान कर बिठाया।

उस काल पहले तो वसुदेवजी ने बिधि से जात कर्म कर जन्म पत्री लिखवाय, दस सहस्र गौ, सोने के सींग, तांबे की पीठ, रूपे के खुर समेत, पाटंबर उढ़ाय, ब्राह्मनों को दीं, जो श्रीकृष्ण जी के जन्म समै संकल्पी थीं। पीछे मंगलाचार करवाय बेद की विधि से सब रीति भाँति कर राम कृष्ण का यज्ञोपवीत किया, औ उन दोनों भाइयों को कुछ दे विद्या पढ़ने भेज दिया।

वे चले चले अवंतिकापुरी का एक सांदीपन नाम ऋषि महा पंडित औ बड़ा ज्ञानवान काशीपुरी में था, उसके यहाँ आए। दंडवत कर हाथ जोड़ सनमुख खड़े हो अति दीनता कर बोले—
हम पर कृपा करौ ऋषि राय। विद्या दान देहु मन लाय॥

महाराज, जब श्रीकृष्ण बलरामजी ने सांदीपन ऋषि से यों दीनता कर कहा, तब तो विन्ह ने इन्हें अति प्यार से अपने घर में रक्खा औ लगे बड़ी कृपा कर पढ़ावने। कितने एक दिनों में ये चार वेद, उपवेद, छः शास्त्र, नौ व्याकरन, अठारह पुरान, मंत्र, जंत्र, तंत्र, आगम, ज्योतिष, वैदक, कोक, संगीत, पिंगल पढ़ चौदह विद्या निधान हुए। तब एक दिन दोनों भाइयों ने हाथ जोड़ अति बिनती कर गुरु से कहा कि महाराज, कहा है जो

अनेक जन्म औतार ले बहुतेरा कुछ दीजिये तौ भी विद्या का पलटा न दिया जाय, पर आप हमारी शक्ति देख गुरु दक्षिना की आज्ञा कीजे, तो हम यथाशक्ति दे असीस ले अपने घर जायँ।

इतनी बात श्रीकृष्ण बलराम के मुख से निकलते ही, सांदीपन ऋषि वहाँ से उठ सोच विचार करता घर भीतर गया, औ विसने अपनी स्त्री से इनका भेद यों समझा कर कहा, कि ये राम कृष्ण जो दोनों बालक हैं सो आदिपुरुष अविनाशी हैं, भक्तों के हेतु अवतार ले भूमि का भार उतारने को संसार में आए हैं, मैंने इनकी लीला देख यह भेद जाना क्योंकि जो पढ़ पढ़ फिर फिर जन्म लेते हैं, सो भी विद्यारूपी सागर की थाह नहीं पाते, औ देखो इस बाल अवस्था से थोड़ेही दिनों में ये ऐसे अगम अपार समुद्र के पार हो गये। ये जो किया चाहैं सो पल भर में कर सकते हैं। इतना कह फिर बोले—

इन पै कहा माँगिये नारि। सुन कें सुंदरि कहै बिचारि॥
मृतक पुत्र माँगौ तुम जाय। जो हरि हैं तो दैहैं ल्याय॥

ऐसे घर में से बिचारकर, सांदीपन ऋषि स्त्री सहित बाहर जाय श्री कृष्ण बलदेवजी के सनमुख कर जोड़ दीनता कर बोले—महाराज, मेरे एक पुत्र था, तिसे साथ ले मैं कुटुंब समेत एक पर्व में समुद्र न्हान गया था, जों वहाँ पहुँच कपड़े उतार सब समेत तीर में नहाने लगा, तो सागर की एक बड़ी लहर आई, विसमें मेरा पुत्र बह गया, तो फिर न निकला, किसी मगर मच्छ ने निगल लिया, विसका दुख मुझे बड़ा है। जो आप गुरुदक्षिना दिया चाहते हैं तो वही सुत ला दीजे, औ हमारे मन का दुख दूर कीजे।

यह सुन श्रीकृष्ण बलराम गुरुपत्नी औ गुरु को प्रनाम कर, रथ पर चढ़ उनके पुत्र लाने के निमित्त समुद्र की ओर चले, औ चले चले कितनी एक बेर में तीर पर जा पहुँचे। इन्हें क्रोधवान आते देख सागर भयमान हो मनुष शरीर धारन कर बहुत सी भेंट ले नीर से निकल तीर पर डरता काँपता सोंही आ खड़ा हुआ, औ भेंट रख दंडवत कर हाथ जोड़ सिर नवाय अति विनती कर बोला—

बड़ौ भाग प्रभु दरसन दयौ। कौन काज इत आवन भयौ॥

श्रीकृष्णचंद बोले—हमारे गुरुदेव यहाँ कुनबे समेत नहाने आए थे, तिनके पुत्र कौ जो तू तरंग से बहाय ले गया है, तिसे ला दे, इसी लिये हम यहाँ आए हैं।

सुन समुद्र बोल्यौ सिर नाय। मैं नहिं लीनौं वाहि बहाय॥
तुम सबहीं के गुरु जगदीश। राम रूप बाँध्यौ हो ईस॥

तभी से मैं बहुत डरता हूँ, औ अपनी मर्य्यादा से रहता हूँ। हरि बोले—जो तूने नहीं लिया तो यहाँ से और कौन उसे ले गया। समुद्र ने कहा—कृपानाथ, मैं इसका भेद बताता हूँ कि एक संखासुर नाम असुर संख रूप मुझ में रहता है, सो सब जलचर जीवों को दुख देता है, औ जो कोई तीर पै न्हाने को आता है विसे पकड़ कर ले जाता है। कदाचित वह आपके गुरु सुत को ले गया होय तो मैं नहीं जानता, आप भीतर पैठ देखिये।

यों सुन कृष्ण धसे मन लाय। माँझ समुंदर पहुँचे जाय॥
देखत ही संखासुर मार्‍यौ। पेट फाड़कै बाहर डार्‍यौ॥
तामें गुरु कौ पुत्र न पायौ। पछताने बलभद्र सुनायौ॥

कि भैया, हमने इसे बिन काज मारा। बलरामजी बोले—

कुछ चिन्ता नहीं, अब आप इसे धारन कीजे। यह सुन हरि ने उस संख को अपना आयुध किया। आगे दोनों भाई वहाँ से चले चले यम की पुरी में जा पहुँचे, जिसका नाम है संयमनी, औ धर्मराज जहाँ का राजा है।

इनको देखतेही धर्मराज अपनी गादी से उठ आगे आय अति आवभगति कर ले गया। सिंहासन पर बैठाय पाँव धो चरनामृत ले बोला—धन्य यह ठौर, धन्य यह पुरी, जहाँ आकर प्रभु ने दरशन दिया औ अपने भक्तों को कृतारथ किया, अब कुछ आज्ञा कीजे जो सेवक पूरन करैं। प्रभु ने कहा कि हमारे गुरुपुत्र को लादे।

इतना बचन हरि के मुख से निकलतेही धर्मराज उठ जाकर बालक को ले आया, और हाथ जोड़ विनती कर बोला कि कृपा-नाथ आपकी कृपा से यह बात मैंने पहलेही जानी थी कि आप गुरुसुत के लेने को आवेंगे, इसलिये मैंने यत्न कर रक्खा है, इस बालक को आज तक जन्म नहीं दिया। महाराज, ऐसे कह धर्मराज ने बालक हरि को दिया। प्रभु ने ले लिया औ तुरन्त उसे रथ पर बैठाय वहाँ से चल कितनी एक बेर में जा गुरु के सोंहीं खड़ा किया, और दोनों भाइयों ने हाथ जोड़के कहा—गुरुदेव, अब क्या आज्ञा होती है।

इतनी बात सुन औ पुत्र को देख, सांदीपन ऋषि ने अति प्रसन्न हो श्रीकृष्ण बलरामजी को बहुत सी आसीसें देकर कहा—
अब हौं माँगों कहा मुरारी। दीनौं मोंहि पुत्र सुख भारी॥
अति जस तुम सौ सिष्य हमारौ। कुशल क्षेम अब घरहि पधारौ॥

जब ऐसे गुरु ने आज्ञा की तब दोनों भाई बिदा हो, दंडवत कर, रथपर बैठ वहाँ से चले चले मथुरापुरी के निकट आए। इनका

आना सुन राजा उग्रसेन वसुदेव समेत नगरनिवासी क्या स्त्री क्या पुरुष सब उठ धाये औ नगर के बाहर आय भेटकर अति सुख पाय बाजे गाजे पाटंबर के पाँवड़े डालते प्रभु को नगर में ले गये। उस काल घर घर मंगलाचार होने लगे औ बधाई बाजने।

सैंतालीसवाँ अध्याय

श्रीशुकदेवजी बोले कि पृथ्वीनाथ, जों श्रीकृष्णचंद ने बृंदाबन की सुरत करी तो मैं सब लीला कहता हूँ, तुम चित दे सुनौ कि एक दिन हरिने बलरामजी से कहा कि भाई, सब बृंदाबनवासी हमारी सुरत कर अति दुख पाते होंगे क्योंकि जो हमने उनसे अवध की थी सो बीत गई, इससे अब उचित है कि किसी को वहाँ भेज दीजे जो जाकर उनका समाधान कर आवै।

यों भाई से मता कर हरि ने ऊधो को बुलायके कहा कि अहो ऊधो, एक तो तुम हमारे बड़े सखा हो, दूजे अति चतुर, ज्ञानवान औ धीर, इसलिए हम तुम्हें बृंदाबन भेजा चाहते हैं कि तुम जाकर नंद जसोदा औ गोपियों को ज्ञान दे, उनका समाधान कर आओ, औ माता रोहिनी को ले आओ। ऊधो जी ने कहा—जो आज्ञा।

फिर श्रीकृष्णचंद बोले कि तुम प्रथम नंदमहर औ जसोदा जी को ज्ञान उपजाय उनके मन का मोह मिटाय, ऐसे समझाय कर कहियो जो वे मुझे निकट जान दुख तजें, औ पुत्रभाव छोड़ ईश्वर मान भजें। पीछे विन गोपियों से कहियो, जिन्होंने मेरे काज छोड़ी है लोक वेद की लाज, रात दिन लीलाजस गाती हैं औ अवध की आस किये प्रान मुट्ठी में लिए हैं कि तुम कंतभाव छोड़ हरि को भगवान जान भजो, औ बिरह दुख तजो।

महाराज, ऐसे ऊधो को कह, दोनों भाइयों ने मिलकर एक पाती लिखी, जिसमें नंद, जसोदा समेत गोप ग्वाल बालों को तो

यथायोग दंडवत, प्रणाम, आशीरवाद लिखा औ सब ब्रजयुवतियों को जोग का उपदेस लिख ऊधो के हाथ दी औ कहा—यह पाती तुमहीं पढ़ सुनाइयो, जैसे बने तैसे उन सब को समझाय शीघ्र आइयो।

इतना संदेसा कह प्रभु ने निज वस्त्र, आभूषन, मुकुट पहराय, अपने ही रथ पर बैठाय, ऊधो जी को बृंदाबन बिदा किया। ये रथ हांके कितनी एक बेर में मथुरा से चले चले बृंदाबन के निकट जा पहुँचे, तो वहाँ देखने क्या हैं कि सघन सघन कुंजो के पेड़ों पर भाँति भाँति के पक्षी मनभावन बोलियाँ बोल रहे हैं, औ जिधर तिधर धौली, पीली, भूरी, काली गायें घटा सी फिरती हैं, औ ठौर ठौर गोपी गोप ग्वाल बाल श्रीकृष्णजस गाय रहे हैं।

यह सोभा निरख हरखते औ प्रभु का बिहारस्थल जान प्रनाम करते ऊधोजी जों गाँव के ग्वेंडे गये, तों किसी ने दूर से हरि का रथ पहिचान पास आय इनका नाम पूछ नंदमहर से जा कहा कि महाराज, श्रीकृष्ण का भेष किये उन्हीं का रथ लिये कोई ऊधो नाम मथुरा से आया है।

इतनी बात के सुनतेही नंदराय जैसे गोपमंडली के बीच अथाई पर बैठे थे, तैसेही उठ धाए, औ तुरंत ऊधोजी के निकट आए। रामकृष्ण का संगी जान अति हित कर मिले औ कुशल क्षेम पूछ बड़े आदर मान से घर लिवाय ले गये। पहले पाँव धुलवाय आसन बैठने को दिया, पीछे षट्‌रस भोजन बनवाय ऊधोजी की पहुनई की। जब वे रुच से भोजन कर चुके, तब एक सुथरी उज्जल फेन सी सेज बिछवा दी, तिसपर पान खाय जाय

उन्होंने पौढ कर अति सुख पाया और मारग का श्रम सब गँवाया। कितनी एक बेर में जों ऊधोजी सोके उठे, तो नंदमहर उनके पास जा बैठे औ पूछने लगे कि कहो ऊधोजी, सूरसेन के पुत्र हमारे परम मित्र वसुदेवजी कुटुंब सहित आनंद से हैं, औ हमसे कैसी प्रीति रखते हैं, यों कह फिर बोले—

कुशल हमारे सुत की कहौ। जिनके संग सदा तुम रहौ॥
कबहूं वे सुधि करत हमारी। उन बिन दुख पावत हम भारी॥
सब ही सों आवन कह गये। बीती अवध बहुत दिन भये॥

नित उठ जसोदा दही बिलोय माखन निकाल हरि के लिये रखती है। उसकी औ ब्रजयुवतियों की, जो उनके प्रेम रंग में रँगी हैं सुरत कभू कान्ह करते हैं कै नहीं?

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि पृथीनाथ, इसी रीति से समाचार पूछते पूछते औ श्रीकृष्णचंद की पूर्व लीला गाते गाते, नंदरायजी तो प्रेम रस भीज, इतना कह, प्रभु का ध्यान धर अवाक हुए कि—

महाबली कंसादिक मारे। अब हम काहे कृष्ण बिसारे॥

इस बीच अति व्याकुल हो, सुध बुध देह की बिसारे, मन मारे, रोती जसोदा रानी ऊधोजी के निकट आय रामकृष्ण की कुशल पूछ बोली—कहो ऊधोजी, हरि हम बिन वहाँ कैसे इतने दिन रहे औ क्या संदेसा भेजा है? कब आय दरसन देंगे? इतनी बात के सुनते ही पहले तो ऊधोजी ने नंद जसोदा को श्रीकृष्ण बलराम की पाती पढ़ सुनाई, पीछे समझा कर कहने लगे कि जिनके घर में भगवान ने जन्म लिया औ बाललीला कर सुख दिया, तिनकी महिमा कौन कह सके। तुम बड़े भगवान हो क्योंकि

जो आदिपुरुष अविनासी, शिव विरंच का करता, न जिसके माता, न पिता, न भाई, न बंधु, तिसे तुम अपना पुत्र जान मानते हो, औ सदा उसीके ध्यान में मन लगाये रहते हो वह तुमसे कब दूर रह सकता है। कहा है—

सदा समीप प्रेमबस हरी। जन के हेतु देह जिन धरी ॥
जाकौ वैरी मित्र न कोई। ऊँच नीच कोऊ किन होई ॥
जोई भक्ति भजन मन धरै। सोई हरि सों मिल अनुसरै ॥

जैसे भृंगी कीट को ले जाता है, औ अपने रूप बना देता है, और जैसे कँवल के फूल में भौंरी मुँद जाती है, औ भौंरा रात भर उसके ऊपर गूँजता रहता है, विसे छोड़ और कहीं नहीं जाता, तैसे ही जो हरि से हित करता है औ उनका ध्यान धरता है, तिसे वे भी आप सा बना लेते हैं औ सदा विसके पास ही रहते हैं।

यों कह फिर ऊधो जी बोले कि अब तुम हरि को पुत्र कर मत जानौ, ईश्वर कर मानौ। वे अंतरजामी भक्तहितकारी प्रभु आय दरसन दे तुम्हारा मनोरथ पूरा करेंगे, तुम किसी बात की चिन्ता न करो।

महाराज, इसी रीति से अनेक अनेक प्रकार की बातें कहते कहते औ सुनते सुनते, जब सब रात बितीत भई औ चार घड़ी पिछली रही, तब नंदरायजी से ऊधोजी ने कहा कि महाराज, अब दधि मथने की बिरियाँ हुई, जो आपकी आज्ञा पाऊँ तो यमुना स्नान करि आऊँ। नंदमहर बोले—बहुत अच्छा। इतना कह वे तो वहाँ बैठे सोच बिचार करते रहे और ऊधोजी उठ झट रथ में बैठे यमुना तीर पर आये। पहले वस्त्र उतार देह शुद्ध करी, पीछे नीर

के निकट जाय, रज सिर चढ़ाय, हाथ जोड़, कालिन्दी की अति स्तुति गाय, आचमन कर जल में पैठे, औ न्हाय धोय सन्ध्या पूजा तरपन से निश्चित हो लगे जप करने। उसी समै सब ब्रज-युवतियाँ भी उठीं, औ अपना अपना घर झाड़ बुहार लीप पोत धूप दीप कर लगीं दधि मथने।

दधि कौ मथन मेघ सौ गाजै। गावें नूपुर की धुनि बाजै॥

दधि मथि कै माखन लियौ, कियौ गेह कौ काम।
तब सब मिल पानी चलीं, सुन्दरि ब्रज की बाम॥

महाराज, वे गोपियाँ श्रीकृष्ण के वियोग-मद-मतियाँ उनका ही जस गातियाँ, अपने अपने झुंड लिये, प्रीतम का ध्यान दिये बाट में प्रभु की लीला गाने लगीं।

एक कहै मुहि मिले कन्हाई। एक कहै वे भजे लुकाई॥
पाछे ते पकरी मो बाँह। वे ठाढ़े हरि बट की छाँह॥
कहत एक गो दोहत देखे। बोली एक भोरही पेखे॥
एक कहै वे धेनु चरावें। सुनहु कान दै बेनु बजावें॥
या मारग हम जाँय न माई। दानि मांगिहै कुँवर कन्हाई॥
गागरि फोरि गाँठि छोरिहै। नेक चितै कै चित्त चोरिहै॥
हैं कहूँ, दुरे दौरि आयहैं। तब हम कहाँ जान पायहैं॥
ऐसे कहत चलीं ब्रजनारी। कृष्ण बियोग बिकल तन भारी॥

———

अड़तालीसवाँ अध्याय

श्रीशुकदेव मुनि बोले—पृथ्वीनाथ, जब ऊधोजी जप कर चुके, तब नदी से निकल बस्त्र आभूषन पहन रथ में बैठ जो कालिन्दी तीर से नंदगेह की ओर चले, तों गोपी जो जल भरने को निकली थीं तिन्होंने रथ दूर से पंथ में आते देखा। देखते ही आपस में कहने लगीं कि यह रथ किसका चला आता है, इसे देख लो तब आगे पाँव बढ़ाओ। यों सुन विनमें से एक गोपी बोली कि सखी, कहीं वही कपटी अक्रूर तो न आया होय, जिसने श्रीकृष्णचन्द को ले जाय मथुरा में बसाया, और कंस को मरवाया। इतना सुन एक और उनमें से बोली—यह विश्वासघाती फिर काहे को आया, एक बेर तो हमारे जीवनमूल को ले गया, अब क्या जीव लेगा? महाराज, इसी भाँति की आपस में अनेक अनेक बातें कह,

ठाढ़ी भईं तहाँ ब्रजनारि। सिर तें गागरि धरी उतारि॥

इतने में जों रथ निकट आया तों गोपियाँ कुछ एक दूर से ऊधोजी को देखकर आपस में कहने लगीं कि सखी, यह तो कोई स्याम बरन, कँवल नैन, मुकुट सिर दिये, बनमाल हिये, पीतांबर पहरे, पीतपट ओढ़े, श्रीकृष्णचंद सा रथ में बैठा हमारी ओर देखता चला आता है। तब तिनहीं में से एक गोपी ने कहा कि सखी, यह तो कल से नंद के यहाँ आया है, ऊधो इसका नाम है, औ कृष्णचंद ने कुछ संदेसा इसके हाथ कह पठाया है।

इतनी बात के सुनतेही गोपियाँ एकांत ठौर देख, सोच संकोच छोड़, दौड़कर ऊधोजी के निकट गईं, औ हरि का हितू जान

दंडवत कर कुशल क्षेम पूछ हाथ जोड़ रथ के चारों ओर घिरके खड़ी हुईं। उनका अनुराग देख ऊधोजी भी रथ से उतर पड़े, तब सब गोपियाँ विन्हें एक पेड़ की छाया में बैठाय आप भी चारों ओर घिरके बैठीं, औ अति प्यार से कहने लगीं—

भली करी ऊधो तुम आए। समाचार माधो के लाए॥
सदा समीप कृष्ण के रहौ। उनकौ कह्यौ सँदेसौ कहौ॥
पठए मात पिता के हेत। और न काहू की सुधि लेत॥
सर्वसु दीनौं उनके हाथ। अरझे प्रान चरन के साथ॥
अपने ही स्वारथ के भये। सबही कों अब दुख दै गये॥

औ जैसे फलहीन सरवर को पंछी छोड़ जाता है, तैसे हरि हमें छोड़ गये। हमने उन्हें अपना सर्व्वस दिया, तौ भी वे हमारे न हुए। महाराज, जब प्रेम में मगन होय इसी ढब की बातें बहुत सी गोपियों ने कहीं, तब ऊधोजी उनकी प्रेम की दृढ़ता देख जों प्रनाम करने को उठा चाहते थे तोंही किसी गोपी ने एक भौंरे को फूल पर बैठता देख उसके मिस ऊधो से कहा—

अरे मधुकर! तैंने माधव के चरन कँवल का रस पिया है, तिसी से तेरा नाम मधुकर हुआ, औ कपटी का मित्र है, इसीलिये तुझे विसने अपना दूत कर भेजा है। तू हमारे चरन मत परसे, क्योंकि हम जाने हैं, जितने स्याम बरन हैं तितने सब कपटी हैं, जैसा तू है तैसेई हैं स्याम, इससे तू हमैं मत करे प्रनाम। जों तू फूल फूल का रस लेता फिरता है औ किसी का नहीं होता, तो वे भी प्रीति कर किसी के नहीं होते। ऐसे गोपी कह रही थी कि एक भौंरा और आया। विसे देख ललिता नाम गोपी बोली—

अहो भ्रमर तुम अलगे रहौ। यह तुम जाय मधुपुरी कहौ॥

जहाँ कुबजा सी पटरानी औ श्रीकृष्णचंद विराजते हैं कि एक जन्म की हम क्या कहैं, तुम्हारी तो जन्म जन्म यही चाल है। बलि राजा ने सर्वस दिया, तिसे पाताल पठाया, औ सीता सी सती को बिन अपराध घर से निकाला। जब उनकी यह दशा की तो हमारी क्या चली है। यों कह फिर सब गोपी मिल हाथ जोड़ ऊधा से कहने लगीं कि ऊधोजी, हम अनाथ हैं श्रीकृष्ण बिन, तुम अपने साथ ले चलो।

श्रीशुकदेवजी बोले—महाराज, इतना बचन गोपियों के मुख से निकलतेही ऊधोजी ने कहा—जो संदेसा श्रीकृष्णचंद ने लिख भेजा है सो मैं समझाकर कहता हूँ, तुम चित दे सुनौ। लिखा है, तुम भोग की आस छोड़ जोग करो तुम से वियोग कभी न होगा, औ कहा है, निस दिन तुम करती हो मेरा ध्यान, इससे कोई नहीं है प्रिय मेरे तुम समान।

इतना कह फिर ऊधोजी बोले—जो हैं आदि पुरुष अविनासी हरी, तिनसे तुमने प्रीति निरंतर करी। औ तिन्हें सब कोई अलख अगोचर अभेद बखाने, तिन्हें तुमने अपने कंत कर माने। पृथ्वी, पवन, पानी, तेज, आकाश का है जैसे देह में निवास, ऐसे प्रभु तुम में विराजते हैं, पर माया के गुन से न्यारे दिखाई देते हैं। उनका सुमिरन ध्यान किया करो, वे सदा अपने भक्त के बस रहते हैं, औ पास रहने से होता है ज्ञान ध्यान का नास, इस लिये हरि ने किया है दूर जाय के बास। औ मुझे यह भी श्रीकृष्ण चंद ने समझायके कहा है कि तुम्हें वेनु बजाय बन में बुलाया औ जब देखा मदन औ बिरह का प्रकाश तब हमने तुम्हारे साथ मिलकर किया था रास।

जद तुम ईश्वरता बिसराई । अंतरध्यान भए यदुराई ॥

फिर जों तुमने ज्ञान कर ध्यान हरि का मन में किया, तोंही तुम्हारे चित की भक्ति जान प्रभु ने आय दरसन दिया। महाराज, इतना बचन ऊधोजी के मुख से निकलतेही—

गोपी तबै कहैं सतराय । सुनी बात अब रह अरगाय ॥
ज्ञान जोग बुधि हमहि सुनावै । ध्यान छोड़ आकाश बतावै ॥
जिनकौ लीला में मन रहै । तिनको को नारायन कहै ॥
बालकपन तें जिन सुख दयौ । सो क्यों अलख अगोचर भयौ ॥
जो सब गुन युत रूप सरूप । सो क्यों निर्गुन होय निरूप ॥
जौ तन में प्रिय प्रान हमारे । तौ को सुनिहै बचन तिहारे ॥
एक सखी उठि कहै विचारि । ऊधो की कीजे मनुहारि ॥
इन सों सखी कछू नहि कहिये । सुनिके वचन देख मुख रहिए ॥
एक कहति अपराध न याको । यह आयो पठयो कुबजा को ॥
अब कुबजा सो जाहि सिखावै । सोई वाको गायौ गावै ॥
अबहूँ स्याम कहैं नहिं ऐसी । कही आय ब्रज में इन जैसी ॥
ऐसी बात सुने को माई । उठत सूल सुनि सही न जाई ॥
कहत भोग तजि जोग अराधो । ऐसी कैसे कहिहैं मांधो ॥
जप तप संजम नेम अचार । यह सब विधवा कौ व्यौहार ॥
जुग जुग जीवहु कुँवर कन्हाई । सीस हमारे पर सुखदाई ॥
अच्छत पति भभूत किन लाई । कहौ कहाँ की रीति चलाई ॥
हमकों नेम जोग व्रत एहा । नँदनँदन पद सदा सनेहा ॥
ऊधो तुम्हें दोष को लावै । यह सब कुबजा नाच नचावै ॥

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव मुनि बोले कि महाराज, जब गोपियों के मुख से ऐसे प्रेम सने बचन सुने, तब जोग कथा कह

के ऊधो मनहीं मन पछताय सकुचाय मौन साध सिर निवाय रह गये। फिर एक गोपी ने पूछा कहो बलभद्रजी कुशल क्षेम से हैं, औ बालापन की प्रीति विचार कभी वे भी हमारी सुधि करते हैं कि नहीं ?

यह सुन विनहीं में से किसी और गोपी ने उत्तर दिया कि सखी, तुम तो हो अहीरी गँवारि, औ मथुरा की हैं सुंदर नारि। तिनके बस हो हरि बिहार करते हैं, अब हमारी सुरत क्यौं करेंगे, जद से वहाँ जाके छाये, सखी, तद से पी भये पराये, जो पहले हम ऐसा जानतीं, तो काहे को जाने देतीं। अब पछताये कुछ हाथ नहीं आता, इससे उचित है कि सब दुख छोड़ अवध की आस कर रहिये, क्योंकि जैसे आठ महीने पृथ्वी, बन, पर्वत, मेघ की आस किये तपन सहते हैं, औ तिन्हें आय वह ठंढा करता है, तैसे हरि भी आय मिलेंगे।

एक कहति हरि कीनौं काज। बैरी मार्‍यो लीनौं राज॥
काहें कों बृंदावन आवें। राज छांड़ि क्यों गाय चरावें॥
छोड़हु सखी अवध की आस। चिंता जैहै भये निरास॥
एक त्रिया बोली अकुलाय। कृष्ण आस क्यौं छोड़ी जाय॥

बन, पर्वत औ यमुना के तीर में जहाँ जहाँ श्रीकृष्ण बलबीर ने लीला करी हैं, वही वही ठौर देख सुध आती है खरी, प्रानपति हरी की। यों कह फिर बोली—

दुख सागर यह ब्रज भयौ, नाम नाव बिच धार॥
बूड़हिं बिरह वियोग जल, कृष्ण करें कब पार॥
गोपीनाथ की क्यों सुधि गई। लाज न कछू नाम की भई॥

इतनी बात सुन ऊधोजी मनहीं मन विचारकर कहने लगे

कि धन्य है इन गोपियों को औ इनकी दृढ़ता को जो सर्बस छोड़ श्रीकृष्णचंद के ध्यान में लीन हो रही हैं। महाराज, ऊधोजी तो उनका प्रेम देख मनहीं मन सराहतेही थे कि उस काल सब गोपी उठ खड़ी हुईं औ ऊधोजी को बड़े आदर मान से अपने घर लिवाय ले गईं। उनकी प्रीति देख इन्होंने भी वहाँ जाय भोजन किया, औ विश्राम कर श्रीकृष्ण की कथा सुनाय विन्हें बहुत सुख दिया। तब सब गोपी ऊधोजी की पूजा कर, बहुत सी भेंट आगे धर, हाथ जोड़ अति विनती कर बोलीं—ऊधो जी, तुम हरि से जाय कहियो कि. नाथ आगे तो तुम बड़ी कृपा करते थे, हाथ पकड़ अपने साथ लिए फिरते थे, अब ठकुराई पाय नगरनारि कुबजा के कहे जोग लिख भेजा, हम अबला अपवित्र अब तक गुरुमुख भी नहीं हुईं, हम ज्ञान क्या जानें।

उन सों बालापन की प्रीति। जाने कहाँ जोग की रीति॥
वे हरि क्यों न जोग दे जात। यह न संदेसे की है बात॥
ऊधो यों कहियो समझाय। प्रान जात हैं राखें आय॥

महाराज, इतनी बात कह सब गोपियाँ तो हरि का ध्यान कर मगन हो रहीं औ ऊधोजी विन्हें दंडवत कर वहाँ से उठ रथ पर बैठ गोवर्धन में आए। वहाँ कई एक दिन रहे फिर वहाँ से जो चले तो जहाँ जहाँ श्रीकृष्णचंदजी ने लीला करी थी तहाँ तहाँ गये, औ दो दो चार चार दिन सब ठौर रहे।

निदान कितने एक दिवस पीछे फिर बृंदाबन में आए, औ नन्द जसोदाजी के पास जा हाथ जोड़कर बोले—आपकी प्रीति देख मैं इतने दिन ब्रज में रहा, अब आज्ञा पाऊँ तो मथुरा को जाऊँ।

इतनी बात के सुनतेही जसोदा रानी दूध दही माखन औ

बहुत सी मिठाई, घर में जाय ले आई, औ ऊधोजी को देके कहा कि यह तुम श्रीकृष्ण बलराम प्यारे को देना, औ बहन देवकी से यों कहना कि मेरे कृष्ण बलराम को भेज दे, बिरमाय न रक्खे। इतना संदेसा कह नंदरानी अति व्याकुल हो रोने लगी, तब नन्दजी बोले कि ऊधोजी हम तुमसे अधिक क्या कहैं, तुम आप चतुर, गुनवान, महाजान हो, हमारी ओर हो प्रभु से ऐसे जाय कहियो, जो वे ब्रजवासियों का दुख विचार वेग आय दरसन दें औ हमारी सुध न बिसारें।

इतना कह जब नन्दराय ने आँसू भर लिये औ जितने ब्रजबासी क्या स्त्री क्या पुरुष वहाँ खड़े थे सो भी सब लगे रोने, तब ऊधोजी तिन्हें समझाय बुझाय आसा भरोसा दे ढाढ़स बँधाय बिदा हो रोहनी को साथ ले मथुरा को चले, औ कितनी एक बेर में चले चले श्री कृष्णचंद के पास आ पहुँचे।

इन्हें देखतेही श्रीकृष्ण बलदेव उठकर मिले औ बड़े प्यार से इनकी क्षेम कुशल पूछ बृंदाबन के समाचार पूछने लगे। कहो ऊधो जी, नंद जसोदा समेत सब ब्रजवासी आनन्द से हैं, औ कभी हमारी सुरत करते हैं कि नहीं? ऊधोजी बोले—महाराज, ब्रज की महिमा औ ब्रजवासियों का प्रेम मुझसे कुछ कहा नहीं जाता, उनके तो तुम्हीं हो प्रान, निस दिन करते हैं वे तुम्हारा ही ध्यान औ ऐसी देखी गोपियों की प्रीति, जैसी होती है पूरन भजन की रीति। आपका कहा जोग का उपदेस जा सुनाया, पर मैंने भजन का भेद उन्हीं से पाया।

इतना समाचार कह ऊधोजी बोले कि दीनदयाल, मैं अधिक क्या कहूँ, आप अंतरजामी घट घट की जानते हैं, थोड़े ही में

समझिये कि ब्रज में क्या जड़ क्या चैतन्य सब आपके दरस परस बिन महादुखी हैं, केवल अवध की आस कर रहे हैं।

इतनी बात के सुनते ही जद दोनों भाई उदास हो रहे, तद ऊधो जी तो श्रीकृष्णचन्द से बिदा हो नंद जसोदा का संदेसा वसुदेव देवकी को पहुँचाय अपने घर गये, औ रोहिनीजी श्रीकृष्ण बलराम से मिल अति आनन्द कर निज मंदिर में रहीं।

उनचासवाँ अध्याय

श्रीशुकदेव मुनि बोले कि महाराज, एक दिन श्री कृष्ण बिहारी भक्तहितकारी कुबजा की प्रीति विचार, अपना बचन प्रतिपालने को ऊधो को साथ ले उसके घर गये।

जब कुबजा जान्यौ हरि आए। पाटंबर पाँवड़े बिछाए॥
अति आनंद लये उठि आगे। पूरब पुन्य पुञ्ज सब जागे॥
ऊधो कौं आसन बैठारि। मंदिर भीतर धँसे मुरारि॥

वहाँ जाय देखें तो चित्रशाला में उजला बिछौना बिछा है, उस पर एक फूलों से सँवारी अच्छी सेज बिछी है, तिसी पर हरि जो बिराजे औ कुबजा एक ओर मंदिर में जाय सुगंध उबटन लगाय, न्हाय धोय, कंघी चोटी कर, सुथरे कपड़े गहने पहर आपको नखसिख से सिंगार, पान खाय, सुगंध लगाय, ऐसे राव चाव से श्रीकृष्णचंद के निकट आई कि जैसे रति अपने पति के पास आई होय। औ लाज से घूँघट किये प्रथम मिलन का भय उर लिये, चुप चाप एक ओर खड़ी हो रही। देखते ही श्रीकृष्णचंद आनंदकंद ने उसे हाथ पकड़ अपने पास बिठाय लिया औ उसका मनोरथ पूरन किया।

तब उठि के ऊधो ढिग आए। भई लाज हँसि नैन नवाए॥

महाराज, यों कुबजा को सुख दे ऊधोजी को साथ ले श्रीकृष्णचंद फिर अपने घर आए, औ बलरामजी से कहने लगे कि भाई, हमने अक्रूरजी से कहा था कि तुम्हारा घर देखने जायँगे

सो पहले तो वहाँ चलिए, पीछे, विन्हें हस्तिनापुर को भेज वहाँ के समाचार मँगवावें।

इतना कह दोनों भाई अक्रूर के घर गये। वह प्रभु को देखते ही अति सुख पाय, प्रनाम कर, चरनरज सिर चढ़ाय, हाथ जोड़ बिनती कर बोला—कृपानाथ, आपने बड़ी कृपा की जो आय दरसन दिया, औ मेरा घर पवित्र किया। यह सुन श्रीकृष्णचंद बोले—कका इतनी बड़ाई क्यों करते हो, हम तो आपके लड़के हैं। यों कह फिर सुनाया कि कका आपके पुन्य से असुर तो सब मारे गये, पर एकही चिंता हमारे जी में है जो सुनते हैं कि पंडु बैकुंठ सिधारे, औ दुर्योधन के हाथ से पाँचों भाई हैं दुखी हमारे।

कुंती फुफू अधिक दुख पावै। तुम बिन जाय कौन समझावे॥

इतनी बात के सुनते ही अक्रूरजी ने हरि से कहा कि आप इस बात की चिंता न कीजे, मैं हस्तिनापुर जाऊँगा औ विन्हें समझाय वहाँ की सुध ले आऊँगा।

पचासवाँ अध्याय

श्रीशुकदेव मुनि बोले कि पृथीनाथ, जब ऐसे श्रीकृष्णजीने अक्रूर के मुख से सुना, तब उन्हें पंडु की सुधि लेने को बिदा किया। वे रथ पर बैठ चले चले कई एक दिन में मथुरा से हस्तिनापुर पहुँचे, औ रथ से उतर जहाँ राजा दुर्योधन अपनी सभा में सिंहासन पर बैठा था तहाँ जाय जुहार कर खड़े हुए। इन्हें देखतेही दुर्योधन सभा समेत उठकर मिला, औ अति आदर मान से अपने पास बिठाय इनकी कुशल क्षेम पूछ बोला—

नीके सूरसेन बसुदेव। नीके हैं मोहन बलदेव॥
उग्रसेन राजा किहिं हेत। नाहिन काहू की सुधि लेत॥
पुत्रहि मार करत हैं राज। तिन्हें न काहू सों है काज॥

ऐसे जब दुर्योधन ने कहा तब अक्रूर सुन चुप हो रहा औ मनहीं मन कहने लगा कि यह पापियों की सभा है, यहाँ मुझे रहना उचित नहीं, क्योंकि जो मैं रहूँगा तो वह ऐसी अनेक बातें कहैगा सो मुझसे कब सुनी जायंगी, इससे यहाँ रहना भला नहीं।

यों विचार अक्रूर जी वहाँ से उठ विदुर को साथ ले पंडु के घर गये, तहाँ जाय देखैं तो कुंती पति के सोक में महा व्याकुल हो रो रही है। उसके पास जा बैठे औ लगे समझाने कि माई, बिधना से कुछ किसी का बस नहीं चलता, औ सदा कोई अमर हो जीता भी नहीं रहता। देह धर जीव दुख सुख सहता है,

इससे मनुष को चिंता करनी उचित नहीं, क्यौंकि चिंता किये से कुछ हाथ नहीं आता, केवल जित्त को दुख देना है।

महाराज, जद ऐसे समझाय बुझाय अक्रूरजी ने कुंती से कहा, तद वह सोच समझ चुप हो रही, औ इनकी कुशल पूछ बोली—कहो अक्रूरजी, हमारे माता पिता औ भाई बसुदेवजी कुटुम्ब समेत भले हैं, औ श्रीकृष्ण बलराम कभी भीम, युधिष्टिर, अर्जुन, नकुल, सहदेव, इन अपने पाँचों भाइयों की सुध करते हैं? ये तो यहाँ दुखसमुद्र में पड़े हैं, वे इनकी रक्षा कब आय करेंगे हमसे अब तो इस अन्ध धृतराष्ट्र का दुख सहा नहीं जाता, क्योंकि वह दुर्योधन की मति से चलता है। इन पाँचों को मारने के उपाय में दिन रात रहता है। कई वेर तो विष घोल दिया सो मेरे भीमसेन ने पी लिया।

इतना कह पुनि कुंती बोलीं कि कहो अक्रूरजी, जब सब कौरव यों बैर किये रहैं, तब ये मेरे बालक किसका मुँह चहैं। औ मीच से बच कैसे होयँ सयाने, यही दुख बड़ा है हम क्या वखानें। जो हरनी झुंड से बिछड़ करती है त्रास, तों मैं भी सदा रहती हूँ उदास। जिन्होंने कंसादिक असुर संहारे, सोई हैं मेरे रखवारे।

भीम युधिष्टिर अर्जुन भाई। इनकौ दुख तुम कहियौ जाई॥

जब ऐसे दीन हो कुंती ने कहे बैन, तब सुनकर अक्रूर ने भर लिए नैन। औ समझाके कहने लगा कि माता तुम कुछ चिंता मत करो। ये जो पाँचों पुत्र तुम्हारे हैं, सो महाबली जसी होंगे। शत्रु औ दुष्टों को मार करेंगे निकन्द, इनके पक्षी हैं श्री-गोविंद। यो कह फिर अक्रूरजी बोले कि श्रीकृष्ण बलराम ने मुझे

यह कह तुम्हारे पास भेजा है कि फूफी से कहियो किसी बात से दुख न पावे, हम वेग ही तुम्हारे निकट आते हैं।

महाराज, ऐसे श्रीकृष्ण की कही बातें कह अक्रूरजी कुंती को समझाय बुझाय आसा भरोसा दे बिदा हो बिदुर को साथ ले धृतराष्ट्र के पास गये, औ उससे कहा कि तुम पुरखा होय ऐसी अनीति क्या करते हो, जो पुत्र के वस होय अपने भाई का राज-पाट ले भतीजों को दुख देते हो। यह कहाँ का धर्म है जो ऐसा अधर्म करते हो।

लोचन गये न सूझै हिये। कुल बहि जाय पाप के किये।

तुमने भले चंगे बैठे बिठाये क्यों भाई का राज लिया, औ भीम युधिष्ठिर को दुख दिया। इतनी बात के सुनतेही धृतराष्ट्र अक्रूर का हाथ पकड़ बोला कि मैं क्या करूँ, मेरा कहा कोई नहीं सुनता, ये सब अपनी अपनी मत से चलते हैं, मैं तो इनके सोंही मूरख हो रहा हूँ, इनसे इनकी बातों में कुछ नहीं बोलता, एकांत बैठ चुपचाप अपने प्रभु का भजन करता हूँ। इतनी बात जों धृतराष्ट्र ने कही तों अक्रूरजी दंडवत कर वहाँ से उठ रथ पर चढ़ हस्तिनापुर से चले चले मथुरा नगरी में आए।

उग्रसेन वसुदेव सो, कही पंडु की बात।
कुंती के सुत महा दुखी, भये छीन अति गात॥

यों उग्रसेन वसुदेवजी से हस्तिनापुर के सब समाचार यह अक्रूरजी फिर श्रीकृष्ण बलरामजी के पास जा प्रनाम कर हाथ जोड़ बोले—महाराज, मैंने हस्तिनापुर में जाय देखा, आपकी फूफी औ पाँचों भाई कौरों के हाथ से महादुखी हैं, अधिक क्या कहूँगा, आप अन्तरजामी हैं, वहाँ की अवस्था औ विपरीत तुमसे

कुछ छिपी नहीं। यों कह अक्रूरजी तो कुंती का कहा संदेसा सुनाय विदा हो अपने घर गए औ सब समाचार सुन श्रीकृष्ण बलदेव जो हैं सब देवन के देव सो लोकरीति से बैठ चिंता कर भूमि का भार उतारने का विचार करने लगे। इतनी कथा श्रीशुकदेव मुनि ने राजा परीक्षित को सुनायकर कहा कि हे पृथीनाथ, यह जो मैंने ब्रजबन मथुरा का जस गाया, सो पूर्वार्ध कहाया। अब आगे उत्तरार्ध गाऊँगा, जो द्वारकानाथ का बल पाऊँगा।

———

एक्यावनवां अध्याय

श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, जों श्रीकृष्णचंद दल समेत जरासंध को जीत कालयवन को मार मुचकुंद को तार ब्रज को तज द्वारका में जाय बसे, तों मैं सब कथा कहता हूँ; तुम सचेत हो चित्त लगाय सुनो कि राजा उग्रसेन तो राजनीति लिये मथुरा पुरी का राज करते थे, औ श्रीकृष्ण बलराम सेवक की भाँति उनकी आज्ञाकारी। इससे राजा राज प्रजा सुखी थी, पर एक कंस की रानियाँ ही अपने पति के शोक से महा दुखी थीं। न उन्हें नींद आती थी न भूख प्यास लगती थी, आठ पहर उदास रहती थीं।

एक दिन वे दोनों बहन अति चिंता कर आपस में कहने लगीं कि जैसे नृप बिना प्रजा, चंद बिन जामिनी, शोभा नहीं पाती, तैसे कंत बिन कामिनी भी शोभा नहीं पाती। अब अनाथ को यहाँ रहना भला नहीं, इससे अपने पिता के घर चल रहिये सो अच्छा। महाराज, वे दोनों रानियाँ जैसे आपस में सोच विचार रथ मँगवाय उसपर चढ़, मथुरा से चली चली मगध देश में अपने पिता के यहाँ आईं, औ जैसे श्रीकृष्ण बलरामजी ने सब असुरों समेत कंस को मारा, तैसे उन दोनों ने रो रो समाचार अपने पिता से कह सुनाया।

सुनते ही जरासंध अति क्रोध कर सभा में आया औ लगा कहने कि ऐसे बली कौन यदुकुल में उपजे, जिन्होंने सब असुरों समेत महाबली कंस को मार मेरी बेटियों को राँड़ किया। मैं

अभी अपना सब कटक ले चढ़ धाऊँ औ सब यदुबंसियों समेत मथुरा पुरी को जलाय राम कृष्ण को जीता बाँध लाऊँ, तो मेरा नाम जरासंध, नहीं तो नहीं।

इतना कह उसने तुरंतही चारों ओर के राजाओं को पत्र लिखे कि तुम अपना दल ले ले हमारे पास आओ, हम कंस का पलटा ले यदुबंसियों को निर्वंश करेंगे। जरासंध का पत्र पाते ही सब देश देश के नरेश अपना अपना दल साथ ले झट चले आये, और यहाँ जरासंध ने भी अपनी सब सेना ठीक ठाक बनाय रक्खी। निदान सब असुरदल साथ ले जरासंध ने जिस समै मगध देश से मथुरा पुरी को प्रस्थान किया तिस समैं उसके संग तेईस अक्षौहिनी थी। इक्कीस सहस्र आठ सौ सत्तर रथी, औ इतनेही गजपति, एक लाख नव सहस्र साढ़े तीन सौ पैदल, औ छःसठ सहस्र अश्वपति, यह अक्षौहिनी का प्रमाण है।

ऐसी तेईस अक्षौहिनी उसके साथ थी औ उनमें जो एक एक राक्षस जैसा बली था सो मैं कहाँ तक वर्नन करूँ। महाराज जिस काल जरासंध सब असुर सेना साथ ले धौंसा दे चला, उस काल दसों दिसा के दिगपाल लगे थर थर काँपने, औ सब देवता मारे डर के भागने, पृथ्वी न्यारीही बोझ से लगी छात सी हिलने। निदान कितने एक दिनों में चला चला जा पहुँचा औ उसने चारों ओर से मथुरा पुरी को घेर लिया, तब नगरनिवासी अति भय खाय श्रीकृष्ण के पास जा पुकारे कि महाराज, जरासन्ध ने आय चारों ओर से नगर घेरा अब क्या करें औ किधर जायँ।

इतनी बात के सुनतेही हरि कुछ सोच विचार करने लगे, इसमें बलरामजी ने आय प्रभु से कहा कि महाराज, आपने भक्तों

का दुख दूर करने के हेतु अवतार लिया है, अब अग्नितन धारन कर असुररूपी बन को जलाय, भूमि का भार उतारिये। यह सुन श्रीकृष्णचंद उनको साथ ले उग्रसेन के पास गये औ कहा कि महाराज, हमें तो लड़ने की आज्ञा दीजै, और आप सब यदुबंसियों को साथ ले गढ़ की रक्षा कीजै।

इतना कह जों मात पिता के निकट आए, तों सब नगरनिवासी घिर आए, औ लगे अति व्याकुल हो कहने कि हे कृष्ण, हे कृष्ण, अब इन असुरों के हाथ से कैसे बचें। तब हरि ने मात पिता समेत सब को भयातुर देख समझाके कहा कि तुम किसी भाँति चिन्ता मत करो। यह असुरदल जो तुम देखते हो, सो पल भर में यहाँ का यहीं बिलाय जायगा कि जैसे पानी के बलूले पानी में बिलाय जाते हैं। यों कह सबको समझाय बुझाय ढाढ़स बँधाय उनसे बिदा हो प्रभु जो आगे बढ़े तों देवताओं ने दो रथ शस्त्र भर इनके लिये भेज दिये। वे आय इनके सोंहीं खड़े हुए तब ये दोनों भाई उन दोनों रथ में बैठ लिये।

निकसे दोऊ यदुराय। पहुँचे सुदल में जाय॥

जहाँ जरासंध खड़ा था तहाँ जा निकले, देखतेही जरासन्ध श्रीकृष्णचंद से अति अभिमान कर कहने लगा—अरे तू मेरे सोंही से भाग जा मैं तुझे क्या मारूँ, तू मेरी समान का नहीं जो मैं तुझ पर शस्त्र चलाऊँ, भला बलराम को मैं देख लेता हूँ। श्रीकृष्णचंद बोले—अरे मूरख अभिमानी, तू यह क्या बकता है, जो सूरमा होते हैं सो बड़ा बोल किसी से नहीं बोलते, सबसे दीनता करते हैं, काम पड़े अपना बल दिखाते हैं, और जो अपने मुँह अपनी

बड़ाई मारते हैं सो क्या कुछ भले कहाते हैं। कहा है कि गरजता है सो बरसता नहीं, इससे बृथा बकवाद क्यों करता है।

इतनी बात के सुनतेही जरासंध ने जों क्रोध किया, तों श्रीकृष्ण बलदेव चल खड़े हुए। इनके पीछे वह भी अपनी सब सेना ले धाया औ उसने यों पुकारके कह सुनाया—अरे दुष्टो, मेरे आगे से तुम कहाँ भाग जाओगे, बहुत दिन जीते बचे। तुमने अपने मन में क्या समझा है। अब जीते न रहने पाओगे, जहाँ सब असुरों समेत कंस गया है तहांई सब यदुबंसियों समेत तुम्हें भी भेजूँगा। महाराज, ऐसा दुष्ट बचन उस असुर के मुख से निकलतेही, कितनी एक दूर जाय दोनों भाई फिर खड़े हुए। श्रीकृष्णजी ने तो सब शस्त्र लिये औ बलरामजी ने हल मूसल। जों असुरदल उनके निकट गया तों दोनों बीर ललकार के ऐसे टूटे कि जैसे हाथियों के यूथ पर सिंह टूटे, औ लगा लोहा बाजने।

उस काल मारू जो बाजता था, सो तो मेघ सा गाजता था, औ चारो ओर से राक्षसों का दल जो घिर आया था, सो दल बादल सा छाया था। औ शस्त्रों की झड़ी सी लगी थी। उसके बीच श्रीकृष्ण बलराम युद्ध करते ऐसे शोभायमान लगते थे, जैसे सघन घन में दामिनी सुहावनी लगती है। सब देवता अपने अपने बिमानों पर बैठे आकाश से देख देख प्रभु का जस गाते थे, औ उन्हींकी जीत मानते थे, और उग्रसेन समेत सब यदुबंसी अति चिन्ता कर मनही मन पछताते थे कि हमने यह क्या किया, जो श्रीकृष्ण बलराम को असुर दल में जाने दिया।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी बोले कि पृथ्वीनाथ—जब लड़ते लड़ते असुरों की बहुत सी सेना कट गई, तब बलदेवजी ने

रथ से उतर जरासंघ को बाँध लिया। इसमें श्रीकृष्णचंद्जी ने जा बलराम से कहा कि भाई, इसे जीता छोड़ दो, मारो मत, क्योंकि यह जीता जायगा तो फिर असुरों को साथ ले आवेगा, तिन्हें मार हम भूमि का भार उतारेंगे, औ जो जीता न छोड़ेंगे तो जो राक्षस भाग गये हैं सो हाथ न आवेंगे। ऐसे बलदेवजी को समझाय प्रभु ने जरासंध को छुड़वाय दिया। वह अपने विन लोगों में गया जो रन से भाग के बचे थे।

चहुँ दिस चाहि कहैं पछताय। सिगरी सेना गई बिलाय॥
भयो दुःख अति कैसे जीजै। अब घर छाड़ि तपस्या कीजै॥
मन्त्री तबै कहै समझाय। तुमसो ज्ञानी क्यों पछताय॥
कबहूँ हार जीत पुनि होइ। राज देस छोड़ें नहिं कोइ॥

क्या हुआ जो अब की लड़ाई में हारे। फिर अपना दल जोड़ लावेंगे औ सब यदुबंसियों समेत कृष्ण बलराम को स्वर्ग पठावेंगे। तुम किसी बात की चिन्ता मत करो। महाराज, ऐसे समझाय बुझाय जो असुर रन से भाग के बचे थे तिन्हें औ जरासंध को मन्त्री ने घर ले पहुँचाया, औ वह फिर वहाँ कटक जोड़ने लगा। यहाँ श्रीकृष्ण बलराम रनभूमि में देखते क्या हैं कि लोहू की नदी बह निकली है, तिसमें रथ बिना रथी नाव से बहे जाते हैं। ठौर ठौर हाथी मरे पहाड़ से पड़े दृष्ट आते हैं। उनके घावों से रक्त झरनों की भाँति झरता है तहाँ महादेवजी भूत प्रेत संग लिये अति आनन्द कर नाच नाच गाय गाय मुंडों की माला बनाय बनाय पहनते हैं। भूतनी प्रेतनी जगिनियाँ खप्परो भर भर रक्त पीती हैं, गिद्ध, गीदड़, काग लोथों पर बैठ बैठ मास खाते हैं, औ आपस में लड़ते जाते हैं।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, जितने रथ हाथी घोड़े औ राक्षस उस खेत में रहे थे तिन्हें पवन ने तो समेट इकट्ठा किया और अग्नि ने पल भर में सबको जलाय भस्म कर दिया। पंचतत्व पंचतत्व में मिल गये। उन्हें आते सबने देखा पर जाते किसी ने न देखा कि किधर गये। ऐसे असुरों को मार भूमि का भार उतार श्रीकृष्ण बलराम भक्तहितकारी उग्रसेन के पास आय दंडवत कर हाथ जोड़ बोले कि महाराज, आपके पुन्य प्रताप से असुरदल मार भगाया, अब निर्भय राज कीजे, औ प्रजा को सुख दीजे। इतना बचन इनके मुख से निकलतेही राजा उग्रसेन ने अति आनन्द मान बड़ी बधाई की औ धर्मराज करने लगे। इसमें कितने एक दिन पीछे फिर जरासंध उतनीही सेना ले चढ़ि आया, औ श्रीकृष्ण बलदेवजी ने पुनि त्यौंही मार भगाया। ऐसे तेईस तेईस अक्षौहिनी ले जरासंध सत्रह बेर चढ़ि आया, औ प्रभु ने मार मार हटाया।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव मुनि ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज, इस बीच नारद मुनि जी के जो कुछ जी में आई तो ये एकाएकी उठकर कालयवन के यहाँ गये। इन्हें देखतेही वह सभा समेत उठ खड़ा हुआ, औ उसने दंडवत कर, कर जोड़ पूछा कि महाराज, आपका आना यहाँ कैसे भया।

सुनिकै नारद कहै बिचारि। मथुरा में बलभद्र मुरारि।
तों बिन तिन्हैं हतै नहिं कोइ। जरासंध सों कछु नहि होइ॥

तू है अमर अति बली, बालक हैं बलदेव औ हरी। यों कह फिर नारदजी बोले कि जिसे तू मेघबरन, कँवलनैन, अति सुंदर बदन, पीतांबर पहरे, पीतपट ओढ़े देखे तिसका तू पीछा बिन

मारे मत छोड़ियो। इतना कह नारद मुनि तो चले गये औ कालयवन अपना दल जोड़ने लगा। इसमें कितने एक दिन बीच उसने तीन कड़ोड़ महा मलेच्छ अति भयावने इकट्ठे किये। ऐसे कि जिनके मोटे भुज, गले, बड़े दाँत, मैले भेस, भूरे केस, नैन लाल घूँघची से, तिन्हें साथ ले डंका दे मथुरा पुरी पर चढ़ि आया, औ उसे चारो ओर से घेर लिया। इस काल श्रीकृष्णचंद जी ने उसका व्योहार देख अपने जी में बिचारा कि अब यहाँ रहना भला नहीं क्यौंकि आज यह चढ़ आया है, औ कल को जरासंध भी चढ़ आवे तो प्रजा दुख पावेगी। इससे उत्तम यही है कि यहाँ न रहिए, सब समेत अनत जाय बसिये। महाराज, हरि ने यौं बिचार कर बिस्वकर्मा को बुलाय समझाय बुझायके कहा कि तू अभी जाके समुद्र के बीच एक नगर बनाव, ऐसा जिसमें सब यदुबंसी सुख से रहैं, पर वे यह भेद न जानें कि ये हमारे घर नहीं औ पल भर में सबको वहाँ ले पहुँचाव।

इतनी बात के सुनतेही जा बिस्वकर्मा ने समुद्र के बीच सुदरसन के ऊपर, बारह योजन का नगर जैसा श्रीकृष्णजी ने कहा था तैसाही रात भर में बनाय, उसका नाम द्वारका रख, आ, हरि से कहा। फिर प्रभु ने उसे आज्ञा दी कि इसी समै तू सब यदुबंसियों को वहाँ ऐसे पहुँचाय दे कि कोई यह भेद न जाने जो हम कहाँ आए औ कौन ले आया।

इतना बचन प्रभु के मुख से जों निकला तों रातों रातही देवकी वसुदेव समेत बिस्वकर्मा ने सब यदुबंसियों को ले पहुँचाया, औ श्रीकृष्ण बलराम भी वहाँ पधारे। इस बीच समुद्र की लहर का शब्द सुन सब यदुबंसी चौंक पड़े औ अति अचरज कर

आपस में कहने लगे कि मथुरा में समुद्र कहाँ से आया, यह भेद कुछ जाना नहीं जाता।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा पृथ्वीनाथ, ऐसे सब यदुबंसियों को द्वारका में बसाय श्रीकृष्णचंद-जी ने बलदेवजी से कहा कि भाई अब चलके प्रजा की रक्षा कीजे औ कालयवन का बध। इतना कह दोनों भाई वहाँ से चल ब्रज-मंडल में आए।

बावनवाँ अध्याय

श्रीशुकदेव मुनि बोले कि महाराज, व्रजमंडल में आतेही श्रीकृष्णचंद ने बलरामजी को तो मथुरा में छोड़ा आप रूप-सागर, जगतउजागर, पीतांबर पहने, पीतपट ओढ़े, सब सिंगार किये, कालयवन के दल में जाय उसके सन्मुख हो निकले। वह इन्हें देखतेही अपने मन में कहने लगा कि हो न हो यही कृष्ण है, नारद मुनि ने जो चिह्न बताते थे सो सब इसमें पाये जाते हैं। इन्होंने कंसादि असुर मारे, जरासंध की सब सेना हनी। ऐसे मनही मना विचार—

कालयवन यों कहै पुकारि। काहे भागे जात मुरारि॥
आय पर्‌यौ अब मोसों काम। ठाढ़े रहौ करौ संग्राम॥
जरासंध हों नाहीं कंस। यादवकुल कौ करौं विध्वंस॥

हे राजा, यों कह कालयवन अति अभिमान कर अपनी सब सेना को छोड़ अकेला श्रीकृष्णचंद के पीछे धाया, पर उस मूरख ने प्रभु का भेद न पाया। आगे आगे तो हरि भाजे जाते थे औ एक हाथ के अन्तर से पीछे पीछे वह दौड़ा जाता था। निदान भागते भागते जब अनेक दूर निकल गये तब प्रभु एक पहाड़ की गुफा में बड़ गये, वहां जा देखें तो एक पुरुष सोया पड़ा है। ये झट अपना पीतांबर उसे उढ़ाय आप अलग एक ओर छिप रहे। पीछे से कालयवन भी दौड़ता हाँफता उस अति अँधेरे कंदरा में जा पहुँचा, औ पीतांबर ओढ़े विस पुरुष को सोता देख इसने अपने जी में जाना कि यह कृष्ण ही छलकर सो रहा है।

महाराज, ऐसे मनही मन विचार क्रोध कर उस सोते हुए को एक लात मार कालयवन बोला—अरे कपटी, क्या मिसकर साधु की भाँति निचिंताई से सो रहा है, उठ, मैं तुझे अभी मारता हूँ। यों कह इसने उसके ऊपर से पीतांबर झटक लिया। वह नींद से चौंक पड़ा और जो विसने इसकी ओर क्रोध कर देखा तो यह जल बल भस्म हो गया। इतनी बात सुनते राजा परीक्षित ने कहा—

यह शुकदेव कहौ समझाय। को वह रह्यौ कंदरा जाय॥
ताकी दृष्ट भस्म क्यौं भयौ। काने वाहि महा बर दयौ॥

श्रीशुकदेव मुनि बोले पृथीनाथ, इक्ष्वाकुवंसी क्षत्री मानधाता का बेटा मुचकुन्द अतिबली महाप्रतापी जिसका अरिदल दलन जस छाय रहा नौखंड, एक समै सब देवता असुरों के सताये निपट घबराये मुचकुन्द के पास आये, औ अति दीनता कर उन्होंने कहा—महाराज, असुर बहुत बढ़े, अब तिनके हाथ से बच नहीं सकते, बेग हमारी रक्षा करो। यह रीति परंपरा से चली आई है कि जब जब सुर मुनि ऋषि प्रबल हुए हैं, तब तब उनकी सहायता क्षत्रियों ने करी है।

इतनी बात के सुनते ही मुचकुन्द उनके साथ हो लिया, औ जाके असुरों से युद्ध करने लगा। इसमें लड़ते लड़ते कितने ही जुग बीत गये तब देवताओं ने मुचकुन्द से कहा कि महाराज, आपने हमारे लिये बहुत श्रम किया अब कहीं बैठ बिश्राम लीजिये औ देह को सुख दीजिये।

बहुत दिननि कीनौ संग्राम। गयौ कुटुम्ब सहित धन धाम॥
रह्यौ न कोऊ तहाँ तिहारौ। ताते अब जिन घर पग धारौ॥

और जहाँ तुम्हारा मन माने तहाँ जाओ। यह सुन मुचकुन्द

ने देवताओं से कहा—कृपानाथ, मुझे कहीं कृपा कर ऐसी एकान्त ठौर बताइये कि जहाँ जाय मैं निचंताई से सोऊँ औ कोई न जगावे। इतनी बात के सुनते ही प्रसन्न हो देवताओं ने मुचकुंद से कहा कि महाराज, आप धौलागिरि पर्वत की कन्दरा में जाय सयन कीजिये, वहाँ तुम्हें कोई न जगावेगा औ जो कोई जाने अनजाने वहाँ जाके तुम्हें जगावेगा, तो वह देखते ही तुम्हारी दृष्ट से जल बल राख हो जावेगा।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी ने राजा से कहा कि महाराज ऐसे देवताओं से बर पाय मुचकुन्द विस गुफा में सो रहा था। इससे उसकी दृष्टि पड़तेही कालयवन जखकर छार हो गया। आगे करुनानिधान कान्ह भक्तहितकारी ने मेघबरन, चंदमुख, कँवलनैन, चतुर्भुज हो, शंख, चक्र, गदा, पद्म लिये, मोर मुकुट, मकराकृत कुंडल, बनमाला औ पीताम्बर पहरे मुचकुन्द को दरसन दिया। प्रभु का स्वरूप देखतेही वह अष्टांग प्रनाम कर खड़ा हो हाथ जोड़ बोला कि कृपानाथ, जैसे आपने इस महा अँधेरी कन्दरा में आय उजाला कर तम दूर किया, तैसे दया कर अपना नाम भेद बताय मेरे मन का भी भरम दूर कीजे।

श्रीकृष्णचंद बोले कि मेरे तो जन्म कर्म और गुन हैं घने, वे किसी भाँति गने न जायँ, कोई कितना ही गिने। पर मैं इस जन्म का भेद कहता हूँ सो सुनौ अब के वसुदेव के यहाँ जन्म लिया इससे बासुदेव मेरा नाम हुआ औ मथुरा पुरी में सब असुरों समेत कंस को मैंनेही मार भूमि का भार उतारा, औ सत्रह बेर तेईस तेईस अक्षौहिनी सेना ले जरासन्ध युद्ध करने को चढ़ि आया, सो भी मुझसे हारा और यह कालयवन तीन कड़ोड़

म्लेच्छ की भीड़ भाड़ ले लड़ने को आया था सो तुम्हारी दृष्ट से जल मरा। इतनी बात प्रभु के मुख से निकलते ही सुनकर मुचकुंद को ज्ञान हुआ तो बोला कि महाराज आपकी माया अति प्रबल है, उसने सारे संसार को मोहा है, इसी से किसीकी कुछ सुध बुद्धि ठिकाने नहीं रहती।

करत कर्म सब सुख के हेत। ताते भारी दुख सहि लेत॥

चुभे हाड़ ज्यौं स्वान मुख, रुधिर चचोरे आप।

जानत ताही तें चुवत, सुख माने संताप॥

और महाराज, जो इस संसार में आया है सो गृहरूपी अंध-कूप से बिन आपकी कृपा निकल नहीं सकता, इससे मुझे भी चिंता है कि मैं कैसे गृहरूप कूप से निकलूँगा। श्रीकृष्णजी बोले—सुन मुचकुन्द बात तो ऐसे ही है, जैसे तूने कही, पर मैं तेरे तरने का उपाय बता देता हूँ सो तू कर। तैंने राज पाय, भूमि, धन, स्त्री के लिये अधिक अधर्म किये हैं सो बिन तप किये न छूटेंगे, इससे उत्तर दिस में जाय तू तपस्या कर। यह अपनी देह छोड़ फिर ऋषि के घर जन्म लेगा, तब तू मुक्ति पदारथ पावेगा। महाराज, इतनी बात जों मुचकुन्द ने सुनी तों जाना कि अब कलियुग आया। यह समझ प्रभु से विदा हो दण्डवत कर, परिक्रमा दे मुचकुन्द तो बद्रीनाथ को गया, और श्रीकृष्णचंदजी ने मथुरा में आय बलरामजी से कहा—

कालयवन कौ कियौ निकंद। बद्री दिस पठयौ मुचकुन्द।
कालयवन की सेना घनी। तिन घेरी मथुरा आपनी।
आवहु तहाँ मलेछन मारैं। सकल भूमि कौ भार उतारैं।

ऐसे कह हलधर को साथ ले श्रीकृष्णचंद मथुरा पुर से निकल

वहाँ आए जहाँ कालयवन का कटक खड़ा था, औ आतेही दोनों उनसे युद्ध करने लगे। निदान लड़ते लड़ते जब म्लेच्छ की सेना प्रभु ने सब मारी तब बलदेवजी से कहा कि भाई, अब मथुरा की सब सम्पति ले द्वारका को भेज दीजे। बलरामजी बोले—बहुत अच्छा। तब श्रीकृष्णचंद ने मथुरा का सब धन निकलवाय भैंसों, छकड़ों, ऊंटों, हाथियों पर लदवाय द्वारका को भेज दिया। इस बीच फिर जरासन्ध तेईसही अक्षौहिनी सेना ले मथुरा पुरी पर चढ़ि आया, तब श्रीकृष्ण बलराम अति घबरायके निकले औ उसके सनमुख जा दिखाई दे विसके मन का संताप मिटाने को भाग चले, तद मन्त्री ने जरासन्ध से कहा कि महाराज, आपके प्रताप के आगे ऐसा कौन बली है जो ठहरे, देखो वे दोनों भाई कृष्ण बलराम, छोड़के सब धन धाम, लेके अपना प्रान, तुम्हारे त्रास के मारे नंगे पाओं भागे चले जाते हैं। इतनी बात मन्त्री से सुन जरासन्ध भी यों पुकारकर कहता हुआ सेना ले उनके पीछे दौड़ा।

काहे डर के भागे जात। ठाढ़े रहौ करौ कछु बात॥
परत उठत कंपत क्यौं भारी। आई है ढिग मीच तिहारी॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव मुनि बोले कि पृथीनाथ, जब श्रीकृष्ण औ बलदेवजी ने भाग के लोक रीति दिखाई, तब जरासन्ध के मन से पिछला सब शोक गया औ अति प्रसन्न हुआ, ऐसा कि जिसका कुछ बरनन नहीं किया जाता। आगे श्रीकृष्ण बलराम भागते भागते एक गौतम नाम पर्बत, ग्यारह जोजन ऊँचा था, तिसपर चढ़ गये और उसकी चोटी पर जाय खड़े भये।

देख जरासन्ध कहै पुकारि। शिखर चढ़े बलभद्र मुरारि॥
अब किम हमसों जायँ पलाय। या पर्बत कों देहु जलाय॥

इतना वचन जरासन्ध के मुख से निकलते ही सब असुरों ने उस पहाड़ को जा घेरा और नगर नगर गाँव गाँव से काठ कबाड़ लाय लाय उसके चारो ओर चुन दिया, तिसपर गड़गूदड़ घी तेल से भिंगो डालकर आग लगा दी। जब वह आग पर्बत की चोटी तक लहकी तब उन दोनों भाइयों ने वहाँ से इस भाँति द्वारका की बाट ली कि किसी ने उन्हें जाते भी न देखा, और पहाड़ जलकर भस्म हो गया। उस काल जरासन्ध श्रीकृष्ण बलराम को उस पर्वत के संग जल मरा जान, अति सुख मान, सब दल साथ ले, मथुरापुरी में आया, और वहाँ का राज ले नगर में ढँढोरा दे उसने अपना थाना बैठाया। जितने उग्रसेन बसुदेव के पुराने मंदिर थे सो सब ढवाए, और उसने आप अपने नये बनवाए।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी ने राजा से कहा कि महाराज इस रीति से जरासंध को धोखा दे श्रीकृष्ण बलरामजी तो द्वारका में जाय बसे, और जरासंध भी मथुरा नगरी से चल सब सेना ले अति आनंद करता निसंक हो अपने घर आया।

तिरपनवाँ अध्याय

श्रीशुकदेव मुनि बोले कि महाराज, अब आगे कथा सुनिये कि जब कालयवन को मार मुचकुंद को तार, जरासंध को धोखा दे बलदेवजी को साथ ले, श्रीकृष्णचंद आनंदकंद जों द्वारका में गये तों सब यदुबंसियो के जी में जी आया, औ सारे नगर में सुख छाया। सब चैन आनंद से पुरबासी रहने लगे। इसमें कितने एक दिन पीछे एक दिन कई एक यदुबंसियों ने राजा उग्रसेन से जा कहा कि महाराज, अब बलरामजी का कहीं विवाह किया चाहिये, क्योंकि ये सामर्थ हुए। इतनी बात के सुनतेही राजा उग्रसेन ने एक ब्राह्मण को बुलाय अति समझाय बुझायके कहा कि देवता, तुम कहीं जाकर अच्छा कुल घर देख बलरामजी की सगाई कर आओ। इतना कह रोली, अक्षत, रुपया, नारियल मँगवा उग्रसेनजी ने उस ब्राह्मन को तिलक कर रुपया नारियल दे बिदा किया। वह चलाचला आनर्त देस में राजा रेवत के यहाँ गया और उसकी कन्या रेवती से बलरामजी की सगाई कर लग्न ठहराय उसके ब्राह्मन के हाथ टीका लिवाय, द्वारका में राजा उग्रसेन के पास ले आया, और उसने वहाँ का सब व्यौरा कह सुनाया। सुनतेही राजा उग्रसेन ने अति प्रसन्न हो उस ब्राह्मन को बुलाय, जो टीका ले आया था, मंगलाचार करवाय टीका लिया, और उसे बहुत सा धन दे बिदा किया। पीछे आप सब यदुबंसियों को साथ ले बड़ी धूमधाम से आनर्त देस में जाय बलरामजी का ब्याह कर लाए।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव मुनि ने राजा से कहा कि पृथ्वीनाथ इस रीति से तो सब यदुबंसी बलदेवजी का व्याह कर लाए, और श्रीकृष्णचंद्रजी आपही भाई को साथ ले कुंडलपुर में जाय, भीष्मक नरेस की बेटी रुक्मिनी, सिसुपाल की माँग को राक्षसों से युद्ध कर छीन लाए। उसे घर में लाय व्याह लिया।

यह सुन राजा परीक्षित ने श्रीशुकदेवजी से पूछा कि कृपा-सिंधु, भीष्मकसुता रुक्मिनी को श्रीकृष्णचंद कुँडलपुर में जाय असुरों को मार किस रीति से लाए, सो तुम मुझे समझाकर कहो। श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, आप मन लगाय सुनिये मैं सब भेद वहाँ का समझाकर कहता हूँ कि विदर्भ देश में कुंडलपुर नाम एक नगर तहाँ भीष्मक नाम नरेस, जिसका जस छाय रहा चहुँ देस। उनके घर में जाय श्रीसीताजी ने औतार लिया। कन्या के होतेही राजा भीष्मक ने ज्योतिषियों को बुलाय भेजा। जिन्होंने आय लग्न साध उस लड़की का नाम रुक्मिनी धरकर कहा कि महाराज, हमारे विचार में ऐसा आता है कि यह कन्या अति सुशील सुभाव, रूपनिधान, गुनो में लक्ष्मी समान होगी और आदिपुरुष से व्याही जायगी।

इतना बचन ज्योतिषियों के मुख से निकलते ही राजा भीष्मक ने अति सुख मान बड़ा आनंद किया औ बहुत सा कुछ ब्राह्मनों को दिया। आगे वह लड़की चंद्रकला की भाँति दिन दिन बढ़ने लगी, और बाललीला कर कर मात पिता को सुख देने। इसमें कुछ बड़ी हुई तो लगी सखी सहेलियों के साथ अनेक अनेक प्रकार के अनूठे अनूठे खेल खेलने। एक दिन वह मृगनैनी, पिक-बैनी, चंपकवदनी, चंद्रमुखी सखियों के संग आँखमिचौली खेलने

लगी, तो खेल समैं सब सखियाँ उसे कहने लगीं कि रुक्मिनी, तू हमारा खेल खोने को आई है, क्योंकि जहाँ तू हमारे साथ अँधेरे में छिपती है तहाँ तेरे मुखचंद की जोति से चाँदना हो जाता है इससे हम छिप नहीं सकतीं। यह सुन वह हँसकर चुप हो रही।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी ने कहा कि महाराज, इसी भाँति वह सखियों के संग खेलती थी औ दिन दिन छबि उसकी दूनी होती थी कि इस बीच एक दिन नारदजी कुंडलपुर में आए, औ रुक्मिनी को देख, श्रीकृष्णचंद के पास द्वारका में जाय उन्होंने कहा कि महाराज, कुंडलपुर में राजा भीष्मक के घर एक कन्या, रूप, गुन, शील की खान, लक्ष्मी की समान जन्मी है सो तुम्हारे योग्य है। यह भेद जब नारद मुनि से सुन पाया, तभी से रात दिन हरि ने अपना मन उसपर लगाया। महाराज, इस रीति करके तो श्रीकृष्णचंद ने रुक्मिनी का नाम गुन सुना, और जैसे रुक्मिनी ने प्रभु का नाम औ जस सुना सो कहता हूँ कि एक समैं देस देस के कितने एक जाचकों ने जाय कुंडलपुर में श्रीकृष्णचंद का जस गाय जैसे प्रभु ने मथुरा में जन्म लिया, औ गोकुल बृंदावन में जाय ग्वालबालों के संग मिल बालचरित्र किया, और असुरों को मार भूमि का भार उतार यदुबंसियों को सुख दिया था तैसेही गाय सुनाया। हरि के चरित्र सुनतेही सब नगरनिवासी अति आश्चर्य कर आपस में कहने लगे कि जिनकी लीला हमने कानों सुनी तिन्हें कब नैनों देखेंगे। इस बीच जाचक किसी ढब से राजा भीष्मक की सभा में जाय प्रभु के चरित्र और गुन गाने लगे। उस काल —

चढ़ी अटा रुक्मिनी सुंदरी । हरिचरित्र धुन श्रवननि परी ॥
अचरज करै भूलि मन रहै । फेर उझककर देखनि चहै ॥
सुनकै कुंवरि रही मन लाय । प्रेमलता उर उपजी आय ॥
भई मगन बिहवल सुंदरी । बाकी सुध बुध हरिगुन हरी ॥

यों कह श्रीशुकदेवजी बोले कि पृथ्वीनाथ, इस भाँति श्रीरुक्मिनी जी ने प्रभु का जस औ नाम सुना, तो तिसी दिन से रात दिन आठ पहर चौंसठ घड़ी सोते, जागते, बैठे, खड़े, चलते फिरते, खाते, पीते, खेलते तिन्हींका ध्यान किये रहे, और गुन गाया करे। नित भोरही उठे, स्नान कर मट्टी की गौर बनाय, रोली, अक्षत, पुष्प चढ़ाय, धूप, दीप, नैवेद कर, मनाय, हाथ जोड़, सिर नाय उसके आगे कहा करे।

मो पर गौरी कृपा तुम करौ । यदुपति पति दे मम दुख हरौ ॥

इसी रीति से सदा रुक्मिनी रहने लगी। एक दिन सखियों के संग खेलती थी कि राजा भीष्मक उसे देख अपने मन में चिंता कर कहने लगा कि अब यह हुई ब्याहन जोग, इसे शीघ्र कहीं न दीजे तो हँसेंगे लोग। कहा है कि जिसके घर में कन्या बड़ी होय तिसका दान, पुन्य, जप, तप करना वृथा है, क्योंकि किये से तब तक कुछ धर्म नहीं होता, जब तक कन्या के ऋन से न उत्तरन होय। यों बिचार राजा भीष्मक अपनी सभा में सब मंत्री औ कुटुम्ब के लोगों को बुलाय बोले—भाइयो, कन्या ब्याहन जोग हुई, इसके लिये कुलवान, गुनखान, रूपनिधान, शीलवान, कहीं बर ढूँढ़ा चाहिये।

इतनी बात के सुनते ही तिन लोगों ने अनेक अनेक देशों के नरेसों के कुछ, गुन, रूप औ पराक्रम कह सुनाए पर राजा

भीष्मक के चित्त में किसी की बात कुछ न आई। तब उनका बड़ा बेटा, जिसका नाम रुक्म, सो कहने लगा कि पिता, नगर चंदेरी* का राजा सिसुपाल अति बलवान है और सब भाँति से हमारी समान। तिससे रुक्मिनी की सगाई वहाँ कीजे औ जगत् में जस लीजे। महाराज, जब उसकी भी बात राजा ने सुनी अनसुनी की तब तो रुक्मकेश नाम उनका छोटा लड़का बोला—

रुक्मिनी पिता कृष्ण को दीजै। बसुदेव सों सगाई कीजै॥
यह सुनि भीष्मक हरषे गात। कही पूत तैं नीकी बात॥
तू बालक सबसों अति ज्ञानी। तेरी बात भली हम मानी॥
कहा है—

छोटे बड़ेनि पूछ के, कीजै मन परतीत।
सार बचन गह लीजिये, याही जग की रीति॥

ऐसे कह फिर राजा भीष्मक बोले—यह तो रुक्मकेश ने भली बात कही। यदुबंसियों में राजा सूरसेन बड़े जसी और प्रतापी हुए, तिनहीं के पुत्र बसुदेवजी हैं, सो कैसे हैं, कि जिनके घर में आदिपुरुष अविनाशी सकल देवन के देव श्रीकृष्णचंद्जी ने जन्म ले महाबली कंसादिक राक्षसों को मारा औ भूमि का भार उतार यदुकुल को उजागर किया और सब यदुबंसियों समेत प्रजा को सुख दिया। ऐसे जो द्वारकानाथ श्रीकृष्णचंद्जी को रुक्मिनी दें, तो जगत में जस औ बड़ाई लें। इतनी बात के

---

* (ख) प्रति में "चेदि" पाठ है। "चेदि" एक राज्य का नाम है और चँदेरी उस राज्य का मुख्य नगर है। अतएव चेदि लिखना अधिक उपयुक्त होता पर ग्रंथकार ने चँदेरी का प्रयोग किया है इस लिये वह ज्यों का त्यों रहने दिया गया है।

सुनतेही सब सभा के लोग अति प्रसन्न हो बोले कि महाराज, यह तो तुमने भली बिचारी। ऐसा वर घर और कहीं न मिलेगा, इससे उत्तम यही है कि श्रीकृष्णचंदही को रुक्मिनी ब्याह दीजे। महाराज, जब सब सभा के लोगों ने यों कहा तब राजा भीष्मक का बड़ा बेटा जिसका नाम रुक्म, सो सुन निपट झुँझलायके बोला-

समझ न बोलत महा गँवार। जानत नहीं कृष्ण ब्यौहार॥
सोरह बरस नंद के रह्यौ। तब अहीर सब काहू कह्यौ॥
कामरि ओढ़ी, गाय चराई। बरहे बैठि छाक तिन खाई॥

वह तो गँवार ग्वाल है, विसकी जात पाँत का क्या ठिकाना, और जिसके माँ बापही का भेद नहीं जाना जाता, उसे हम पुत्र किसका कहें। कोई नंद गोप का जानता है, कोई बसुदेव का कर मानता है, पर आज तक यह भेद किसी ने नहीं पाया कि कृष्ण किसका बेटा है। इसी से जो जिसके मन में आता है सो गाता है। हम राजा, हमें सब कोई जानता मानता है और यदुंबंसी राजा कब भये। क्या हुआ जो थोड़े दिनों से बलकर उन्होंने बड़ाई पाई, पहला कलंक तो अब न छूटेगा। वह उग्रसेन का चाकर कहाता है, विससे सगाई कर क्या हम कुछ संसार में जस पावेंगे। कहा है ब्याह, बैर और प्रीति समान से करिये तो शोभा पाइये, और जो कृष्ण को देंगे तो लोग कहेंगे ग्वाल का सारा तिससे सच जायगा नाम औ जस हमारा।

महाराज, यों कह फिर रुक्म बोला कि नगर चंदेरी का राजा सिसुपाल बड़ा बली औ प्रतापी है, उसके डर से सब थरथर काँपते हैं, और परंपरा से उसके घर में राजगादी चली आती है। इससे अब उत्ताम यही है कि रुक्मिनी उसी को दीजे, और

मेरे आगे फेर कृष्ण का नाम भी न लीजे। इतनी बात के सुनतेही सब सभा के लोग मारे डर के मनही मन अछता पछता के चुप हो रहे, और राजा भीष्मक भी कुछ न बोला। इसमें रुक्म ने जोतिषी को बोलाय शुभ दिन लग्न ठहराय, एक ब्राह्मन के हाथ राजा सिसुपाल के यहाँ टीका भेज दिया। वह ब्राह्मन टीका लिये चला चला नगर चंदेरी में जाय राजा सिसुपाल की सभा में पहुँचा। देखतेही राजा ने प्रनाम कर जब ब्राह्मन से पूछा—कहो देवता, आपका आना कहाँ से हुआ और यहाँ किस मनोरथ के लिये आए? तब तो उस विप्र ने असीस दे अपने जाने का सब व्यौरा कहा। सुनतेही प्रसन्न हो राजा सिसुपाल ने अपना पुरोहित बुलाय टीका लिया, औ विस ब्राह्मन को बहुत सा कुछ दे बिदा किया पीछे जरासंघ आदि सब देस देस के नरेसों को नोत बुलाय, वे अपना दल ले ले आए, तब यह भी अपना सब कटक ले ब्याहन चढ़ा। उस ब्राह्मन ने आ राजा भीष्मक से कहा जो टीका लेगया था, कि महाराज, मैं राजा सिसुपाल को टीका दे आया, वह बड़ी धूमधाम से बरात ले ब्याहन को आता है आप अपना कार्य कीजे।

यह सुन राजा भीष्मक पहले तो निपट उदास हुए, पीछे कुछ सोच समझ मन्दिर में जाय उन्होंने पटरानी से कहा। वह सुनकर लगी मंगलामुखी औ कुटुंब की नारियों को बुलवाय, मंगलाचार करवाय ब्याह की सब रीति भाँति करने। फिर राजा ने बाहर आ, प्रधान औ मन्त्रियों को आज्ञा दी कि कन्या के विवाह में हमें जो जो वस्तु चाहिए सो सो सब इकट्ठी करो। राजा की आज्ञा पातेही मन्त्री औ प्रधानों ने सब वस्तु बात की

बात में बनवाय मँगवाय लाय धरी। लोगों ने देखा सुना तो यह चर्चा नगर में फैली कि रुक्मिनी का विवाह श्रीकृष्णचंद से होता था सो दुष्ट रुक्म ने न होने दिया, अब सिसुपाल से होगा।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा कि पृथीनाथ, नगर में तो घर घर यह बात हो रही थी औ राज-मंदिर में नारियाँ गाय बजायके रीति भाँति करती थीं, ब्राह्मन वेद पढ़ पढ़ टेहले करवाते थे, ठौर ठौर दुन्दुभी बाजते थे, बार बार सपल्लव केले के खंभ गाड़ गाड़, सोने के कलस भर भर लोग धरते थे, औ तोरण बंदनवारें बाँधते थे और एक ओर नगरनिवासी न्यारेही, हाट, बाट, चौहटे, झाड़, बुहार पट से पाटते थे। इस भाँति घर और बाहर में धूम मच रही थी कि उसी समै दो चार सखियों ने जा रुक्मिनी से कहा कि—

तोहि रुक्म सिसुपालहि दई। अब तू रुक्मिनि रानी भई॥
बोली सोच नायकर सीस। मन बच मेरे पन जगदीस॥

इतना कह रुक्मिनी ने अति चिन्ता कर एक ब्राह्मन को बुलाय, हाथ जोड़ उसकी बहुत सी बिनती औ बड़ाई कर, अपना मनोरथ उसे सब सुनायके कहा कि महाराज, मेरा संदेसा द्वारका ले जाओ और द्वारकानाथ को सुनाय उन्हें साथ कर ले आओ, तो मैं तुम्हारा बड़ा गुन मानूँगी औ यह जानूँगी कि तुमने ही दया कर मुझे श्रीकृष्ण वर दिया।

इतनी बात के सुनतेही वह ब्राह्मन बोला—अच्छा तुम संदेसा कहो मैं ले जाऊँगा औ श्रीकृष्णचंद को सुनाऊँगा। कृपानाथ हैं जो कृपा कर मेरे संग आवेंगे तो ले आऊँगा। इतना वचन ज्यों ब्राह्मन के मुख से निकला, त्योंही रुक्मिनीजी ने एक पाती

प्रेमरंगराती लिख उसके हाथ दी और कहा कि श्रीकृष्णचंद आनंद कंद को पाती दे, मेरी ओर से कहियो कि उस दासी ने कर जोड़ अति बिनती कर कहा है, जो आप अंतरजामी हैं, घट घट की जानते हैं, अधिक क्या कहूँगी। मैंने तुम्हारी सरन ली है, अब मेरी लाज तुम्हें है, जिसमें रहै सो कीजे, और इस दासी को आय वेग दरसन दीजे।

महाराज, ऐसे कह सुन जब रुक्मिनीजी ने उस ब्राह्मन को बिदा किया, तब वह प्रभु का ध्यान कर नाम लेता द्वारका को चला और हरि इच्छा से बात कहते जा पहुँचा। वहाँ जाय देखे तो समुद्र के बीच वह पुरी है, जिसके चहुँ ओर बड़े बड़े पर्वत औ बन उपवन शोभा दे रहे हैं, तिनमें भाँति भाँति के पशु पक्षी बोल रहे हैं औ निरमल जल भरे सुथरे सरोवर, उनमें कँवल डहडहाय रहे, विनपर भौंरों के झुंड के झुंड गूँज रहे। और तीर पै हँस सारस आदि पक्षी कलोलें कर रहे। कोसों तक अनेक अनेक प्रकार के फल फूलों की बाड़ियाँ चली गई हैं, तिनकी बाड़ों पर पनवाड़ियाँ लहलहा रही हैं। बावड़ी, इंदारों पै खड़े मीठे सुरों से गाय गाय माली रँहट परोहे चलाय चलाय ऊँचे नीचे नीर सींच रहे हैं, और पनघटों पर पनहारियों के लट्ठ के लट्ठ लगे हुए हैं।

यह छवि निरख हरष, वह ब्राह्मन जों आगे बढ़ा तों देखता क्या है कि नगर के चारों ओर अति ऊँचा कोट, उसमें चार फाटक, तिनमें कंचनखचित जड़ाऊ किवाड़ लगे हुए हैं औ पुरी के भीतर चाँदी सोने के मनिमय पचखने, सतखने मंदिर, ऊँचे ऐसे कि आकाश से बातें करें, जगमगाय रहे हैं। तिनके कलस

कलसियाँ बिजली सी चमकती हैं, बरन बरन की ध्वजा पताका फहराय रही हैं, खिड़की, झरोखों, मोखों, जालियों से सुगंध की लपटें आय रही हैं, द्वार द्वार सपल्लव केले के खंभ औ कंचन कलस भरे धरे हैं; तोरन बंदनवारे बँधी हुई हैं, औ घर घर आनंद के बाजन बाज रहे हैं, ठौर ठौर कथा पुरान औ हरिचर्चा हो रही है, अठारह बरन सुख चैन से बास करते हैं, सुदरसनचक्र पुरी की रक्षा करता है।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी बोले कि राजा, ऐसी जो सुंदर सुहावनी द्वारकापुरी, तिसे देखता देखता वह राजा उग्रसेन की सभा में जा खड़ा हुआ और असीस कर वहाँ इसने पूछा कि श्रीकृष्णचंदजी कहाँ बिराजते हैं, तब किसी ने इसे हरि का मंदिर बताय दिया। वह जो द्वार पर जाय खड़ा हुआ, तों द्वारपालों ने इसे देख दंडवत कर पूछा—

को हौ आप कहाँ ते आए। कौन देश की पाती लाए॥

यह बोला—ब्राह्मन हूँ औ कुंडलपुर का रहनेवाला, राजा भीष्मक की कन्या रुक्मिनी उसकी चीठी देने आया हूँ। इतनी बात के सुनतेही पौरियों ने कहा—महाराज, आप मंदिर में पधारिये श्रीकृष्णचंद सोंही सिंहासन पर विराजते हैं। बचन सुन ब्राह्मण जों भीतर गया तों हरि ने सिंहासन से उतर दंडवत कर अति आदर मान किया औ सिंहासन पर बिठाय चरन धोय चरनामृत लिया और ऐसे सेवा करने लगे जैसे कोई अपने इष्ट की सेवा करे। निदान प्रभु ने सुगंध उबटन लगाय, न्हिलाय धुलाय पहले तो उसे षटरस भोजन करवाया, पीछे बीड़ा दे केसर चंदन से चरच फूलों की माला पहिराय, मनिमय मंदिर में ले

जाय, एक सुथरे जड़ाऊ खटछप्पर में लिटाया। महाराज, वह भी बाट का हारा थका तो थाही लेटतेही सुख पाय सो गया श्रीकृष्णजी कितने एक बेर तक तो उसकी बातें सुनने की अभिलाषा किये वहाँ बैठे मन ही मन कहते रहे कि अब उठे अब उठे। निदान जब देखा कि न उठा तब आतुर हो उसके पैताने बैठ लगे पाँव दबाने। इसमें उसकी नींद टूटी तो वह उठ बैठा तद हरि ने विसकी क्षेम कुशल पूछ, पूछा—

नीकौ राजदेस तुम तनौं। हम सों भेद कहो आपनौ॥
कौन काज ह्याँ आवन भयौ। दरस दिखाय हमें सुख दयौ॥

ब्राह्मन बोला कि कृपानिधान, आप मन दे सुनिये, मैं अपने आने का कारन कहता हूँ कि महाराज, कुंडलपुर के राजा भीष्मक की कन्या ने जब से आपका नाम औ गुन सुना है तभी से वह निस दिन तुम्हारा ध्यान किये रहती है, औ कँवलचरन की सेवा किया चाहती थी और संयोग भी आय बना था, पर बात बिगड़ गई। प्रभु बोले सो क्या? ब्राह्मन ने कहा, दीनदयाल, एक दिन राजा भीष्मक ने अपने सब कुटुंब औ सभा के लोगों को बुलाय के कहा कि भाइयो, कन्या ब्याह जोग भई अब इसके लिए बर ठहराया चाहिये। इतना बचन राजा के मुख से निकलतेही विन्होंने अनेक अनेक राजाओं का, कुल, गुन, नाम औ पराक्रम कह सुनाया, पर इनके मन में न आया तद रुक्मकेश ने आपका नाम लिया, तो प्रसन्न हो राजा ने उसका कहना मान लिया, और सब्से कहा कि भाइयों, मेरे मन में तो इसकी बात पत्थर की लकीर हो चुकी, तुम क्या कहते हो? वे बोले—महाराज, ऐसा घर, बर जो त्रिलोकी ढूँढ़ियेगा तो भी न पाइयेगा। इससे अब

उचित यही है कि विलंब न कीजे, शीघ्र श्रीकृष्णचंद से रुक्मिनी का व्याह कर दीजे। महाराज, यह बात ठहर चुकी थी, इसमें रुक्म ने भाँजी मार रुक्मिनी की सगाई सिसुपाल से की। अब वह सब असुर दल साथ ले ब्याहन को चढ़ा है।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी बोले कि पृथीनाथ, ऐसे उस ब्राह्मन ने सब समाचार कह, रुक्मिनीजी की चीठी हरि के हाथ दी। प्रभु ने अति-हित से पाती ले छाती से लगाय ली, औ पढ़-कर प्रसन्न हो ब्राह्मन से कहा—देवता, तुम किसी बात की चिंता मत करो मैं तुम्हारे साथ चल असुरों को मार उनका मनोरथ पूरा करूँगा। यह सुन ब्राह्मन को तो धीरज हुआ पर हरि रुक्मिनी का ध्यान कर चिंता करने लगे।

———

चौअनवाँ अध्याय

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा, श्रीकृष्णचंद ने ऐसे उस ब्राह्मन को ढाढ़स बँधाय फिर कहा—

जैसे घिसके काठ तें, काढ़हिं ज्वाला जारि।
ऐसे सुंदरि ल्यायहौं, दुष्ट,असुरदल मारि॥

इतना कह फिर सुथरे वस्त्र, आभूषन मनमानते पहन, राजा उग्रसेन के पास जाय प्रभु ने हाथ जोड़कर कहा—महाराज, कुण्डलपुर के राजा भीष्मक ने अपनी कन्या देने को पत्र लिख, पुरोहित के हाथ मुझे अकेला बुलाया है, जो आप आज्ञा दें तो जाऊँ औ उसकी बेटी ब्याह लाऊँ।

सुनकर उग्रसेन यों कहै। दूर देस कैसे मन रहै।
तहाँ अकेले जात मुरारि। मत काहू सों उपजे रारि॥

तब तुम्हारे समाचार हमें यहाँ कौन पहुँचावेगा। यों कह पुनि उग्रसेन बोले कि अच्छा जो तुम वहाँ जाया चाहते हो तो अपनी सब सेना साथ ले दोनों भाई जाओ औ ब्याह कर शीघ्र चले आओ। वहाँ किसीसे लड़ाई झगड़ा न करना, क्योंकि तुम चिरंजीव हो तो सुन्दरि बहुत आय रहैंगी। आज्ञा पाते ही श्रीकृष्ण-चंद बोले कि महाराज, तुमने सच कहा पर मैं आगे चलता हूँ, आप कटक समेत बलरामजी को पीछे से भेज दीजेगा।

ऐसे कह हरि उग्रसेन बसुदेव से बिदा हो, उस ब्राह्मन के निकट आये और रथ समेत अपने दारुक सारथी को बुलवाया। वह प्रभु की आज्ञा पाते ही चार घोड़े का रथ तुरंत जोत लाया,

तब श्रीकृष्णचंद उसपर चढ़े औ ब्राह्मन को पास बिठाय द्वारका से कुण्डलपुर को चले। जों नगर के बाहर निकले तों देखते क्या हैं कि दाहनी ओर तो मृग के झुंड के झुंड चले जाते हैं औ सनमुख से सिंह सिंहनी अपना भक्ष लिये गरजते आते हैं। यह शुभ सगुन देख ब्राह्मन अपने जी में विचार कर बोला कि महाराज, इस समैं इस शकुन के देखने से मेरे बिचार में यह आता है कि जैसे ये अपना काज साधके आते हैं, तैसेही तुम भी अपना काज सिद्धकर आओगे। श्रीकृष्णचंद बोले—आपकी कृपा से। इतना कह हरि वहाँ से आगे बढ़े औ नये नये देस, नगर, गाँव देखते देखते कुण्डलपुर में जा पहुँचे, तो तहाँ देखा, कि ठौर ठौर व्याह की सामा जो संजोय धरी है तिससे नगर की छवि कुछ और की और हो रही है।

झारें गली चौहटे छावें। चोआ चन्दन सों छिरकावें॥
पोय सुपारी झौरा किये। बिच बिच कनक नारियर दिये॥
हरे पात फल फूल अपार। ऐसी घर घर बंदनवार॥
ध्वजा पताका तोरन तने। सुढब कलस कंचन के बने॥

और घर घर में आनन्द हो रहा है। महाराज, यह तो नगर की सोभा थी औ राजमंदिर में जो कुतूहल हो रहा था, उसका बरनन कोई क्या करे, वह देखते ही बनि आवे। आगे श्रीकृष्णचंद्र ने सब नगर देख आ राजा भीष्मक की बाड़ी में डेरा किया औ शीतल छाँह में बैठ ठंढे हो उस ब्राह्मन से कहा कि देवता तुम पहले हमारे आने का समाचार रुक्मिनीजी को जा सुनाओ, जो वे धीरज धर अपने मन का दुख हरें। पीछे वहाँ का भेद हमें आ बताओ, जो हम फिर उसका उपाय करें। ब्राह्मन

बोला कि कृपानाथ, आज ब्याह का पहला दिन है, राजमन्दिर में बड़ी धूमधाम हो रही है, मैं जाता हूँ पर रुक्मिनीजी को अकेली पाय आपके आने का भेद कहूँगा। यों सुनाय ब्राह्मन वहाँ से चला। महाराज, इधर से हरि तो यों चुपचाप अकेले पहुँचे औ उधर से राजा सिसुपाल जरासन्ध समेत सब असुरदल लिये, इस धूम से आया कि जिसका वारापार नहीं औ इतनी भीड़ संग कर लाया कि जिसके बोझ से लगा सेसनाग डगमगाने औ पृथ्वी उथलने। उसके आने की सोध पाय राजा भीष्मक अपने मंत्री औ कुटुंब के लोगों समेत आगू बढ़ लेने गये और बड़े आदर मान से अगोनी कर सबको पहरावनी पहराय रत्नजटित शस्त्र, आभूपन औ हाथी घोड़े दे उन्हें नगर में ले आए औ जनवासा दिया, फिर खाने पीने का सामान किया।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव मुनि बोले, कि महाराज, अब मैं अंतर कथा कहता हूँ आप चित लगाय सुनिये कि जब श्रीकृष्णचंद द्वारका से चले, तिसी समै सब यदुबंसियों ने जाय, राजा उग्रसेन से कहा कि महाराज, हमने सुना है जो कुंडलपुर में राजा सिसुपाल जरासंध समेत सब असुरदल ले ब्याहन आया है और हरि अकेले गये हैं, इससे हम जानते हैं कि वहाँ श्रीकृष्णजी से और उनसे युद्ध होगा। यह बात जानके भी हम अजान हो हरि को छोड़ यहाँ कैसे रहैं। हमारा मन तो मानता नहीं, आगे जो आप आज्ञा कीजे सो करें।

इस बात के सुनतेही राजा उग्रसेन ने अति भय खाय, घबराय बलरामजी को निकट बुलाय समझाय के कहा कि तुम

हमारी सब सेना ले श्रीकृष्ण के न पहुँचते न पहुँचते शीघ्र कुंडलपुर जाओ औ उन्हें अपने संग कर ले आओ। राजा की आज्ञा पाते ही बलदेवजी छप्पन करोड़ यादव जोड़ ले कुंडलपुर को चले। उस काल कटक के हाथी काले, धौले, धूमरे दलबादल से जनाते थे औ उनके स्वेत स्वेत दाँत बगपांति से। धौंसा मेघसा गरजता था औ शस्त्र बिजली से चमकते थे। राते, पीले बागे पहने घुड़चढ़ों के टोल के टोल जिधर तिधर दृष्ट आते थे, रथों के तातों के तातें झमझमाते चले जाते थे, तिनकी शोभा निरख निरख, हरष हरष देवता अति हित से अपने अपने बिमानों पर बैठे, आकाश से फूल बरसाय श्रीकृष्णचंद आनंदकंदकी जै मनाते थे। इस बीच सब दल लिये चले, चले, कुण्डलपुरमें हरि के पहुँचतेही, बलरामजी भी जा पहुँचे। यों सुनाय फिर श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, श्रीकृष्णचंद रूपसागर, जगतउजागर तों इस भाँति कुण्डलपुर पहुँच चुके थे, पर रुक्मिनी इनके आने का समाचार न पाय

बिलख बदन चितवै चहुँ ओर। जैसे चंद मलिन भये भोर॥
अति चिन्ता सुन्दरि जिय बाढ़ी। देखे ऊँच अटा पर ठाढ़ी॥
चढ़ि चढ़ि उझकै खिरकी द्वार। नैननि ते छांड़े जलधार॥

बिलख बदन अति मलिन मन, लेत उसास निसास।
व्याकुल बरषा नैन जल, सोचत कहति उदास॥

कि अब तक क्यौं नहीं आए हरी, विनका तो नाम है अंतरजामी, ऐसी मुझ से क्या चूक पड़ी जो अब लग विन्होंने मेरी सुध न ली, क्या ब्राह्मन वहाँ नहीं पहुँचा, कै हरि ने मुझे कुरूप जान मेरी प्रीति की प्रतीत न करी, कै जरासन्ध का आना सुन प्रभु न आए। कल ब्याह का दिन है औ असुर आय पहुँचा।

जो वह कल मेरा कर गहेगा, तो यह पापी जीव हरि बिन कैसे रहैगा। जप, तप, नेम, धर्म कुछ आड़े न आया, अब क्या करूं और किधर जाऊँ। अपनी बरात ले आया सिसुपाल, कैसे बिरमे प्रभु दीनदयाल।

इतनी बात जब रुक्मिनी के मुँह से निकली तब एक सखी ने तो कहा कि दूर देस बिन पिता बंधु की आज्ञा हरि कैसे आवेंगे, औ दूसरी बोली कि जिनका नाम है अंतरजामी दीन-दयाल, वे बिन आए न रहैंगे, रुक्मिनी, तू धीरज धर, व्याकुल न हो। मेरा मन यह हामी भरता है कि अभी आय कोई यों कहता है कि हरि आए। महाराज, ऐसे वे दोनों आपस में बत कहाव कर रही थीं कि वैसे में ब्राह्मन ने जाय असीस दे कहा कि श्रीकृष्णचंदजी ने आय राजबाड़ी में डेरा किया औ सब दल लिये बलदेवजी पीछे से आते हैं। ब्राह्मन को देखते और इतनी बात के सुनते ही, रुक्मिनीजी के जी में जी आया, और उन्होंने उस काल ऐसा सुख माना कि जैसे तपी तप का फल पाय सुख माने।

आगे श्रीरुक्मिनीजी हाथ जोड़, सिर झुकाय, उस ब्राह्मन के सनमुख कहने लगीं कि आज तुमने आय हरि का आगमन सुनाय मुझे प्रानदान दिया। मैं इसके पलटे क्या दूँ। जो त्रिलोकी की माया दूँ तो भी तुम्हारे ऋन से उतरन न हूँ। ऐसे कह मन मार सुकचाय रहीं तद वह ब्राह्मन अति सन्तुष्ट हो आशीर्वाद कर वहाँ से उठ राजा भीष्मक के पास गया और उसने श्रीकृष्ण के आने का ब्यौरा सब समझाय के कहा। सुनते प्रमान राजा भीष्मक उठ धाया औ चला चला वहाँ आया, जहाँ बाड़ी में श्रीकृष्ण

वलराम सुखधाम विराजते थे। आतेही अष्टांग प्रनाम कर, सन-मुख खड़े हो, हाथ जोड़के कहा राजा भीष्मक ने—

मेरे मन बच हे तुम हरी। कहा कहों जो दुष्टनि करी॥

अब मेरा मनोरथ पूरन हुआ जो आपने आय दरसन दिया। यों कह प्रभु के डेरे करवाय, राजा भीष्मक तो अपने घर आय चिन्ता कर ऐसे कहने लगा—

हरि चरित्र जाने सब कोई। का जाने अव कैसी होई॥

और जहाँ श्रीकृष्ण बलदेव थे तहाँ नगरनिवासी क्या स्त्री क्या पुरुष, आय आय, सिर नाय नाय प्रभु का जस गाय गाय सराहि सराहि आपस में यों कहते थे कि रुक्मिनी जोग बर श्रीकृष्णही हैं, विधना करै यह जोरी जुरै औ चिरंजीव रहै। इस बीच दोनों भाइयों के कुछ जो जी में आया तो नगर देखने चले। उप समैं ये दोनों भाई जिस हाट, बाट, चौहटे में हो जाते थे तहीं नर नारियों के ठट्ठ के ठट्ठ लग जाते थे, औ वे इनके ऊपर चोआ, चंदन, गुलाबनीर, छिड़क छिड़क, फूल बरसाय बरसाय, हाथ बढ़ाय बढ़ाय प्रभु को आपस में यों कह कह बताते थे।

नीलांबर ओढ़े बलराम। पीतांबर पहने घनश्याम॥
कुण्डल चपल मुकुट सिर धरें। कँवलनयन चाहत मन हरें॥

औ ये देखते जाते थे। निदान सब नगर औ राजा सिसु-पाल का कटक देख ये तो अपने दल में आए, औ इनके आने का समाचार सुन राजा भीष्मक का बड़ा वेटा अति क्रोध कर अपने पिता के निकट आय कहने लगा कि सच कहो कृष्ण ह्यां किसका कलाया आया, यह भेद मैने नहीं पाया, बिन बुलाए यह कैसे आया। व्याह काज है सुख का धाम, इसमें इसका है क्या

काम। ये दोनों कपटी कुटिल जहाँ जाते हैं, तहाँ ही उतपात मचाते हैं। जो तुम अपना भला चाहो तो तुम मुझसे सत्य कहो, ये किसके बुलाए आए।

महाराज, रुक्म ऐसे पिता को धमकाय यहाँ से उठ सात पाँच करता वहाँ गया, जहाँ राजा सिसुपाल औ जरासन्ध अपनी सभा में बैठे थे औ उनसे कहा कि ह्याँ रामकृष्ण आए हैं तुम अपने सब लोगों को जता दो, जो सावधानी से रहें। इन दोनों भाइयों का नाम सुनतेही, राजा सिसुपाल तो हरिचरित्र का लख व्यवहार, जी हार, करने लगा मनहीं मन बिचार, औ जराजन्ध कहने कि सुनो जहाँ ये दोनों आवें हैं, तहाँ कुछ न कुछ उपद्रव मचावें हैं। ये महाबली औ कपटी हैं। इन्होंने ब्रज में कंसादि बड़े बड़े राक्षस सहज सुभावही मारे, इन्हें तुम मत जानो बारे। ये कभी किसीसे लड़कर नहीं हारे, श्रीकृष्ण ने सत्रह बेर मेरा दल हना, जब मैं अठारवीं बेर चढ़ आया, तब यह भाग पर्वत पै जा चढ़ा, जों मैंने उसमें आग लगाई तों यह छलकर द्वारका को चला गया।

याकौ काहू भेद न पायौ। अब ह्याँ करन उपद्रव आयौ॥
है यह छली महा छल करै। काहू पै नहिं जान्यो परै॥

इससे अब ऐसा कुछ उपाय कीजै, जिससे हम सबों की पत रहै। इतनी बात जब जरासंध ने कही तब रुक्म बोला कि वे क्या वस्तु हैं जिनके लिये तुम इतने भावित हो, विन्हें तो मैं भली भाँति से जानता हूँ कि वन बन गाते, नाचते, बेनु बजाते, धेनु चराते, फिरते थे, वे बालक गंवार युद्धविद्या की रीति क्या जानें।

तुम किसी बात की चिन्ता अपने मन में मत करो, हम सब यदुबंसियों समेत कृष्ण बलराम को छिन भर में मार हटावेंगे।

श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, उस दिन रुक्म तो जरासंध औ सिसुपाल को समझाय बुझाय ढाढ़स बँधाय अपने घर आया औ उन्होंने सात पाँच कर रात गँवाई। भोर होते ही इधर राजा सिसुपाल औ जरासंध तो व्याह का दिन जान बरात निकालने की धूमधाम में लगे और उधर राजा भीष्मक के यहाँ भी मंगलाचार होने लगे। इसमें रुक्मिनीजी ने उठते ही एक ब्राह्मन के हाथ श्रीकृष्णचंद से कहला भेजा कि कृपानिधान, आज व्याह का दिन है, दो घड़ी दिन रहे नगर के पूरब देवी का मंदिर है तहाँ मैं पूजा करने जाऊँगी। मेरी लाज तुम्हें है जिसमें रहै सो करियेगा।

आगे पहर एक दिन चढ़े सखी सहेली औ कुटुँब की स्त्रियाँ आईं, तिन्होंने आतेही पहले तो आँगन में गजमोतियों का चौक पुरवाय, कंचन की जड़ाऊ चौकी बिछवाय, तिसपर रुक्मिनी को बिठाय, सात सोहागिनों से तेल चढ़वाया। पीछे सुगंध उबटन लगाय न्हिलाय धुलाय उसे सोलह सिंगार करवाय बारह आभूषन पहराय ऊपर राता चोला उढ़ाय, बनी बनाय बिठाया। इतने में घड़ी चार एक दिन पिछला रह गया। उस काल रुक्मिनी बाल, अपनी सब सखी सहेलियों को साथ ले बाजे गाजे से देवी की पूजा करने को चली, तो राजा भीष्मक ने अपने लोग रखवाली को उसके साथ कर दिये।

ये समाचार पाय कि राजकन्या नगर के बाहर देवी पूजने चली है, राजा सिसुपाल ने भी श्रीकृष्णचंदके डर से अपने बड़े

बड़े रावत, सावंत, सूर, वीर, जोधाओं को बुलाय, सब भाँति ऊँच नीच समझाय बुझाय, रुक्मिनीजी की चौकसी को भेज दिया। वे भी आय अपने अपने अस्त्र शस्त्र सँभाल राजकन्या के संग हो लिये। उस बिरियाँ रुक्मिनीजी सब सिंगार किये, सब सहे-लियों के झुंड के झुंड लिये, अंतरपट की ओट में औ काले काले राक्षसों के कोट में जाते, ऐसी सोभायमान लगती थीं कि जैसे स्याम घटा के बीच, तारामंडल समेत चंद। निदान कितनी एक बेर में चली चली देवी के मंदिर में पहुँची। वहाँ जाय हाथ पाँव धोय, आचमन कर, शुद्ध होय, राजकन्या ने पहले तो चंदन, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य कर, श्रद्धा समेत वेद की विधि से देवी की पूजा की। पीछे ब्राह्मनियों को इच्छा भोजन करवाय, सुथरी तीयलें पहराय, रोली की खौड़ काढ़, अक्षत लगाय उन्हें दक्षना दी औ उनसे असीस ली।

आगे देवी की परिक्रमा दे, वह चंदमुखी, चंपकबरनी, मृगनैनी, पिकबैनी, राजगौनी, सखियों को साथ ले हरि के मिलने की चिंता किये, जो वहाँ से निचित हो चलने को हुई तों श्रीकृष्णचंद भी अकेले रथ पर बैठे वहाँ पहुँचे, जहाँ रुक्मिनी के साथी सब जोधा अस्त्र शस्त्र से जकड़े थे। इतना कह श्रीशुकदेवजी बोले कि

पूजि गौर जबही चली, एक कहति अकुलाय।
सुन सुंदरि आए हरि, देख ध्वजा फहराय॥

यह बात सखी से सुन औ प्रभु के रथ की बैरख देख, राजकन्या अति आनंद कर फूली अंग न समाती थी औ सखी के हाथ पर हाथ दिये मोहनी रूप किये, हरि के मिलने की आस

लिये, कुछ कुछ मुसकराती ऐसे सबके बीच मंदगति जाती थी कि जिसकी शोभा कुछ बरनी नहीं जाती। आगे श्रीकृष्णचंद को देखते ही सब रखवाले भूले से खड़े हो रहे औ अंतरपट उनके हाथ से छूट पड़ा। इसमें मोहनी रूप से रुक्मिनीजी को जो उन्होंने देखा तो और भी मोहित हो ऐसे सिथल हुए कि जिन्हें अपने तन मन की भी सुध न थी।

भृकुटी धनुप चढ़ाय, अंजन बरुनी पनच कै।
लोचन बान चलाय, मारे पै जीवत रहे॥

महाराज, उस काल सब राक्षस तो चित्र के से कढ़े खड़े देखते ही रहे औ श्रीकृष्णचंद सबके बीच रुक्मिनी के पास रथ बढ़ाय जाय खड़े हुए। प्रानपति को देखतेही उसने सकुचकर मिलने को जों हाथ बढ़ाया, तों प्रभु ने बाँए हाथ से उठाय उसे रथ पर बैठाया।

कांपत गात सकुच मन भारी। छोड़ सबन हरि संग सिधारी॥
जों बैरागी छांड़ै गेह। कृष्ण चरन सों करै सनेह॥

महाराज, रुक्मिनीजी ने तो जप, तप, व्रत, पुन्य किये का फल पाया औ पिछला दुख सब गँवाया। बैरी शस्त्र अस्त्र लिये खड़े मुख देखते रहे, प्रभु उनके बीच से रुक्मिनी को ले ऐसे चले कि—

जों बहु भुंडनि स्यार के, परै सिंह बिच आय।
अपनौ भक्षन लेइकै, चलै निडर घहराय॥

आगे श्रीकृष्णचंद के चलतेही बलरामजी भी पीछे से धौंसा दे, सब दल साथ ले जा मिले।

———

पचपनवाँ अध्याय

श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, कितनी एक दूर जाय श्रीकृष्णचंद ने रुक्मिनीजी को सोच संकोचयुत देखकर कहा कि सुंदरि, अब तुम किसी बात की चिंता मत करो। मैं शंखध्वनि कर तुम्हारे मन का सब डर हरूँगा औ द्वारका में पहुँच वेद की विधि से बरूँगा। यों कह प्रभु ने उसे अपनी माला पहिराय, बाईं ओर बैठाय, ज्यों शंखध्वनि करी, त्यों सिसुपाल औ जरासंध के साथी सब चौंक पड़े। यह बात सारे नगर में फैल गई कि हरि रुक्मिनी को हर ले गये।

इसमें रुक्मिनीहरन अपने विन लोगों के मुख से सुन कि जो चौकसी को राजकन्या के संग गए थे, राजा सिसुपाल औ जरासंध अति क्रोध कर, झिलम टोप पहन, पेटी बाँध, सब शस्त्र लगाय अपना अपना कटक ले लड़ने को श्रीकृष्ण के पीछे चढ़ दौड़े औ उनके निकट जाय, आयुध सँभाल सँभाल ललकारे। अरे, भागे क्यौं जाते हो, खड़े रहो, शस्त्र पकड़ लड़ो, जो क्षत्री सूर बीर हैं वे खेत में पीठ नहीं देते। महाराज, इतनी बात के सुनतेही यादव फिर सनमुख हुए और लगे दोनों ओर से शस्त्र चलने। उस काल रुक्मिनी बाल अति भय मान घूंघट की ओट किये, आँसू भर भर लंबी सांसें लेती थी औ प्रीतम का मुख निरख निरख मनही मन बिचारकर यों कहती थी कि ये मेरे लिये इतना दुख पाते हैं। अंतरजामी प्रभु रुक्मिनी के मन का भेद जान बोले कि सुंदरि, तू क्यौं डरती है, तेरे देखतेही देखते सब असुरदल को मार भूमि का

भार उतारता हूँ, तू अपने मन में किसी बात की चिंता मत करे। इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि राजा उस काल देवता अपने विमानों में बैठे आकाशसे देखते क्या हैं, कि

यादव असुरन सों लरत, होत महा संग्राम।
ठाढ़े देखत कृष्ण हैं, करत युद्ध बलराम॥

मारू बाजता है, कड़खैत कड़खा गाते हैं, चारन जस बखानते हैं। अश्वपति अश्वपति से, गजपति गजपति से, रथी रथी से, पैदल पैदल से भिड़ रहे हैं। इधर उधर के सूर बीर पिल पिल के हाथ मारते हैं औ कायर खेत छोड़ अपना जी ले भागते हैं। घायल खड़े भूमते हैं, कबंध हाथ में तरवार लिये चारों ओर घूमते हैं, औ लोथ पर लोथ गिरती हैं तिनसे लोहू की नदी वह चली है, तिसमें जहाँ तहाँ हाथी जो मरे पड़े हैं सो टापू से जानते हैं और सूंड़ें हैं मगर सी। महादेव भूत, प्रत, पिशाच संग लिये, सिर चुन चुन मुंडमाल बनाय बनाय पहनते हैं औ गिद्ध, शाल कूकर आपस में लड़ लड़ लोथें खैंच खैंच लाते हैं औ फाड़ फाड़ खाते हैं। कौए आंखें निकाल निकाल धड़ों से ले जाते हैं। निदान देवताओं के देखतही देखत बलरामजी ने सब असुरदल यों काट डाला कि जों किसान खेती काट डाले। आगे जरासंध औ सिसुपाल सब दल कटाय, कई एक घायल संग लिये भागके एक ठौर जा खड़े रहे। तहाँ सिसुपाल ते बहुत अछताय पछताय सिर डुलाय जरासंध से कहा कि अब तो अपजस पाय औ कुल को कलंक लगाय संसार में जीना उचित नहीं, इससे आप आज्ञा दें तो मैं रन में जाय लड़ मरूँ।

नातर हों करिहौं बनवास। लैंउँ जोग छाँड़ौं सब आस॥

गई आन पत अब क्यौं जीजै। राखि प्रान क्यौं अपजस लीजै ॥

इतनी बात सुन जरासंध बोला कि महाराज, आप ज्ञानवान हैं औ सब बात में जान। मैं तुम्हें क्या समझाऊँ, जो ज्ञानी पुरुष हैं सो हुई बात का सोच नहीं करते, क्यौंकि भले बुरे का करता और ही है, मनुष का कुछ बस नहीं, यह परबस पराधीन है। जैसे काठ की पुतली को नटुआ जों नचाता है तों नाचती है, ऐसेही मनुष्य करता के बस है, वह जो चाहता है सो करता है। इससे सुख दुख में हरष शोक न कीजे, सब सपना सा जान लीजे मैं तेईस तेईस अक्षौहिनी ले मथुरा पुरी पर सत्रह बेर चढ़ गया और इसी कृष्ण ने सत्रह बेर मेरा सब दल हना, मैंने कुछ सोच न किया और अठारहवीं बेर जद इसका दल मारा तद कुछ हर्ष भी न किया। यह भागकर पहाड़ पर जा चढ़ा, मैंने इसे वहीं फूँक दिया, न जानिये यह क्यौं कर जिया। इसकी गत कुछ जानि नहीं जाती। इतना कह फिर जरासन्ध बोला कि महाराज, अब उचित यही है जो इस समय को टाल दीजे। कहा है कि प्रान बचै तो पीछे सब हो रहता है, जैसे हमें हुआ कि सत्रह बार हार अठारहवीं बेर जीते। इससे जिसमें अपनी कुशल होय सो कीजे औ हठ छोड़ दीजे।

महाराज, जद जरासन्ध ने ऐसे समझायके कहा तद विसे कुछ धीरज हुआ औ जितने घायल जोधा बचे थे तिन्हे साथ ले, अछता पछता जरासन्ध के संग हो लिया। ये तो यहाँ से यों हारके चले और जहाँ सिसुपाल का घर था वहाँ की बात सुनो कि पुत्र का आगमन विचार सिसुपाल की मा जो मंगलाचार करने लगीं, तो सनमुख छींक हुई औ दाहिनी आँख उसकी फड़कने

लगी। यह अशकुन देख विसका माथा ठनका कि इस बीच किसीने आय कहा जो तुम्हारे पुत्र की सब सेना कट गई औ दुलहन भी न मिली, अब वहाँ से भाग अपना जीव लिये आता है। इतनी बात के सुनतेही सिसुपाल की महतारी अति चिन्ता कर अवाक हो रही।

आगे सिसुपाल औ जरासन्ध का भागना सुन, रुक्म अति क्रोध कर अपनी सभा में आन बैठा और सबको सुनाय कहने लगा कि कृष्ण मेरे हाथ से बच कहाँ जा सकता है, अभी जाय विसे मार रुक्मिनी को ले आऊँ तो मेरा नाम रुक्म, नहीं तो फिर कुण्डलपुर में न आऊँ। महाराज, ऐसे पैज कर रुक्म एक अक्षौहिनी दल ले श्रीकृष्णचंद से लड़ने को चढ़ धाया, और उसने यादवों का दल जा घेरा। उस काल विसने अपने लोगों से कहा कि तुम तो यादवों को मारो औ मैं आगे जाय कृष्ण को जीता पकड़ लाता हूँ। इतनी बात के सुनतेही उसके साथी तो यदुबंसियों से युद्ध करने लगे कि और वह रथ बढ़ाय श्रीकृष्णचंद के निकट जाय ललकारकर बोला—अरे, कपटी गँवार, तू क्या जाने राज्य ब्यौहार, बालकपन में जैसे तैंने दूध दही की चोरी करी तैसे तूने यहाँ भी आय सुंदरि हरी।

ब्रजबासी हम नहीं अहीर। ऐसे कहकर लीने तीर॥
विष के बुझे लिये उन बीन। खैंच धनुष सर छोड़े तीन॥

उन बानों को आते देख श्रीकृष्णचंद ने बीचही काटा। फिर रुक्म ने और बान चलाए, प्रभु ने वे भी काट गिराए औ अपना धनुष संभाल कई एक बान ऐसे मारे कि रथ के घोड़ों समेत सारथी उड़ गया और धनुष उसके हाथ से कट नीचे गिरा।

पुनि जितने आयुध उसने लिये, हरि ने सब काट काट गिरा दिये। तब तो वह अति झुंझलाय फरी खाँड़ा उठाय रथ से कूद श्रीकृष्णचंद की ओर यों झपटा कि जैसे बावला गीदड़ गज पर आवे, कै जों पतंग दीपक पर धावे। निदान जाते ही उनने हरि के रथ पर एक गदा चलाई कि प्रभु ने झट उसे पकड़ बाँधा औ चाहा की मारें। इसमें रुक्मिनीजी बोलीं—

मारो मत भैया है मेरौ। छाँड़ौ नाथ तिहारौ चेरौ॥
मूरख अंध कहा यह जाने। लक्ष्मीकंतहि मानुष माने॥
तुम योगेश्वर आदि अनंत। भक्त हेत प्रगटत भगवंत॥
यह जड़ कहा तुम्हें पहचाने। दीनदयाल कृपाल बखाने॥

इतना कह फिर कहने लगी कि साधु जड़ औ वालक का अपराध मन में नहीं लाते, जैसे कि सिंह स्वान के भूँकने पर ध्यान नहीं करता और जो तुम इसे मारोगे तो होगा मेरे पिता को सोग, यह करना तुम्हें नहीं है जोग। जिस ठौर तुम्हारे चरन पड़ते हैं, तहाँ के सब प्रानी आनंद में रहते हैं। यह बड़े अचरज की बात है कि तुम सा सगा रहते राजा भीष्मक पुत्र का दुख पावे। महाराज, ऐसे कह एक बार तो रुक्मिनीजी यों बोलीं, कि महाराज, तुमने भला हित संबंधी से किया, जो पकड़ बाँधा औ खड्ग हाथ में ले मारने को उपस्थित हुए। पुनि अति व्याकुल हो थरथराय, आँखें डबडबाय बिसूर बिसूर पाँओं पड़ गोद पसार कहने लगी।

बंधु भीख प्रभु मोकौं देउ। इतनों जस तुम जग में लेउ॥

इतनी बात के सुनने से औ रुक्मिनीजी की ओर देखने से, श्रीकृष्णचंदजी का सब कोप शांत हुआ। तब उन्होंने उसे जीव

से तो न मारा पर सारथी को सैन करी, उसने झट इसकी पगड़ी उतार टुंडियाँ चढ़ाय, मूँछ दाढ़ी औ सिर मूँड, सात चोटी रख रथ के पीछे बाँध लिया।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, रुक्म को तो श्रीकृष्णजी ने यहाँ यह अवस्था की और बलदेव वहाँ से सब असुर दल को मार भगायकर, भाई के मिलने को ऐसे चले कि जैसे स्वेत गज कँवलदह में कँवलों को तोड़, खाय, बिथराय, अकुलाय के भागता होय। निदान कितनो एक बेर में प्रभु के समीप जाय पहुँचे औ रुक्म को बँधा देख श्रीकृष्णजी से अति झुँझुँलायके बोले कि तुमने यह क्या काम किया, जो साले को पकड़ बाँधा, तुम्हारी कुटेव नहीं जाती।

बाँध्यौ याहि करी बुधि थोरी। यह तुम कृष्ण सगाई तोरी॥
औ यदुकुल कों लीक लगाई। अब हमसों को करहि सगाई॥

जिस समै यह युद्ध करने को आपके सनमुख आया, तब तुमने इसे समझाय बुझाय के उलटा क्यों न फेर दिया। महाराज, ऐसे कह बलरामजीने रुक्म को तो खोल समझाय बुझाय अति शिष्टाचार कर बिदा किया। फिर हाथ जोड़ अति विनती कर बलराम सुखधाम रुक्मिनीजी से कहने लगे कि हे सुंदरि, तुम्हारे भाई की जो यह दशा हुई इसमें कुछ हमारी चूक नहीं, यह उसके पूर्व जन्म के किये कर्म का फल है और क्षत्रियो का धर्म भी है कि भूमि, धन, त्रिया के काज, करते हैं युद्ध, दल परस्पर साज। इस बात को तुम बिलग मत मानौ, मेरा कहा सच ही जानौ। हार जीत भी उसके साथही लगी है और यह संसार दुख का समुद्र है यहाँ आय सुख कहाँ, पर मनुष्य माया के बस हो दुख सुख

भला बुरा, हार जीत, संयोग बियोग मनही मन से मान लेते हैं, पै इसमें हरष शोक जीव को नहीं होता। तुम अपने भाई के बिरूप होने का चिंता मत करो क्योंकि ज्ञानी लोग जीव अमर, देह का नास कहते हैं। इस लेखे देह की पत जाने से कुछ जीव की नहीं गई।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा कि धर्मावतार, जब बलरामजी ने ऐसे रुक्मिनी को समझाया, तब

सुनि सुंदरि मन समझकै, किये जेठ की लाज।
सैन मांहि पिय सों कहत, हाँकहु रथ ब्रजराज॥
घूँघट ओट बदन की करै। मधुर बचन हरि सों उच्चरै॥
सनमुख ठाढ़े हैं बलदाऊ। अहोकंत रथ बेग चलाऊ॥

इतना बचन श्रीरुक्मिनीजी के मुख से निकलतेही, इधर तो श्रीकृष्णचंदजी ने रथ द्वारिका की ओर हाँका औ उधर रुक्म अपने लोगों में जाय अति चिंता कर कहने लगा कि मैं कुंडलपुर से यह पैज करके आया था कि अभी जाय कृष्ण बलराम को सब यदुबंसियों समेत मार रुक्मिनी को ले आऊँगा सो मेरा प्रन पूरा न हुआ और उलटी अपनी पत खोई। अब जीता न रहूँगा, इस देश औ गृहस्थाश्रम को छोड़ बैरागी हो कहीं जाय मरूँगा।

जब रुक्म ने ऐसे कहा तब उसके लोगों में से कोई बोला— महाराज, तुम महाबीर हो औ बड़े प्रतापी, तुम्हारे हाथ से जो वे जीते बच गये, सो तिनके भले दिन थे, अपनी प्रारब्ध के बल से निकल गये, नहीं तो आपके सनमुख हो कोई शत्रु कब जीता बच सकता है। तुम सज्ञान हो, ऐसी बात क्यों बिचारते हो। कभी हार होती है कभी जीत, पर सूर बीरों का धर्म है जो साहस

नहीं छोड़ते। भला रिपु आज बच गया फिर मार लेंगे। महाराज, जद यों विसने रुक्म को समझाया तद वह यह कहने लगा कि सुनौ—

हार्‌यौ उनसों औ मत गई। मेरे मन अति लज्जा भई॥
जन्म न हौं कुंडलतुर जाऊँ। बरन औरही गाँव बसाऊँ॥
यों कह उन इक नगर बसायौ। सुत दारा धन तहाँ मँगायौ॥
ताकौ धर्‌यौ भोजकटु नाम। ऐसे रुक्म बसायौ गाँम॥

महाराज, उधर रुक्म तो राजा भीष्मक से बैर कर वहाँ रहा औ इधर श्रीकृष्णचंद औ बलदेव जी चले चले द्वारका के निकट आय पहुँचे।

उड़ी रेनु आकाश जु छाई। तबही पुरबासिन सुध पाई॥
आवत हरि जाने जबहिं, राख्यो नगर बनाय।
शोभा भइ तिहुं लोक की, कही कौन पै जाय॥

उस काल घर घर मंगलाचार हो रहे, द्वार द्वार केले के खंभे गड़े, कंचन कलस सजल सपल्लव धरे, ध्वजा पताका फहराय रहीं, तोरन बंदनवारें बँधी हुई और हर हाट, बाट, चौहटों में चौमुखे दिये लिए युवतियों के यूथ के यूथ खड़े औ राजा उग्रसेन भी सब यदुबंसियों समेत बाजे गाजे से अगाऊँ जाय रीति भाँति कर, बलराम सुखधाम औ श्रीकृष्णचंद आनंदकंद को नगर में ले आये। उस समैं के बनाव की छबि कुछ बरनी नहीं जाती, क्या स्त्री क्या पुरुष सबही के मन में आनंद छाय रहा था। प्रभु के सोंही आय आय सब भेट दे दे भेटते थे औ नारियाँ अपने अपने द्वारों, बारों, चौबारों, कोठों पर से मंगली गीत गाय गाय, आरती उतार फूल बरसावती थीं औ श्रीकृष्णचंद औ बलदेवजी जथायोग्य सबकी

मनुहार करते जाते थे, निदान इसी रीति से चले चले राजमंदिर में जा बिराजे। आगे कई एक दिवस पीछे एक दिन श्रीकृष्णजी राज सभा में गये, जहाँ राजा उग्रसेन, सूरसेन, बसुदेव आदि सब बड़े बड़े यदुबंसी बैठे थे और प्रणाम कर इन्होंने उनके आगे कहा कि महाराज, युद्ध जीत जो कोई सुंदरि लाता है वही राक्षस ब्याह कहाता है।

इतनी बात के सुनते ही इधर सूरसेनजी ने पुरोहित बुलाय, उसे समझाय के कहा कि तुम श्रीकृष्ण के विवाह का दिन ठहरा दो। उसने झट पत्र खोल भला महीना, दिन, बार, नक्षत्र देख शुभ सूरज चंद्रमा बिचार ब्याह का दिन ठहराय दिया। तब राजा उग्रसेन ने अपने मंत्रियों को तो यह आज्ञा दी कि तुम ब्याह की सब सामा इकट्ठी करो और आप बैठ पत्र लिख लिख पाँडव कौरव आदि सब देश बिदेश के राजाओं ब्राह्मनों के हाथ भिजवाये। महाराज, चिट्ठी पातेही सब राजा प्रसन्न हो हो उठ धाये। तिन्हों के साथ ब्राह्मन पंडित, भाट, भिखारी भी हो लिये।

और ये समाचार पाय राजा भीष्मक ने भी बहुत वस्त्र, शस्त्र, जड़ाऊ आभूषन औ रथ, हाथी, घोड़े, दास, दासियों के डोले, एक ब्राह्मन को दे, कन्यादान का संकल्प मनही में ले, अति बिनती कर द्वारका को भेज दिया। उधर से तो देस देस के नरेस आये औ इधर से राजा भीष्मक का पठाया सब सामान लिये वह ब्राह्मन भी आया। उस समैं की शोभा द्वारका पुरी की कुछ बरनी नहीं जाती। आगे ब्याह का दिन आया तो सब रीति भाँति कर कर कन्या को मँढ़े के नीचे ले जा बैठाया और सब बड़े बड़े यदु-बंसी भी आय बैठे। उस बिरियाँ—

पंडित तहाँ बेद उच्चरें। रुक्मिनी संग हरि भाँवर फिरें॥
ढोल दुँदुभी भेर बजावें। हरषहिं देव पुहुप बरसावें॥
सिद्ध साध चारन गंधर्व। अंतरिक्ष भये देखैं सर्व॥
चढ़े विमान घिरे सिर नावें। देवबधू सब मंगल गावें॥
हाथ गह्यौ प्रभु भाँवर पारी। बाम अंग रुक्मिनी बैठारी॥
छोरी गाँठ पटा फेर दियो। कुल देवी कौं तब पूजियो॥
छोरत कंकन हरि सुंदरि। खेलत दूधाभाती करी॥
अति आनंद रच्यो जगदीस। निरषि हरषि सब देहिं असोस॥
हरि रुक्मिनी जोरि चिरजियो। जिनको चरित सुधारस पियौ॥
दीनौ दान विप्र जो आये। मागध बंदीजन पहिराये॥
जो नृप देस देस के आये। दीनी बिदा सबै पहुँचाये॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, जो जन हरि रुक्मिनी का चरित्र पढ़े सुनेगा औ पढ़ सुनके सुमिरन करेगा, सो भक्ति, मुक्ति, जस पावेगा। पुनि जो फल होता है अश्वमेधादि यज्ञ, गौ आदि दान, गंगादि स्नान, प्रयागादि तीर्थ के करने में, सोई फल मिलता है, हरि कथा कहने सुनने में।

———

छप्पनवाँ अध्याय

श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, एक दिन श्रीमहादेवजी अपने स्थान के बीच ध्यान में बैठे थे कि एकाएकी कामदेव ने आ सताया तो हर का ध्यान छूटा औ लगे अज्ञान हो पार्वतीजी के साथ क्रीड़ा करने। इसमें कितनी एक बेर पीछे शिवजी को केलि करते करते जब ज्ञान हुआ, तब क्रोध कर कामदेव को जलाय भस्म किया।

काम बली जब शिव दह्यौ, तब रति धरत न धीर।
पति बिन अति तलफत खरी, बिह्वल बिकल शरीर ।।
कामनारि अति लोटति फिरै। कंत कंत कहि क्षित भुज भरै ।।
पिय बिन तिय कहँ दुखिया जान। तब यौं गौरा कियो बखान ।।

कि हे रति, तू चिंता मत करै, तेरा पति तुझे जिस भाँति मिलेगा तिसका भेद सुन, मैं कहती हूँ कि पहले तो वह श्रीकृष्णचंद के घर में जन्म लेगा औ विसका नाम प्रद्युम्न होगा। पीछे उसे संबर ले जाय समुद्र में बहावेगा। फिर वह मच्छ के पेट में हो संबरही की रसोई में आवेगा। तू वहीं जाय के रह, जब वह आवे तब उसे ले पालियो। पुनि वह संबर को मार तुझे साथ ले द्वारका में सुख से जाय बसेगा। महाराज,

शिवरानी यों रति समझाई। तब तन धर संबर घर आई ।।
सुंदरि बीच रसोई रहै। निस दिन मारग पिय को चहै ।।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा, उधर रति तो पिय के मिलन की आस कर यों रहने लगी औ इधर रुक्मिनीजी को गर्भ रहा औ दस महीने में पूरे दिनों का लड़का भया।

यह समाचार पा जोतिषियों ने आय लग्न साध बसुदेवजी से कहा कि महाराज, इस बालक के शुभ ग्रह देख हमारे बिचार में यों आता है कि रूप, गुन, पराक्रम में यह श्रीकृष्णचंदजीही के समान होगा पर बालकपन भर जल में रहेगा। पुनि रिपु को मार स्त्री समेत आन मिलैगा। यों कह प्रद्युम्न नाम धर जोतिषी तो दक्षिणा ले बिदा हुए और बसुदेवजी के घर में रीति भाँति औ मंगलाचार होने लगे। आगे श्रीनारद मुनिजी ने जाय उसी समै समझाय संबर से कहा कि तू किस नींद सोता है, तुझे चेत है कै नहीं। वह बोला—क्या ? इन्होंने कहा—तेरा बैरी काम का अवतार प्रद्युम्न नाम श्रीकृष्णचंद के घर जन्म ले चुका)

राजा, नारदजी तो संबर को यों चिताय चले गये औ संबर ने सोच विचारकर मनही मन में यह उपाय ठहराया कि पवनरूप हो वहाँ जाय विसे हर लाऊँ औ समुद्र में बहाऊँ, तो मेरे मन की चिंता मिटे औ निर्भय हो रहूँ। यह बिचार कर संबर वहाँ से उठ अलखरूप हो चला चला श्रीकृष्णचंद के मंदिर में आया कि जहाँ रुक्मिनीजी सोअर में हाथ से दबाये, छाती से लगाये बालक को दूध पिलाती थीं औ चुपचाप घात लगाय खड़ा हो रहा। जों बालक पर से रुक्मिनीजी का हाथ अलग हुआ, तों असुर अपनी माया फैलाय उसे उठाय ऐसे ले आया कि जितनी स्त्रियाँ वहाँ बैठी थीं तिनमें से किसीने न देखा न जाना कि कौन किस रूप से आय क्यों कर उठाय ले गया। बालक को आगे न देख रुक्मिनीजी अति घबराईं औ रोने लगीं। उनके रोने का शब्द सुन सब यदुबंसी क्या स्त्री क्या पुरुष घिर आये औ अनेक अनेक प्रकार की बातें कह कह चिंता करने लगे।

इस बीच नारदजी ने आय सबको समझायकर कहा कि तुम बालक के जाने की कुछ भावना मत करो, विसे किसी बात का डर नहीं, वह कहीं जाय पर उसे काल न व्यापैगा, और बालापन वितीत कर एक सुंदरि नारी साथ लिये तुम्हें आय मिलेगा। महाराज, ऐसे सब यदुबंसियों को भेद बताय समझाय बुझाय नारद मुनि जब बिदा हुए, तब वे भी सोच समझ संतोष कर रहे।

अब आगे कथा सुनिये कि संबर जो प्रद्युम्न को ले गया था, उसने उन्हें समुद्र में डाल दिया। वहाँ एक मछली ने इन्हें निगल लिया। उस मछली को एक और बड़ी मछली निगल गई। इसमें एक मछुए ने जाय समुद्र में जों जाल फेंका, तों वह मीन जाल में आई। धीमर जाल खैंच, उस मच्छ को देख, अति प्रसन्न हो ले अपने घर आया। निदान वह मछली उसने जा राजा संबर को भेंट दी। राजा ने ले अपने रसोईघर में भेज दी। रसोई करने-वाली ने जों उस मछली को चीरा तों उसमें से एक और मछली निकली। विसका पेट फाड़ा तो एक लड़का स्यामबरन अति सुंदर उसमें से निकला। उसने देखतेही अति अचरज किया औ वह लड़का ले जाय रति को दिया, उसने महा—प्रसन्न हो ले लिया। यह बात संबर ने सुनी तो रति को बुलायकै कहा कि इस लड़के को भली भाँति से यत्न कर पाल। इतनी बात राजा की सुन रति उस लड़के को ले निज मंदिर में आई। उस काल नारदजी ने जाय रति से कहा-

अब तू याहि पाल चितलाय। पति प्रदमन प्रगट्यौ आय॥
संबर मार तोहि लै जैहै। बालापन या ठौर बितैहै॥

इतना भेद बताय नारद मुनि तो चले गए और रति अति

हित से चित्त लगाय पालने लगी। जों जों वह बालक बढ़ता था तों तों रति को पति के मिलने का चाव होता था। कभी वह उसका रूप देख प्रेम कर हिये से लगाती थी, कभी दृग, मुख, कपोल चूम आप ही बिहँस उसके गले लगती थी और यों कहती थी,

ऐसौ प्रभु संयोग बनायौ। मछरी मांहिं कंत मैं पायौ॥

औ महाराज,

प्रेम सहित पय ल्याय कै, हित सों प्यावत ताहि॥
हलरावत गुन गायकै, कहत कंत चित चाहि॥

आगे जब प्रद्युम्नजी पाँच बरस के हुए, तब रति अनेक अनेक भाँति के बस्त्र आभूषन पहनाय पहनाय, अपने मन का साद पूरा करने लगी औ नैनों को सुख देने। उस काल वह बालक जों रति का आँचल पकड़कर मा मा कहने लगा तों वह हँसकर बोली—हे कंत, तुम यह क्या कहते हो, मैं तुम्हारी नारि, तुम देखो अपने हिये विचार। मुझे पार्वतीजी ने यह कहा था कि तू संबर के घर जाय रह, तेरा कंत श्रीकृष्णचंदजी के घर में जन्म लेगा, सो मछली के पेट में हो तेरे पास आवेगा औ नारदजी भी कह गये थे कि तुम उदास मत हो, तेरा स्वामी तुझे आय मिलता है, तभी से मैं तुम्हारे मिलने की आस किये यहाँ बास कर रही हूँ, तुम्हारे आने से मेरी आस पूरी भई।

ऐसे कह रति ने फिर पति को धनुषविद्या सब पढ़ाई। जब वे धनुषविद्या में निपुण हुए, तब एक दिन रति ने पति से कहा कि स्वामी अब यहाँ रहना उचित नहीं, क्योंकि तुम्हारी माता श्रीरुक्मिनीजी ऐसे तुम बिन दुख पाय अकुलाती हैं, जैसे बच्छ

बिन गाय। इससे अब उचित यही है कि असुर संबर को मार, मुझे संग ले, द्वारका में चल मात पिता का दरसन कीजे और विन्हें सुख दीजे, जो आपके देखने की लालसा किये हुए हैं।

श्रीशुकदेवजी यह प्रसंग सुनाय राजा से कहने लगे कि महाराज, इसी रीति से रति की बातें सुनते सुनते प्रद्युम्नजी जब सयाने हुए तब तक दिन खेलते खेलते राजा संबर के पास गये। वह इन्हें देखतेही अपनेही लड़के के समान जान लड़ाकर बोला कि इस बालक को मैंने अपना लड़का कर पाला है। इतनी बात के सुनतेही प्रद्युम्नजी ने अति क्रोध कर कहा कि मैं बालक हूँ बैरी तेरा, अब तू लड़कर देख बल मेरा। यों सुनाय खंम ठोक सनमुख हुआ, तब हँसकर संबर कहने लगा कि भाई, यह मेरे लिए दूसरा प्रद्युम्नजी कहाँ से आया, क्या दूध पिला मैंने सर्प बढ़ाया, जो ऐसी बातें करता है। इतना कह फिर बोला—अरे बेटा, तू क्यों कहता है ये बैन, क्या तुझे जमदूत आये हैं लेन।

महाराज, इतनी बात संबर के मुँह से सुनतेही वह बोला—प्रद्युम्न मेराही है नाम, मुझसे आज तू कर संग्राम तैंने तो था मुझे सागर में बहाया, पर अब मैं अपना बैर लेने फिर आया। तूने अपने घर में अपना काल बढ़ाया आप, कौन किसका बेटा और किसका बाप।

सुन संबर आयुध गहे, बढ़्यौ क्रोध मन भाव।
मनहु सर्प की पूँछ पर, पर्‌यौ अँधेरे पाँव॥

आगे संबर अपना सब दल मंगवाय, प्रद्युम्न को बाहर ले आय क्रोध कर गदा उठाय, मेघ की भाँति गरजकर बोला—देखूं अब तुझे काल से कौन बचाता है। इतना कह जों उसने

दपटकै गदा चलाई, तों प्रद्युम्नजी ने सहजही काट गिराई। फिर उसने रिसाय कर अग्निबान चलाये, इन्होंने जलबान छोड़ बुझाय गिराए। तब तो संबर ने महा क्रोध कर जितने आयुध उसके पास थे सब किये औ इन्होंने काट काट गिराय दिये। जद कोई आयुध उसके पास न रहा, तद क्रोध कर धाय प्रद्युम्नजी जाय लिपटे औ दोनों में मल्लयुद्ध होने लगा। कितनी एक बेर पीछे ये उसे आकाश को ले उड़े, वहाँ जाय खड्ग से उसका सिर काट गिराय दिया और फिर असुरदल का वध किया।

संबर को मारा रति ने सुख पाया औ विसी समय एक बिमान स्वर्ग से आया, उसपर रति पति दोनों चढ़ बैठे और द्वारका को चले ऐसे कि जैसे दामिनी समेत सुन्दर मेघ जाता हो और चले चले वहाँ पहुँचे कि जहाँ कंचन के मंदिर ऊँचे सुमेरु से जगमगाय रहे थे। बिमान से उतर अचानक दोनों रनवास में गये, इन्हें देख सब सुन्दरी चौंक उठीं और यों समझ कि श्रीकृष्ण एक सुंदरी नारी संग ले आए सकुच रहीं। पर यह भेद किसी ने न जाना कि प्रद्युम्न है। सब कृष्ण ही कृष्ण कहती थीं। इसमें जब प्रद्युम्नजी ने कहा कि हमारे माता पिता कहाँ हैं, तब रुक्मिनी जी अपनी सखियों से कहने लगीं—हे सखी, यह हरि की उनहार कौन है ? वे बोलीं—हमारी समझ में तो ऐसा आता है कि हो न हो यह श्रीकृष्णही का पुत्र है। इतनी बात के सुनतेही रुक्मिनी जी की छाती से दूध की धार बह निकली औ बाईं बाँह फड़कने लगी और मिलने को मन घबराया पर बिन पति की आज्ञा मिल न सकीं। उस काल वहाँ नारदजी ने आय पूर्व कथा कह सबके मन का संदेह दूर किया, तब तो रुक्मिनीजी ने दौड़कर पुत्र का सिर चूम उसे छाती से लगाया और रीति भाँति से ब्याहकर

बेटे बहू को घर में लिया। उस समय क्या स्त्री क्या पुरुष सब यदुबंसियों ने आय, मंगलाचार कर अति आनन्द किया। घर घर बधाई बाजने लगी औ सारी द्वारकापुरी में सुख छाय गया।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज, ऐसे प्रद्युम्नजी जन्म ले बालकपन अनत बिताय रिपु को मार रति को ले द्वारकापुरी में आए तब घर घर आनन्द मंगल हुए बधाए।

सत्तावनवाँ अध्याय

श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, सत्राजीत ने पहले तो श्री कृष्णचंद को मनि की चोरी लगाई, पीछे झूठ समझ लज्जित हो उसने अपनी कन्या सतिभामा हरि को ब्याह दी। यह सुन राजा परीक्षित ने श्रीशुकदेवजी से पूछा कि कृपानिधान, सत्राजीत कौन था, मनि उसने कहाँ पाई और कैसे हरि को चोरी लगाई, फिर क्योंकर झूठ समझ कन्या ब्याह दी, यह तुम मुझे बुझाके कहो।

श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, सुनिए मैं सब समझाकर कहता हूँ। सत्राजीत एक यादव था तिसने बहुत दिन तक सूरज की अति कठिन तपस्या की, तब सूरज देवता ने प्रसन्न हो उसे निकट बुलाय मनि देकर कहा कि सुमंत है इस मनि का नाम, इसमें है सुख सपत का विश्राम। सदा इसे मानियो और बल तेज में मेरे समान जानियो। जो तू इसे जप, तप, संजम, कर ध्यावेगा तो इससे मुँह माँगा फल पावेगा। जिस देस नगर घर में यह जावेगा, तहाँ दुख दरिद्र काल कभी न आवेगा। सर्वदा सुकाल रहेगा औ ऋद्धि सिद्धि भी रहैगी।

महाराज, ऐसे कह सूरज देवता ने सत्राजीत को बिदा किया। वह मनि ले अपने घर आया। आगे प्रातही उठ वह प्रातस्नान कर संध्या तर्पन से निचिंत हो, नित चंदन, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य सहित मनि की पूजा किया करै और विस मनि से जो आठभार सोना निकले सो ले और प्रसन्न रहै। एक दिन पूजा करते करते सत्राजीत ने मनि की शोभा औ कांति देख

निज मन में बिचारा कि यह मनि श्रीकृष्णचंद को लेजाकर दिखाइए तो भला।

यों बिचार मनि कंठ में बाँध सत्राजीत यदुबंसियों की सभा को चला। मनि का प्रकास दूर से देख सब यदुबंसी खड़े हो श्रीकृष्णजी से कहने लगे कि महाराज, तुम्हारे दरसन की अभिलाषा किये सूरज चला आता है, तुमको ब्रह्मा, रुद्र, इंद्रादि सब देवता ध्यावते हैं औ आठ पर ध्यान धर तुम्हारा जस गावते हैं। तुम हौ आदिपुरुष अविनासी, तुम्हें नित सेवती है कमला मई दासी। तुम हो सब देवों के देव, कोई नहीं जानता तुम्हारा भेव। तुम्हारे गुन औ चरित्र हैं अपार, क्यौं प्रभु छिपोगे आय संसार। महाराज, जब सत्राजीत को आता देख सब यदुबंसी यों कहने लगे, तब हरि बोले कि यह सूरज नहीं सत्राजीत यादव है। इसने सूरज की तपस्या कर एक मनि पाई है, उसका प्रकाश सूरज के समान है, वही मनि बाँधे वह चला आता है।

महाराज, इतनी बातें जब तक श्रीकृष्णजी कहैं तब तक वह आय सभा में बैठा, जहाँ यादव सारे पासे खेल रहे थे। मनि की कांति देख सबका मन मोहित हुआ औ श्रीकृष्णचंद भी देख रहे, तदं सत्राजीत कुछ मनहीं मन समझ उस समय बिदा हो अपने घर गया। आगे वह मनि गले में बाँध* नित आवे। एक दिन सब यदुबंसियों ने हरि से कहा कि महाराज, सत्राजीत से मनि ले राजा उग्रसेन को दीजै औ जग में जस लीजै, यह मनि इसे नहीं फबती, रा के जोग है।

इस बात के सुनते ही श्रीकृष्णजी ने हँसते हँसते सत्राजीत से

कहा कि यह मनि राजाजी को दो और संसार में जस बड़ाई लो। देने का नाम सुनतेही वह प्रनाम कर चुपचाप वहाँ से उठ सोच बिचार करता अपने भाई के पास जा बोला कि आज श्रीकृष्णजी ने मुझसे मनि माँगी और मैंने न दी। इतनी बात जो सत्राजीत के मुँह से निकली तो क्रोध कर उसके भाई प्रसेन ने वह मनि ले अपने गले में डाली औ शस्त्र लगाय घोड़े पर चढ़ अहेर को निकला। महावन में जाय धनुष चढ़ाय लगा साबर, चीतल, पाढ़े, रीछ औ मृग मारने। इसमें एक हिरन जो उसके आगे से झपटा, तो इसने भी खिजलायके विसके पीछे घोड़ा दपटा औ चला चला अकेला कहाँ पहुँचा कि जहाँ जुगानजुग की एक बड़ी औंड़ी गुफा थी।

मृग औ घोड़े के पाँव की आहट पाय उसमें से एक सिंह निकला। वह इन तीनों को मार मनि ले फिर उस गुफा में बढ़ गया। मनि के जातेही उस महाअंधेरी गुफा में ऐसा प्रकाश हुआ कि पाताल तक चाँदना हो गया। वहाँ जामवंत* नाम रीछ जो श्रीरामचंद्र के साथ रामावतार में था, सो त्रेतायुग से तहाँ कुटुंब समेत रहा था, वह गुफा में उजाला देख उठ धाया औ चला चला सिंह के पास आया। फिर वह सिंह को मार मनि ले अपनी स्त्री के निकट गया। विसने मनि ले अपनी पुत्री के पालने में बाँधी। वह विसे देख नित हँस हँस खेला करै औ सारे स्थान में आठ पहर प्रकास रहै। इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, मनि यों गई औ प्रसेन की यह गति भई। तब प्रसेन के साथ जो लोग गये थे तिन्होंने आ सत्राजीत से कहा कि महाराज,

---

*(ख) 'जांबुवान'

हमकौं त्याग अकेलौ धायौ। जहाँ गयौ तहाँ खोज न पायौ॥
कहत न बने ढूँढ़ फिर आए। कहूँ प्रसेन न बन में पाए॥

इतनी बात के सुनतेही सत्राजीत खाना पीना छोड़ अति उदास हो चिंता कर मनहीं मन कहने लगा कि यह काम श्रीकृष्ण का है जो मेरे भाई को मनि के लिए मार, मनि ले घर में आय बैठा है। पहले मुझसे माँगता था मैंने न दी, अब उसने यों ली। ऐसे वह मनही मन कहै और रात दिन महा चिंता में रहै। एक दिन वह रात्रि समै स्त्री के पास सेज पर तन छीन, मन मलीन, मष्ट मारे बैठा मनही मन कुछ सोच बिचार करता था कि उसकी नारी ने कहा—

कहा कंत मन सोचत रहौ। मोंसों भेद आपनो कहौ॥

सत्राजीत बोला कि स्त्री से कठिन बात का भेद कहना उचित नहीं, क्यौंकि इसके पेट में बात नहीं रहती। जो घर में सुनती है सो बाहर प्रकाश कर देती है। यह अज्ञान, इसे किसी बात का ज्ञान नहीं, भला हो कै बुरा। इतनी बात के सुनतेही सत्राजीत की स्त्री खिजलाकर बोली कि मैंने कब कोई बात घर में सुन बाहर कही है जो तुम कहते हो, क्या सब नारी समान होती हैं। यों सुनाय फिर उसने कहा कि जब तक तुम अपने मन की बात मेरे आगे न कहोगे, तब तक मैं अन्न पानी भी न खाऊँगी। यह बचन नारी से सुन सत्राजीत बोला कि झूठ सच्च की तो भगवान जाने पर मेरे मन में एक बात आई है, सो मैं तेरे आगे कहता हूँ परंतु तू किसूके सोंही मत कहियो। उसकी स्त्री बोली—अच्छा मैं न कहूँगी।

सत्राजीत कहने लगा कि एक दिन श्रीकृष्णजी ने मुझसे

मनि मांगी और मैंने न दी, इससे मेरे जी में आता है कि उसीने मेरे भाई को बन में जाय मारा औ मनि ली। यह उसी का काम है दूसरे की सामर्थ नहीं जो ऐसा काम करे।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, बात के सुनतेही उसे रात भर नींद न आई और उसने सात पाँच कर रैन गँवाई। भोर होतेही उसने जा सखी सहेली और दासी से कहा कि श्रीकृष्णजी ने प्रसेन को मारा औ मनि ली। यह बात रात मैंने अपने कंत के मुख सुनी है पर तुम किसी के आगे मत कहियो। वे वहाँ से तो भला कह चुपचाप चली आईं, पर अचरजकर एकांत बैठ आपस में चरचा करने लगीं, निदान एक दासी ने यह बात श्रीकृष्णचंद्र के रनवास में जा सुनाई। सुनतेही सबके जी में आया कि जो सत्राजीत की स्त्री ने यह बात कही है तो झूठ न होगी। ऐसे समझ, उदास हो सब रनवास श्रीकृष्ण को बुरा कहने लगा। इस बीच किसीने आय श्रीकृष्णजी से कहा कि महाराज, तुम्हें तो प्रसेन के मारने औ मनि के लेने का कलंक लग चुका, तुम क्या बैठ रहे हो, कुछ इसका उपाय करो।

इतनी बात के सुनते ही श्रीकृष्णजी पहले तो घबराए, पीछे कुछ सोच समझ वहाँ आए, जहाँ उग्रसेन, बासुदेव औ बलराम सभा में बैठे थे और बोले कि महाराज, हमें सब लोग यह कलंक लगाते हैं कि कृष्ण ने प्रसेन को मार मनि ले ली। इससे आपकी आज्ञा ले प्रसेन और मनि के ढूँढ़ने को जाते हैं, जिससे यह अपजस छूटै। यों कह श्रीकृष्णजी वहाँ से आय कितने एक यदुबंसियों और प्रसेन के साथियों को साथ ले बन को चले। कितनी एक दूर जाय देखें तो घोड़ों के चरन चिह्न दृष्ट पड़े,

विन्हीं को देखते देखते वहाँ जाय पहुँचे जहाँ सिंह ने तुरंग समेत प्रसेन को मार खाया था। दोनों की लोथ और सिंह के पात्रों का चिह्न देख सबने जाना कि उसे सिंह ने मार खाया।

यह समझ मनि न पाय श्रीकृष्णचंद सबको साथ लिये लिये वहाँ गये, जहाँ वह औंड़ी अँधेरी महा भयावनी गुफा थी। उनके द्वार पर देखते क्या हैं कि सिंह मरा पड़ा है पर मनि वहाँ भी नहीं। ऐसा अचरज देख सब श्रीकृष्णजी से कहने लगे कि महाराज, इस बन में ऐसा बली जंतु कहाँ से आया जो सिंह को मार मनि ले गुफा॰ में पैठा। अब इसका कुछ उपाय नहीं, जहाँ तक ढूँढ़ने का धर्म था तहाँ तक आपने ढूँढ़ा। तुम्हारा कलंक छूटा, अब नाहर के सिर अपजस पड़ा।

श्रीकृष्णजी बोले—चलो इस गुफा में धसके देखें कि नाहर को मार मनि कौन ले गया। वे सब बोले कि महाराज, जिस गुफा का मुख देखे हमें डर लगता है विसमें धसेंगे कैसे? बरन हम तुमसे भी विनती कर कहते हैं कि इस महाभयावनी गुफा में आप भी न जाइये, अब घर को पधारिये। हम सब मिल नगर में कहैंगे कि प्रसेन को मार सिंह ने मनि ली औ सिंह को मार मनि ले कोई जंतु एक अति डरावनी औंड़ी गुफा में गया, यह हम सब अपनी आँखों देख आए। श्रीकृष्णचंद बोले मेरा मन मनि में लगा है, मैं अकेला गुफा में जाता हूँ, दस दिन पीछे आऊँगा, तुम दस दिन तक यहाँ रहियो, इसमें हमें बिलंब होय तो घर जाय संदेसा कहियो। महाराज, इतनी बात कह हरि उस अँधेरी भयावनी गुफा में पैठे और चले चले वहाँ पहुँचे जहाँ

॰(ख) में 'गुहा'

जामवंत सोता था औ उसकी स्त्री अपनी लड़की को खड़ी पालने में झुलाती थी।

वह प्रभु को देख भय खाय पुकारी औ जामवंत जागा, तो धाय हरि से आय लिपटा औ मल्लयुद्ध करने लगा। जब उसका कोई दाव औ बल हरि पर न चला तव मनही मन विचारकर कहने लगा कि मेरे बल के तो हैं लक्षमन राम और इस संसार में ऐसा बली कौन है जो मुझसे करे संग्राम। महाराज, जामवंत मनही मन ज्ञान से यों बिचार प्रभु का ध्यान कर,

ठाढ़ौ उसरि जोरकै हाथ। बोल्यौ दरस देहु रघुनाथ॥
अंतरजामी, मैं तुम जाने। लीला देखतही पहिचाने॥
भली करी लीनौं औतार। करिहौ दूर भूमि कौ भार॥
त्रेतायुग तें इहि ठां रह्यौ। नारद भेद तुम्हारौ कह्यौ॥
मनि के काजे प्रभु इत ऐहैं। तबही तोकौं दरसन देहैं॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा कि हे राजा, जिस समय जामवंत ने प्रभु को जान यों बखान किया, तिसी काल श्रीमुरारी भक्तहितकारी ने जामवंत की लगन देख मगन हो, राम का भेष कर, धनुष बान धर दरसन दिया। आगे जामवंत ने अष्टांग प्रनाम कर, खड़े हो, हाथ जोड़ अति दीनता से कहा कि हे कृपासिन्धु दीनबन्धु, जो आपकी आज्ञा पाऊँ तो अपना मनोरथ कह सुनाऊँ। प्रभु बोले—अच्छा कह। तब जामवंत ने कहा कि हे पतितपावन दीनानाथ, मेरे चित्तमें यों है कि यह कन्या जामवंती* आप को ब्याह दूँ औ जगत में जस बड़ाई लूँ। भगवान ने कहा—जो तेरी इच्छा में ऐसे आया तो हमें भी

* (क) में 'जामवती', (ख) में 'जाम्बुवती'

प्रमान है। इतना बचन प्रभु के मुख से निकलतेही जामवंत ने पहले तो श्रीकृष्णचंद को चंदन, अक्षत, पुष्प धूप, दीप, नैवेद्य ले पूजा की, पीछे वेद की विध से अपनी बेटी ब्याह दी और उसके यौतुक में वह मनि भी धर दी।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव मुनि बोले कि हे राजा, श्रीकृष्णचंद आनंदकंद तो मनि समेत जामवंती को ले यों गुफा से चले और जो यादव गुफा के मुँह पर प्रसेन औ श्रीकृष्ण के साथी खड़े थे, अब तिनको कथा सुनिये। गुफा के बाहर उन्हें जब अट्ठाइस दिन बीते औ हरि न आए, तब वे वहाँ से निरास हो अनेक प्रकार की चिन्ता करते और रोते पीटते द्वारका में आए। ये समाचार पाय सब यदुबंसी निपट घबराए औ श्रीकृष्ण का नाम ले ले महाशोक कर कर रोने पीटने लगे औ सारे रनवास में कुहराम पड़ गया। निदान सब रानियाँ अति व्याकुल हो तन छीन मन मलीन राजमंदिर से निकल रोती पीटती वहाँ आईं जहाँ नगर के बाहर एक कोस पर देवी का मंदिर था।

पूजा कर, गौर को मनाय, हाथ जोड़, सिर नाय कहने लगीं—हे देवी, तुझे सुर, नर, मुनि सब ध्यावते हैं औ तुझसे जो बर माँगते हैं सो पावते हैं। तू भूत, भविष्य, वर्तमान की सब बात जनती है, वह श्रीकृष्णचंद आनंदकंद कब आवेंगे। महाराज, बस रानियाँ तो देवी के द्वार धरना दे यों मनाय रही थीं औ उग्रसेन, बासुदेव, बलदेव आदि सब यादव महाचिन्ता में बैठे थे कि इस बीच श्रीकृष्ण अविनासी द्वारकाबासी हँसते हँसते जामवंती को लिये आय राजसभा में खड़े हुए। प्रभु का चंदमुख देख सबको अनंद हुआ औ यह शुभ समाचार पाय सब रानियाँ

भी देवी पूज घर आईं और मंगलाचार करने लगीं। इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, श्रीकृष्णजी ने सभा में बैठते ही सत्राजीत को बुला भेजा औ वह मनि देकर कहा कि यह मनि हमने न ली थी, तुमने झूठमूठ हमें कलंक दिया था।

यह मनि जामवंत ही लीनी। सुता समेत मोहि तिन दीनी॥
मनि लै तबहि चल्यौ सिरनाय। सत्राजित मन सोचतु जाय॥
हरि अपराध कियो मैं भारी। अनजाने दीनी कुलगारी॥
जादौपति कौं कलंक लगायौ। मनि के काजे बैर बढ़ायो॥
अब यह दोष कटे सो कीजै। सतिभामा मनि कृष्णहि दीजै॥

महाराज, ऐसे मनही मन सोच विचार करता, मनि लिये, मन मारे सत्राजीत अपने घर गया और उसने सब अपने जी का विचर स्त्री से कह सुनाया। विसकी स्त्री बोली—स्वामी, यह बात तुमने अच्छी बिचारी। सतिभामा श्रीकृष्ण को दीजे औ जगत में जस लीजे। इतनी बात के सुनतेही सत्राजीत ने एक ब्राह्मन को बुलाय, शुभलग्न मुहूर्त्त ठहराय, रोली, अक्षत, रुपया, नारियल एक थाली में धर पुरोहित के हाथ श्रीकृष्णचंद के यहाँ टीका भेज दिया। श्रीकृष्णजी बड़ी धूमधाम से मौड़ बाँध ब्याहन आए। तब सत्राजीत ने सब रीति भाँति कर वेद की विधि से कन्यादान किया और बहुत सा धन दे यौतुक में विस मनि को भी धर दिया।

मनि को देखतेही श्रीकृष्णजी ने उसमें से निकाल बाहर किया और कहा कि यह मनि हमारे किसी काम की नहीं क्योंकि तुमने सूरज की तपस्या कर पाई। हमारे कुल में श्रीभगवान छुड़ाय और देवता को दी वस्तु नहीं लेते। यह तुम अपने घर में रक्खौ। महाराज, श्रीकृष्णचंदजी के मुख से इतनी बात

निकलतेही, सत्राजीत मनि ले लजाय रहा औ श्रीकृष्णजी सतिभामा को ले बाजे गाजे से निज धाम पधारे औ आनंद से सतिभामा समेत राजमंदिर में जा बिराजे।

इतनी कथा सुन राजा परीक्षित ने श्रीशुकदेवजी पूछा कि कृपानिधान, श्रीकृष्णजी को कलंक क्यों लगा सो कृपा कर कहो। शुकदेवजी बोले—राजा,

चाँद चौथ को देखियौ, मोहन भादौ मास।
तासे लग्यौ कलंक यह, अति मन भयौ उदास॥

और सुनौ

जो भादौ की चौथ कौ, चाँद निहारे कोय।
यह प्रसंग श्रवननि सुने, ताहि कलंक न होय॥

———

अठावनवाँ अध्याय

श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, मनि के लिये जैसे सतधन्वा सत्राजीत को मार, मनि ले अक्रूर को दे द्वारका छोड़ भागा, तैसे मैं कथा कहता हूँ तुम चित्त दे सुनो। एक समै हस्तिनापुर से आय किसीने बलराम सुखधाम औ श्रीकृष्णचंद आनंदकंद से यह सँदेसा कहा, कि

पंडौ न्यौते अंधसुत, घर के बीच सुवाय।
अर्द्धरात्र चहुँ ओर ते, दीनी आग लगाय॥

इतनी बात के सुनते ही दोनों भाई अति दुख पाय, घबराय, ततकाल दारुक सारथी से अपना रथ मँगाय, तिसपर चढ़ हस्तिनापुर को गए औ रथ से उतर कौरों की सभा जा खड़े रहे। वहाँ देखते क्या हैं कि सब तन छीन मन मलीन बैठे हैं। दुर्योधन मनही मन कुछ सोचता है, भीष्म नैनों से जल मोचता है, धृतराष्ट्र बड़ा दुख करता है, द्रोनाचार्य की भी आँखों से पानी चलता है। विदूरथ जी ही जी पछताय, गँधारी बैठी उसके पास आय, और भी जो कौरों की स्त्रियाँ थीं सो भी पाँडवों की सुध कर रो रही थीं औ सारी सभा शोकमय हो रही थी। महाराज, वहाँ की यह दसा देख श्रीकृष्ण बलरामजी भी उनके पास जा बैठे औ इन्होंने पाँडवों का समाचार पूछा पर किसीने कुछ भेद न कहा, सब चुप हो रहे।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज, श्रीकृष्ण बलरामजी तो पाँडवों के जलने के समाचार पाय

हस्तिनापुर को गये औ द्वारका में सतधन्वा नाम एक यादव था कि जिसे पहले सतिभामा माँगी थी तिसके यहाँ अक्रूर औ कृतवर्मा मिलकर गये और दोनों ने उससे कहा कि हस्तिनापुर को गये श्रीकृष्ण बलराम, अब आय पड़ा है तेरा दाँव सत्राजीत से तू अपना बैर ले, क्यौंकि विसने तेरी बड़ी चूक की, जो तेरी माँग श्रीकृष्ण को दी औ तुझे गाली चढ़ाई, अब यहाँ उसका कोई नहीं है सहाई। इतनी बात के सुनतेही सतधन्वा अति क्रोध कर उठा और रात्र समै सत्राजीत के घर जा ललकारा। निदान छल बल कर उसे मार वह मनि ले आया। तब सतधन्वा अकेला घर में बैठ कुछ सोच विचार मनही मन पछताय कहने लगा—

मैं यह वैर कृष्ण सों कियौ। अक्रूर को मतौ सुन लियौ॥
कृतवर्मा अक्रूर मिल, मतौ दियौ मोहि आय।
साध कहै जो कपट की, तासों कहा बसाय॥

महाराज, इधर सतधन्वा तो इस भाँति पछताय, बार बार कहता था कि होनहार से कुछ न बसाय, कर्म की गति किसीसे जानी नहीं जाय, और उधर सत्राजीत को मरा निहार, उसकी नारि रो रो कंत कंत कर उठी पुकार। उसके रोने की धुन सुन सब कुटुंब के लोग क्या स्त्री क्या पुरुष अनेक अनेक भाँति की बातें कह कह रोने पीटने लगे औ सारे घर में कुहराम पड़ गया। पिता का मरना सुन उसी समै आय, सतिभामाजी सबको समझाय बुझाय बाप की लोथ तेल में डलवाय, अपना रथ मँगवाय, तिसपर चढ़ श्रीकृष्णचंद आनंदकंद के पास चलीं औ रात दिन के बीच जा पहुँचीं।

देखतेही उठ बोले हरी। घर है कुशल क्षेम सुंदरी॥

सतिभामा कहि जोरे हाथ । तुम बिन कुशल कहाँ यदुनाथ ॥
हमहिं बिपत सतधन्वा दई । मेरो पिता हत्यौ मनि लई ॥
धरे तेल में सुसर तिहारे । करौ दूर सब सूल हमारे ॥

इतनी बात कह सतिभामाजी श्रीकृष्ण बलदेवजी के सोंही खड़ी हो हाय पिता हाय पिता कर धायमार रोने लगीं । तिनका रोना सुन श्रीकृष्ण बलरामजी ने भी पहले तो अति उदास हो रोकर लोक रीति दिखाई, पीछे सतिभामा को आसा भरोसा दे, ढाढ़स बँधाया वहाँ से साथ ले द्वारका में आए । श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, द्वारका में आते ही श्रीकृष्णचंद ने सतिभामा को महादुखी देख प्रतिज्ञा कर कहा कि सुंदरि, तुम अपने मन में धीर धरो और किसी बात की चिंता मत करो । जो होना था सो तो हुआ पर अब मैं सतधन्वा को मार तुम्हारे पिता का बैर लूँगा, तब मैं और काम करूँगा ।

महाराज, रामकृष्ण के आते ही सतधन्वा अति भय खाय घर छोड़ मनही मन यह कहता कि पराए कहे मैंने श्रीकृष्णजी से बैर किया, अब सरन किसकी लूँ, कृतबर्मा के पास आया और हाथ जोड़, अति बिनती कर बोला कि महाराज, आप के कहे मैंने किया यह काम अब मुझपर कोपे हैं श्रीकृष्ण औ बलराम । इससे मैं भागकर तुम्हारी सरन आया हूँ, मुझे कहीं रहने को ठौर बताइये । सतधन्वा से यह बात सुन कृतवर्मा बोला कि सुनो हमसे कुछ नहीं हो सकता । जिसका बैर श्रीकृष्णचंद से भया, सो नर सबही से गया । तू क्या नहीं जानता था कि हैं अति बली मुरारि, तिनसे बैर किये होगी हार । किसी के कहे से क्या हुआ, अपना बल बिचार काम क्यों न किया ? संसार की रीति है कि बैर, ब्याह

औ प्रीति समान ही से कीजे। तू हमारा भरोसा मत रख, हम श्रीकृष्णचंद आनंदकंद के सेवक हैं, विनसे बैर करना हमें नहीं सोभता। जहाँ तेरे सींग समाय तहाँ जा।

महाराज, इतनी बात सुन सतधन्वा निपट उदास हो वहाँ से चल अक्रूर के पास आया। हाथ बाँध सिर नाय, विनती कर हाहा खाय कहने लगा, कि प्रभु तुम हो यादव पति ईस, तुम्हें मानके सब निवावते हैं सीस। साध दयाल धरन तुम धीर, दुख सह आप हरते हो पर पीर। वचन कहे की लाज है तुम्हें, अपनी सरन रक्खो तुम हमें। मैंने तुम्हारा ही कहा मान यह काम किया, अब तुम ही कृष्ण के हाथ से बचाओ।

इतनी बात के सुनते ही अक्रूरजी ने सतधन्वा से कहा कि तू बड़ा मूरख है जो हमसे ऐसी बात कहता है, क्या तू नहीं जानता कि श्रीकृष्णचंद सबके करता दुखहरता हैं, उनसे बैर कर संसार में कब कोई रह सकता है। कहनेवाले का क्या बिगड़ा, अब तो तेरे सिर आन पड़ी। कहा है, सुर नर मुनि की यही है रीति, अपने स्वारथ के लिए करते हैं प्रीति। और जगत में बहुत भाँति के लोग हैं, सो अनेक अनेक प्रकार की बातें अपने स्वारथ की कहते हैं, इससे मनुष्य को उचित है किसी के कहे पर न जाय, जो काम करे तिसमें पहले अपना भला बुरा विचार ले, पीछे उस काज में पाँव दे। तूने समझ बूझकर किया है काम, अब तुझे कहीं जगत में रहने को नहीं है धाम। जिसने श्रीकृष्ण से बैर किया, वह फिर न जिया। जहाँ भागके रहा तहाँ मारा गया। मुझे मरना नहीं जो तेरा पक्ष करूँ, संसारमें जी सबको प्यारा है।

महाराज; अक्रूरजी ने जब सतधन्वा को यों रूखे सूखे बचन

सुनाये, तब तो वह निरास हो जाने की आस छोड़, मनि अक्रूर-जी के पास रख, रथ पर चढ़, नगर छोड़ भागा और उसके पीछे रथ चढ़ श्रीकृष्ण बलरामजी भी उठ दौड़े औ चलते चलते इन्होंने उसे सौ योजन पर जाय लिया। इनके रथ की आहट पाय सतधन्वा अति घबराय रथ से उतर मिथिलापुरी में जा बढ़ा।

प्रभु ने उसे देख क्रोध कर सुदरसन चक्र को आज्ञा की—तू अभी सतधन्वा का सिर काट। प्रभु की आज्ञा पाते ही सुदरसन चक्र ने उसका सिर जा काटा। तब श्रीकृष्णचंद ने उसके पास जाय मनि ढूँढ़ी पर न पाई, फिर बलदेव जी से कहा कि भाई, सतधन्वा को मारा औ मनि न पाई। बलरामजी बोले कि भाई, वह मनि किसी बड़े पुरुष ने पाई, तिसने लाय नहीं दिखाई। वह मनि किसी के पास छिपने की नहीं, तुम देखियो, निदान प्रगटेगी कहीं न कहीं।

इतनी बात कह बलदेवजी ने श्रीकृष्णचंद से कहा कि भाई, अब तुम तो द्वारकापुरी को सिधारो औ हम मनि के खोजने को जाते हैं, जहाँ पावेंगे तहाँ से ले आवेंगे।

इतनी कथा कह श्री शुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज, श्रीकृष्णचंद आनंदकंद तो सतधन्वा को मार द्वारकापुरी पधारे औ बलराम सुखधाम मनि के खोजने को सिधारे। देस देस नगर नगर गाँव गाँव में ढूँढ़ते ढूँढ़ते बलदेवजी चले चले अजोध्यापुरी में जा पहुँचे। इनके पहुँचने के समाचार पाय अजोध्या का राजा दुरयोधन उठ धाया। आगे बढ़ भेटकर भेट दे प्रभु को बाजे गाजे से पाटंबर के पाँवड़े डालता निज मंदिर में ले आया। सिंहासन पर बिठाय अनेक प्रकार से पूजा कर भोजन करवाय,

अति बिनती कर सिर नाय हाथ जोड़ सनमुख खड़ा हो बोला—कृपासिंधु, आपका आना इधर कैसे हुआ सो कृपा कर कहिये।

महाराज, बलदेवजीने उसके मन की लगन देख मगन हो अपने जाने का सब भेद कह सुनाया। इनकी बात सुन राजा दुरयोधन बोला कि नाथ, वह मनि कहीं किसीके पास न रहैगी, कभी न कभी आपसे आप प्रकाश हो रहेगी। यों सुनाय फिर हाथ जोड़ कहने लगा कि दीनदयाल, मेरे बड़े भाग जो आपका दरसन मैंने घर बैठे पाया और जन्म जन्म का पाप गँवाया। अब कृपा कर दास के मन की अभिलाषा पूरी कीजे और कुछ दिवस रह सिष्य कर गदा युद्ध सिखाय जग में जस लीजे, महाराज, दुरजोधन से इतनी बात सुन बलरामजी ने उसे सिष्य किया और कुछ दिन वहाँ रह सब गदा युद्ध की विद्या सिखाई, पर मनि वहाँ भी सारे नगर में खोजी औ न पाई। आगे श्रीकृष्णजी के पहुँचने के उपरांत कितने एक दिन पीछे बलरामजी भी द्वारका नगरी में आए, तो कृष्णचंदजी ने सब यादौं साथ ले सत्राजीत को तेल से निकाल अग्नि संस्कार किया औ अपने हाथों दाह किया।

जब श्रीकृष्णजी क्रियाकर्म से निचिन्त हुए तब अक्रूर औ कृतवर्मा कुछ आपस में सोच बिचारकर, श्रीकृष्ण के पास आय, उन्हें एकांत ले जाय, मनि दिखाय कर बोले कि महाराज, यादव सब बहरमुख भए औ माया में मोह गए। तुम्हारा सुमरन ध्यान छोड़ धनांध हो रहे हैं, जो ये अब कुछ कष्ट पावें, तो ये प्रभु की सेवा में आवें। इसलिये हम नगर छोड़ मनि ले भागते हैं, जद हम इनसे आपका भजन सुमरन करावेंगे, तभी द्वारकापुरी में आवेंगे। इतनी बात कह अक्रूर औ कृतवर्मा सब कुटुंब समेत

आधी रात को श्रीकृष्णचंद के भेद में द्वारकापुरी से भागे, ऐसे कि किसी ने न जाना कि किधर गये। भोर होते ही सारे नगर में यह चरचा फैली कि न जानिये रात की रात में अक्रूर औ कृतवर्मा कुटुँब समेत किधर गये और क्या हुए।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, इधर द्वारकापुरी में तो नित घर घर यह चरचा होने लगी और उधर अक्रूर जी प्रथम प्रयाग में जाय, मुडन करवाय, त्रिवेनी न्हाय, बहुत सा दान पुन्य कर, तहाँ हरि पैंड़ी बंधवाय गया को गये। वहाँ भी फलगू नदी के तीर बैठ शास्त्र की रीति से श्राद्ध किया औ गयालियों को जिमाय बहुत ही दान दिया। पुनि गदाधर के दरसन कर तहाँ से चल काशीपुरी में आए। इनके आने का समाचार पाय इधर उधर के राजा सब आय आय भेटकर भेट धरने लगे औ ये वहाँ यज्ञ, दान, तप, व्रत कर रहने लगे।

इसमें कितने एक दिन बीते श्रीमुरारी भक्तहितकारी ने अक्रूर जी का बुलाना जी में ठान, बलरामजी से आनके कहा कि भाई, अब प्रजा को कुछ दुख दीजे और अक्रूरजी को बुलवा लीजे। बलदेवजी बोले—महाराज, जो आपकी इच्छा में आवै सो कीजे औ साधों को सुख दीजे। इतनी बात बलरामजी के मुख से निकलते ही, श्रीकृष्णचंदजी ने ऐसा किया कि द्वारकापुरी में घर घर तप, तिजारी, मिरगी, क्षई, दाद, खाज, आधासीसी, कोढ़, महाकोढ़, जलंधर, भगंदर, कठंदर, अतिसार, आँव, मड़ोड़ा, खाँसी, सूल, अर्द्धांग, सीतांग, झोला, सन्निपात आदि व्याधि फैल गई।

और चार महीने वर्षा भी न हुई, तिससे सारे नगर के नदी, नाले, सरोवर सूख गये। तृन अन्न भी कुछ न उपजा, नभचर,

जलचर, थलचर, जीव, जन्तु, पक्षी औ ढोर लगे व्याकुल हो सूख सूख मरने और पुरबासी मारे भूखों के त्राहि त्राहि करने। निदान सब नगर-निवासी महा व्याकुल हो निपट घबराये। श्रीकृष्णचंद दुखनिकंद के पास आए औ अति गिड़गिड़ाय अधिक अधीनता कर हाथ जोड़ सिर नाय कहने लगे—

हम तौ सरन तिहारी रहैं। कष्ट महा अब क्योंकर सहैं॥
मेघ न बरष्यौ पीड़ा भई। कहा बिधाता ने यह ठई॥

इतना कह फिर कहने लगे कि हे द्वारकानाथ दीनदयाल, हमारे तो करता दुखहरता तुम हो, तुम्हैं छोड़ कहाँ जायँ औ किससे कहैं, यह उपाध बैठे बिठाए में कहाँ से आई और क्यौं हुई सो कृपा कर कहिये।

श्रीशुकदेव मुनि बोले कि महाराज, इतनी बात के सुनते ही श्रीकृष्णचंदजी ने उनसे कहा कि सुनो जिस पुर से साध जन निकल जाता है, तहाँ आपसे आप काल, दरिद्र, दुख आता है। जब से अक्रूरजी इस नगर से गये हैं तभी से यहाँ यह गति हुई है। जहाँ रहते हैं साध सतवादी औ हरिदास तहाँ होता है अशुभ, अकाल, बिपत का नास। इंद्र रखता है हरिभक्तों से सनेह, इसी लिये उस नगर में भली भाँति बरसाता है मेह।

इतनी बात के सुनतेही सब यादव बोल उठे कि महाराज, आपने सच कहा। यह बात हमारे भी जी में आई, क्यौंकि अक्रूर के पिता का सुफलक नाम है, वह भी बड़ा साध, सतबादी, धर्मात्मा है। जहाँ वह रहता है तहाँ कभी दुख दरिद्र औ नहीं होता है अकाल, सदा समय पर बरसता है मेह तिससे होता है सुकाल। और सुनिये कि एक समै काशीपुरी में बड़ा दुरभिक्ष

पड़ा, तब काशी का राजा सुफलक को बुलाय ले गया। महाराज, सुफलक के जातेही उस देस में मेह मन मानता बरसा, समा हुआ औ सब का दुख गया। पुनि काशी पुरी के राजा ने अपनी लड़की सुफलक को ब्याह दी, ये आनंद से वहाँ रहने लगे। तिस राजकन्या का नाम गादिनका* था, तिसी का पुत्र अक्रूर है।

इतना कह सब यादों बोले कि महाराज, हम तो यह बात आगे से जानते थे, अब जो आप आज्ञा कीजे सो करैं। श्रीकृष्णचंद बोले कि अब तुम अति आदर मान कर, अक्रूरजी को जहाँ पाओ तहाँ से ले आओ। यह बचन प्रभु के मुख से निकलतेही जब यादव मिल अक्रूर को ढूंढ़न निकले औ चले चले वारानसी पुरी में पहुँचे, अक्रूर जी से भेटकर, भेट दे, हाथ जोड़ सिरनाय, सनमुख खड़े हो बोले—

चलौ नाथ, बोलत बल स्याम। तुम बिन पुरबासी हैं बिराम॥
जितहीं तुम तितहीं सुख बास। तुम बिन कष्ट दरिद्र निवास॥
यद्यपि पुर में श्रीगोपाल। तऊ कष्ट दै पर्‍यौ अकाल॥
साधनि के बस श्रीपति रहैं। तिनतें सब सुख संपति लहैं॥

महाराज, इतनी बात के सुनते ही अक्रूरजी वहाँ से अति आतुर हो कुटुँब समेत कृतवर्मा को साथ ले, सब यदुबंसियों को लिये बाजे गाजे से चल खड़े हुए और कितने एक दिनों के बीच आ सब समेत द्वारकापुरी में पहुँचे। इनके आने का समाचार पा श्रीकृष्णजी औ बलराम आगे बढ़ आय, इन्हें अति मान सनमान से नगर में लिवाय ले गए। हे राजा, अक्रूरजी के पुरी में प्रवेश करतेही मेह बरसा औ समा हुआ, सारे नगर का दुख

* (ख) में 'गांदिनी' नाम लिखा है।

दरिद्र बह गया, अक्रूरजी की महिमा हुई, सब द्वारकाबासी आनंद मंगल से रहने लगे। आगे एक दिन श्रीकृष्णचंद आनंदकंद ने अक्रूरजी को निकट बुलाय, एकांत ले जायके कहा कि तुमने सत्राजीत की मनि ले क्या की। वह बोला—महाराज, मेरे पास है। फिर प्रभु ने कहा—जिसकी वस्तु तिसे दीजे, औ वह न होय तो विसके पुत्र को सौंपिये, पुत्र न होय तो उसकी स्त्री को दीजिये, स्त्री न होय तो उसके भाई को दीजे, भाई न हो तो उसके कुटुंब को सौंपिये, कुटुंब भी न हो तो उसके गुरुपुत्र को दीजे, गुरुपुत्र न हो तो ब्राह्मन को दीजिये, पर किसी का द्रव्य आप न लीजिये, यह न्याय है। इससे अब तुम्हें उचित है कि सत्राजीत की मनि उसके नाती को दो औ जगत में बड़ाई लो।

महाराज, श्रीकृष्णचंद के मुख से इतनी बात के निकलतेही अक्रूरजी ने मनि लाय प्रभु के आगे धर, हाथ जोड़, अति विनती कर कहा कि दीनानाथ, यह मनि आप लीजे औ मेरा अपराध दूर कीजे, क्यौंकि जो इस मनि से सोना निकला सो ले मैंने तीरथ यात्रा में उठाया है। प्रभु बोले—अच्छा किया। यों कह मनि ले हरि ने सतिभामा को जाय दी औ उसके चित्त की सब चिंता दूर की।

उनसठवाँ अध्याय

श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, एक दिन श्रीकृष्णचंद जगबंधु आनंदकंद जी ने यह विचार किया कि अब चलकर पांडवों को देखिये जो आग से बच जीते जागते हैं। इतनी बात कह हरि कितने एक यदुबंसियों को साथ ले द्वारिकापुरी से चल हस्तिनापुर आए। इनके आने का समाचार पाय, युधिष्ठिर, अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव पाँचों भाई अति हर्षित हो उठ धाए औ नगर के बाहर आय मिल बड़ी आवभगत कर लिवाय घर ले गये।

घर में जातेही कुंती औ द्रौपदी ने पहले तो सात सुहागनों को बुलाय, मोतियों का चौक पुरवाय, तिसपर कंचन की चौकी बिछवाय, उसपै श्रीकृष्ण को बिठाय, मंगलाचार करवाय अपने हाथों आरती उतारी। पीछे प्रभु के पाँव धुलवाय, रसोई में ले जाय षट्रस भोजन करवाया। महाराज, जब श्रीकृष्णचंद भोजन कर पान खाने लगे तब—

कुंती ढिग बैठी कहै बात। पिता बंधु पूछत कुशलात॥
नीके सूरसेन बसुदेव। बंधु भतीजे अरु बलदेव॥
तिसमें प्रान हमारो रहै। तुम बिन कौन कष्टदुख दहै॥
जब जब बिपत परी अति भारी। तब तुम रक्षा करी हमारी॥
अहो कृष्ण तुम परदुख हरना। पाँचों बंधु तुम्हारी शरना॥
ज्यों मृगनी बृक झुंड के त्रासा। त्यों ये अंधसुतन के त्रासा॥

महाराज, जब कुंती यों कह चुकी—

तबहिं युधिष्ठिर जोड़े हाथ। तुम हौ प्रभु यादवपतिनाथ॥
तुमकौं जोगेश्वर नित ध्यावत। शिव विरंच के ध्यान न आवत॥
हमकौं घरही दरसन दीनौ। ऐसो कहा पुन्य हम कीनौ॥
चार मास रहकै सुख देहौ। बरषाऋतु बीते घर जैहौ॥

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, इस बात के सुनतेही भक्तहितकारी श्रीबिहारी सबको आसा भरोसा दे वहाँ रहे औ दिन दिन आनंद प्रेम बढ़ाने लगे। एक दिन राजा युधिष्ठिर के साथ श्रीकृष्णचंद, अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव को लिये, धनुष बान कर गहे, रथ पर चढ़ बन में अहेर को गये। वहाँ जाय रथ से उतर, फेंट बाँध, बाँहें चढ़ाय, सर साध, जंगल झाड़ झाड़ लगे सिंह, बाघ, गेंड़े, अरने, साबर, सूकर, हिरन, रोझ मार मार राजा युधिष्ठिर के सनमुख लाय लाय धरने, औ राजा युधिष्ठिर हँस हँस, रीझ रीझ, ले ले, जो जिसका भक्षन था तिसे देने लगे औ हिरन, रीझ, साबर, रसोई में भेजने।

तिस समै श्रीकृष्णचद औ अर्जुन आखेट करते करते कितनी एक दूर सबसे आगे जाय, एक वृक्ष के नीचे खड़े हुए। फिर नदी के तीर जा के दोनों ने जल पिया। इसमें श्रीकृष्णजी देखते क्या हैं कि नदी के तीर एक अति सुंदरी नवजोबना, चाँदमुखी, चंपकबरनी, मृगनयनी, पिकबयनी, गजगमनी, कटिकेहरी, नख सिख से सिंगार किये, अनंगमद पिये, महाछबि लिये अकेली फिरती है, उसे देखतेही हरि चकित थकित हो बोले—

वह को सुंदरि बिहरति अंग। कौऊ नहीं तासु के संग॥

महाराज, इतनी बात प्रभु के मुख से सुन औ बिसे देख

अर्जुन हड़बड़ाय दौड़कर वहाँ गया जहाँ वह महा सुंदरी नदी के तीर तीर बिहरती थी, और पूछने लगा कि कह सुंदरी, तू कौन है औ कहाँ से आई है और किस लिये यहाँ अकेली फिरती है? यह भेद अपना सब मुझे समझायकर कह। इतनी बात के सुनतेही

सुंदरि कथा कहै आपनी। हौं कन्या हौं सूरजतनी॥
कालिंदी है मेरो नाम। पिता दियो जल में विश्राम॥
रचे नदी में मंदिर आय। मोसों पिता कह्यो समुझाय॥
कीजो सुता नदी ढिग फेरो। आय मिलैगो ह्याँ वर तेरो॥
यदुकुल माहिं कृष्ण औतरे। तो काजे इहि ठाँ अनुसरे॥
आदिपुरुष अविनासी हरी। ता काजै तू है अवतरी॥
ऐसे जबहि तात रवि कह्यौ। तबतें मैं हरिपद को चह्यौ॥

महाराज, इतनी बात के सुनतेही अर्जुन अति प्रसन्न हो बोले कि हे सुंदरी, जिनके कारन तू यहाँ फिरती है, वेई प्रभु अविनासी द्वारकावासी श्रीकृष्णचंद आनंदकंद आय पहुँचे। महाराज ज्यों अर्जुन के मुंह से इतनी बात निकली, त्यों भक्तहितकारी श्रीबिहारी भी रथ बढ़ाय वहाँ जा पहुँचे। प्रभु को देखतेही अर्जुन ने जब विसका सब भेद कह सुनाया, तब श्रीकृष्णचंदजी ने हँसकर झट उसे रथ पर चढ़ाय नगर की बाट ली। जितने में श्रीकृष्णचंद बन से नगर में आवें, तितने में विश्वकर्मा ने एक मंदिर अति सुंदर सबसे निराला, प्रभु की इच्छा देख बना रक्खा। हरि ने आतेही कालिंदी को वहाँ उतारा औ आप भी रहने लगे।

आगे कितने एक दिन पीछे एक समै श्रीकृष्णचंद औ अर्जुन रात्रि की बिरियाँ किसी स्थान पर बैठे थे कि अग्नि ने आय, हाथ जोड़, सिर नाय हरि से कहा—महाराज, मैं बहुत दिन की भूखी

सारे संसार में फिर आई पर खाने को कहीं न पाया, अब एक आस आप की है जो आज्ञा पाऊँ, तो बन जंगल जाय खाऊँ। प्रभु बोले—अच्छा जाय खा। फिर आग ने कहा—कृपानाथ मैं अकेली बन में नहीं जा सकती, जो जाऊँ तो इंद्र आय मुझे बुझाय देगा। यह बात सुन श्रीकृष्णजी ने अर्जुन से कहा कि बंधु तुम जाय अग्नि को चराय आओ. यह बहुत दिन से भूखी मरती है।

महाराज, श्रीकृष्णचंद्रजी के मुख से इतनी बात के निकलतेही अर्जुन धनुष बान ले अग्नि के साथ हुए, और आग बन में जाय भड़की और लगे आम, इमली, बड़, पीपल पाकड़, ताल, तमाल, महुआ, जामन, खिरनी, कचनार, दाख, चिरोंजी, कौला नीबू, बेर आदि सब वृक्ष जलने और

पटकै कांस बांस अति चटके। बन के जीव फिरें मग भटके॥

जिधर देखिये तिधर सारे बन में आग हूहू कर जलती है औ धुआँ मंडलाय आकाश को गया। विस धुएँ को देख इंद्र ने मेघपति को बुलाय के कहा कि तुम जाय अति बरषा कर अग्नि को बुझाय, बन औ वहाँ के पशु पक्षी जीव जंतु को बचाओ। इतनी आज्ञा पाय मेघपति दल बादल साथ ले वहाँ आय, घहराय जों बरसने को हुआ तों अर्जुन ने ऐसे पवनबान मारे कि बादल राई काई हो यों उड़ गये कि जैसे रुई के पहल पौन के झोंके में उड़ जायँ न किसी ने आते देखे न जाते, जों आए तों सहजही बिलाय गये और आग बन झाड़ खंड जलाती जलाती वहाँ आई कि जहाँ मय नाम असुर का मंदिर था। अग्नि को अति रिस भरी आती देख मय महाभय खाय नंगे पाओं गले में कपड़ा डाले हाथ बांधे, मंदिर से निकल सनमुख आय खड़ा हुआ, औ अष्टांग

प्रनाम कर अति गिड़गिड़ायके बोला—हे प्रभु, हे प्रभु, इस आग से बचाय बेग मेरी रक्षा करो।

चरी अग्नि पायौ संतोष। अब तुम मानौं जिन कछु दोष॥
मेरी विनती मन में लाओ। बैसंदर तें मोहि बचाओ॥

महाराज, इतनी बात मय दैत्य के मुख से निकलतेही अग्नि बान बैसंदर ने धरे औ अर्जुन भी सूचक रहे खड़े। निदान वे दोनों मय को साथ ले श्रीकृष्णचंद आनंदकंद के निकट जा बोले कि महाराज,

यह मय असुर आयहै काम। तुम्हारे लये बनैहै धाम॥
अबहीं सुध तुम मय की लेहु। अग्नि बुझाय अभय कर देहु॥

इतनी बात कह अर्जुन ने गांडीव धनुष सर समेत हाथ से भूमि में रक्खा, तब प्रभु ने आग की ओर आँख दबाय सैन की। वह तुरन्त बुझ गई औ सारे बन में सीतलता हुई। फिर श्रीकृष्णचंद अर्जुन सहित मय को साथ ले आगे बढ़े वहाँ जाय मय ने कंचन के मनिमय मंदिर अति सुंदर, सुहावने, मनभावने, छिन भर में बनाय खड़े किये, ऐसे कि जिनकी शोभा कुछ बरनी नहीं जाती, जो देखने को आता सो चकित हो चित्र सा खड़ा रह जाता। आगे श्रीकृष्णजी वहाँ चार महीने बिरमें, पीछे वहाँ से चल कहाँ आए कि जहाँ राजसभा में राजा युधिष्ठिर बैठे थे। आतेही प्रभु ने राजा से द्वारका जाने की आज्ञा माँगी। यह बात श्रीकृष्णचंद के मुख से निकलतेही सभा समेत राजा युधिष्ठिर अति उदास हुए औ सारे रनवास में भी क्या स्त्री क्या पुरुष सब चिंता करने लगे। निदान प्रभु सबको यथायोग्य समझाय बुझाय, आसा भरोसा दे अर्जुन को साथ ले युधिष्ठिर से बिदा हो

हस्तिनापुर से चल हँसते खेलते कितने एक दिनों में द्वारकापुरी आ पहुँचे। इनका आना सुन सारे नगर में आनंद हो गया औ सबका बिरह दुख गया। मात पिता ने पुत्र का मुख देख सुख पाया औ मन का खेद सब गँवाया।

आगे एक दिन श्रीकृष्णजी ने राजा उग्रसेन के पास जाय, कालिंदी का भेद सब समझाय के कहा कि महाराज, भानुसुता कालिंदी को हम ले आए हैं, तुम वेद की बिधि से हमारा उसके साथ व्याह कर दो। यह बात सुन उग्रसेन ने वोंहीं मन्त्री को बुलाय आज्ञा दी कि तुम अबही जाय व्याह की सब सामा लाओ। आज्ञा पाय मन्त्री ने विवाह की सामग्री बात की बात में सब लाय दी। तिसी समैं उग्रसेन बसुदेव ने एक जोतिषी को बुलाय, शुभ दिन ठहराय श्रीकृष्णजी का कालिंदी के साथ वेद की विधि से व्याह किया।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा, कालिंदी का विवाह तो यों हुआ। अब आगे जैसे मित्रबिंदा को हरि लाये औ व्याहा तैसे कथा कहता हूँ, तुम चित दे सुनौ। सूरसेन की बेटी श्रीकृष्णजी की फूफी तिसका नाम राजधिदेवी, उसकी कन्या मित्रविंदा। जब वह व्याहन जोग हुई तब उसने स्वयंबर किया। तहाँ सब देस देस के नरेस गुनवान, रूपनिधान, महाजान, बलवान, सूर बीर, अति धीर बनठन के एक से एक अधिक जा इकट्ठे हुए। ये समाचार पाय श्रीकृष्णचंदजी अर्जुन को साथ ले वहाँ गये औ जाके बीचो बीच स्वयंबर के खड़े हुए।

हरषी सुंदरि देखि मुरारि। हार डार मुख रही निहारि॥

महाराज, यह चरित देख सब देस देस के राजा तो लज्जित

हो मनही मन अनखाने लगे और दुरजोधन ने जाय उसके भाई मित्रसेन से कहा कि बंधु, तुम्हारे मामा का बेटा है हरी, तिसे देख भूली है सुन्दरी। यह लोकविरुद्ध रीति है; इसके होने से जग में हँसाई होगी; तुम जाय बहन को समझाओ कि कृष्ण को न बरै; नहीं तो सब राजाओं की भीड़ में हँसी होयगी। इतनी बात के सुनतेही मित्रसेन ने जाय, बहन को बुझाय के कहा।

महाराज, भाई की बात सुन समझ जों मित्रबिंदा प्रभु के पास से हटकर अलग दूर हो खड़ी हुई तों अर्जुन ने झुककर श्रीकृष्णचंद के कान में कहा - महाराज, अब आप किसकी कान करते हैं, बात बिगड़ चुकी, जो कुछ करना हो सो कीजै, बिलंब न करिये। अर्जुन की बात सुनतेही श्रीकृष्णजी ने स्वयंवर के बीच से झट हाथ पकड़ मित्रबिन्दा को उठाय रथ में बैठाय लिया औ वोंही सबके देखते रथ हाँक दिया। उस काल सब भूपाल तो अपने अपने शस्त्र ले ले घोड़ों पर चढ़ चढ़ प्रभु का आगा घेर लड़ने को जा खड़े रहे औ नगरनिवासी लोग हँस हँस तालियाँ बजाय बजाय, गालियाँ दे दे यों कहने लगे।

फुफूसुता कौं व्याहन आयौ। यह तें कृष्ण भलौ जस पायौ॥

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, जब श्रीकृष्णचंदजी ने देखा कि चारो ओर से जो असुरदल घिर आया है सो लड़े बिन न रहैगा, तब तिन्होंने कै एक बान निखंग से निकाल धनुष तान ऐसे मारे कि वह सब सेना असुरों की छितीछान हो वहाँ की वहाँ बिलाय गई औ प्रभु निर्द्वंद आनंद से द्वारका पहुँचे।

श्रीशुकदेवजी बोले—महाराज, श्रीकृष्णजी ने मित्रविंदा को

तो यों ले जाय द्वारका में ब्याहा। अब आगे जैसे सत्या को प्रभु लाये सो कथा कहता हूँ तुम मन लगाय सुनौं। कौसल देस में नगनजित नाम नरेस तिसकी कन्या सत्या। जब वह ब्याहन जोग हुई तब राजा ने सात बैल अति ऊँचे भयावने बिन नाथे मँगवाय, यह प्रतिज्ञा कर देस में छुड़वाय दिये कि जो इन सातों वृषभों को एक बार नाथ लावेगा उसे मैं अपनी कन्या ब्याहूँगा। महाराज, वे सातों बैल सिर झुकाए, पूँछ उठाए, भौं खूंद खूंद डकारते फिरैं और जिसे पावैं तिसे हनैं।

आगे ये समाचार पाय श्रीकृष्णचंद अर्जुन को साथ ले वहाँ गये औ जा राजा नगनजित के सनमुख खड़े हुए। इनको देखतेही राजा सिंहासन से उतर, अष्टांग प्रनाम कर, इन्हें सिंहासन पर बिठाय, चंदन, अक्षत, पुष्प चढ़ाय, धूप, दीप कर, नैवेद्य आगे धर, हाथ जोड़ सिर नाय, अति विनती कर बोला कि आज मेरे भाग जागे जो शिव विरंच के करता प्रभु मेरे घर आये। यों सुनाय फिर बोला कि महाराज, मैंने एक प्रतिज्ञा की है सो पूरी होनी कठिन थी, पर अब मुझे निहचै हुआ कि वह आपकी कृपा से तुरन्त पूरी होगी। प्रभु बोले कि ऐसी क्या प्रतिज्ञा तूने की है कि जिसका होना कठिन है, वह। राजा ने कहा—कृपानाथ, मैंने सात बैल अननाथे छुड़वाय यह प्रतिज्ञा की है कि जो इन सातो बैल को एक बेर नाथेगा, तिसे मैं अपनी कन्या ब्याहूँगा। श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज,

सुन हरि फैंट बाँध तहँ गए। सात रूप धर ठाढ़े भए॥
काहु न लख्यौ अलख ब्यौहार। सातो नाथे एकहि ब्र॰॥

वे वृषभ, नाथ के नाथने के समय ऐसे खड़े रहे कि जैसे

काठ के बैल खड़े होंय। प्रभु सातो को नाथ एक रस्सी में गाँथ राजसभा में ले आए। यह चरित्र देख सब नगरनिवासी तो क्या स्त्री क्या पुरुष अचरज कर धन्य कहने लगे औ राजा नगनजित ने उसी समैं पुरोहित को बुलाय, वेद की विधि से कन्यादान दिया। तिसके यौतुक में दस सहस्र गाय, नौ लाख हाथी, दस लाख घोड़े, तिहत्तर रथ दे, दास दासी अनगिनत दिये। श्रीकृष्णचंद सब ले वहाँ से जब चले, तब खिजलाय सब राजाओं ने प्रभु को मारग में आन घेरा। तहाँ मारे बानों के अर्जुन ने सबको मार भगाया, हरि आनंद मंगल से सब समेत द्वारकापुरी पहुँचे। उस काल सब द्वारकावासी आगे आय प्रभु को बाजे गाजे से पाटंबर के पाँवड़े डालते राजमंदिर में ले गये औ यौतुक देख सब अचंभे रहे।

नगनजीत की करत बड़ाई। कहत लोग यह बड़ी सगाई ॥
भलौ ब्याह कौसलपति कियौ। कृष्णहिं इतौ दायजौ दियौ ॥

महाराज, नगरनिवासी तो इस ढब की बातें कर रहे थे कि उसी समय, श्रीकृष्णचंद औ बलरामजी ने वहाँ आके राजा नगनजित का दिया हुआ सब दायजा अर्जुन को दिया औ जगत में जस लिया। आगे सब जैसे श्रीकृष्णजी भद्रा को ब्याह लाये सो कथा कहता हूँ, तुम चित लगाय सुनौ। केकय देस के राजा की बेटी भद्रा ने स्वयंबर किया औ देस देस के नरेसों को पत्र लिखे। वे जाय इकट्ठे हुए।

तहाँ श्रीकृष्णचंद भी अर्जुन को साथ ले गये और स्वयंबर के बीच सभा में जा खड़े रहे। जब राजकन्या माला हाथ में लिये सब राजाओं को देखती भालती रूपसागर, जगत-उजागर

श्रीकृष्णचंद के निकट आई तो देखतेही भूल रही औ उसने माला इनके गले में डाली। यह देख उसके मात पिता ने प्रसन्न हो वह कन्या हरि को बेद की बिधि से ब्याह दी। तिसके दायज में बहुत कुछ दिया कि जिसका वारापार नहीं।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, श्रीकृष्णचंद भद्रा को तो यों ब्याह लाए, फिर जैसे प्रभु ने लक्ष्मना को ब्याहा सो कथा कहता हूँ तुम सुनौ। भद्र देस का नरेस अति बली औ वड़ा प्रतापी, तिसकी कन्या लक्ष्मना जब ब्याहन जोग हुई, तब उसने स्वयंबर कर चारों देसों के नरेसों को पत्र लिख लिख बुलाया। वे अति धूमधाम से अपनी अपनी सेना साज वहाँ आए औ स्वयंबर के बीच बड़े बनाव से पांति पांति जा बैठे।

श्रीकृष्णचंदजी भी अर्जुन को साथ लिए तहाँ गये और जो स्वयंबर के बीच जा खड़े भये, तो लछमना ने सबको देख आ श्रीकृष्णजी के गले में माला डाली। आगे उसके पिता ने वेद की विधि से प्रभु के साथ लक्ष्मना का ब्याह कर दिया। सब देस देस के नरेस जो वहाँ आए थे सो महा लज्जित हो आपस में कहने लगे, कि देखें हमारे रहते किस भाँति कृष्ण लक्ष्मना को ले जाता है।

ऐसे कह वे सब अपना अपना दल साज मारग रोक जा खड़े हुए। जों श्रीकृष्णचंद औ अर्जुन लक्ष्मना समेत रथ ले आगे बढ़े, तों तिन्होंने इन्हें आय रोका और युद्ध करने लगे। निदान कितनी एक बेर में मारे बानों के अर्जुन औ श्रीकृष्णजी ने सबको मार भगाया और आप अति आनंद मंगल से नगर द्वारका पहुँचे। इनके जातेही सारे नगर में घर घर—

भई बधाई , मंगलचार । होत वेद •रीति ब्यौहार ॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, इस भाँति श्रीकृष्णचंदजी पाँच ब्याह कर लाए, तब द्वारका में आठो पटरानियों समेत सुख से रहने लगे औ पटरानियाँ आठो पहर सेवा करने लगीं। पटरानियों के नाम रुक्मिनी*, जामवंती, सत्यभामा, कालिंदी, मित्रबिंदा, सत्या, भद्रा, लक्ष्मना ।

* (क), (ख)—दोनों में रोहिनी नाम है पर यह अशुद्ध है। शुद्ध नाम रुक्मिणी है।

साठवाँ अध्याय

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा, एक समय पृथ्वी मनुष तन धारन कर अति कठिन तप करने लगी। तहाँ ब्रह्मा विष्णु, रुद्र इन तीनों देवताओं ने आ विससे पूछा कि तू किस लिये इतनी कठिन तपस्या करती है। धरती बोली—कृपासिन्धु, मुझे पुत्र की वासना है इस कारन महातप करती हूं, दया कर मुझे एक पुत्र अति बलवंत महाप्रतापी बड़ा तेजस्वी दो, ऐसा कि जिसका साम्हना संसार में कोई न करै, न वह किसीके हाथ से मरै।

यह बचन सुन प्रसन्न हो तीनों देवताओं ने बर दे उसे कहा कि तेरा सुत नरकासुर नाम अति बली महाप्रतापी होगा, उससे लड़ कोई न जीतेगा, वह सृष्टि के सब राजाओं को जीत अपने बस करेगा स्वर्गलोक में जाय देवताओं को मार भगाय, अदिति के कुण्डल छीन आप पहनेगा और इंद्र का छत्र छिनाय लाय अपने सिर धरेगा, संसार के राजाओं की कन्या सोलह सहस्र एक सौ लाय अनब्याही घेर रक्खेगा। तब श्री कृष्णचंद सब अपना कटक ले उसपर चढ़ जायँगे और उनसे तू कहैगी इसे मारो, पुनि वे मार सब राजकन्याओं को ले द्वारका पुरी पधारैंगे।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज, तीनों देवताओं ने बर दे जब यों कहा तब भूमि इतना कह चुप हो रही कि मैं ऐसी बात क्यों कहूँगी कि मेरे बेटे को मारो। आगे कितने एक दिन पीछे भूमिपुत्र भौमासुर हुआ, तिसीका नाम नरकासुर भी कहते हैं। वह प्रागुजोतिषपुर

में रहने लगा। उस पुर के चारों ओर पहाड़ों की ओट और जल, अग्नि, पवन का कोट बनाय, सारे संसार के राजाओं की कन्या बलकर छीन छीन, धाय समेत लाय लाय उसने वहाँ रक्खीं। नित उठ उन सोलह सहस्र एक सौ राजकन्याओं के खाने पीने पहरने की चौकसी वह किया करे और बड़े यत्न से उन्हें पलवावे।

एक दिन भौमासुर अति कोप कर पुष्पविमान में बैठ, जो लंका से लाया था, सुरपुर में गया और लगा देवताओं को सताने। जिसके दुख से देवता स्थान छोड़ छोड़ अपना जीव ले ले जिधर तिधर भाग गये, तब वह अदिति के कुंडल औ इन्द्र का छत्र छीन लाया। आगे सब सृष्टि के सुर, नर, मुनियों को अति दुख देने लगा। विसका आचरन सुन श्रीकृष्णचंद्र जगबंधु जी ने अपने जी में कहा—

वाहि मार सुंदरि सब ल्याऊँ। सुरपति छत्र तहीं पहुँचाऊँ॥
जाय अदिति के कुण्डल दैहौं। निर्भय राज इन्द्र को कैहौं॥

इतना कह पुनि श्रीकृष्णचंद्रजी ने सतिभामा से कहा कि हे नारि, तू मेरे साथ चले तो भौमासुर मारा जाय, क्योंकि तू भूमि का अंस है, इस लेखे उसकी माँ हुई। जब देवताओं ने भूमि को पुत्र का बर दिया था तब यह कह दिया था कि जब तू मारने को कहैगी तब तेरा पुत्र मरेगा, नहीं तो किसीसे किसी भाँति मारा न मरेगा। इस बात के सुनतेही सतिभामाजी कुछ मनही मन सोच समझ इतना कह अनमनी हो रहीं कि महाराज, मेरा पुत्र आपका सुत हुआ तुम उसे क्योंकर मारोगे।

प्रभु ने इस बात को टाल कहा कि उसके मारने की तो मुझे कुछ इतनी चिन्ता नहीं पर एक समै मैंने तुन्हैं बचन दिया था जिसे पूरा किया चाहता हूँ। सतिभामा बोली—सो क्या। प्रभु कहने लगे कि एक समय नारदजी ने आय मुझे कल्पवृक्ष का फूल दिया, वह ले मैंने रुक्मिनी को भेजा। यह बात सुन तू रिसाय रही तब मैंने यह प्रतिज्ञा करी कि तू उदास मत हो मैं तुझे कल्पवृक्षही ला दूँगा, सो अपना बचन प्रतिपालने को और तुझे बैकुण्ठ दिखाने को साथ ले चलता हूँ।

इतनी बात के सुनतेही सतिभामाजी प्रसन्न हो हरि के साथ चलने को उपस्थित हुइ, तब प्रभु उसे गरुड़ पर अपने पीछे बैठाय साथ ले चले। कितनी एक दूर जाय श्रीकृष्णचंदजी ने सतिभामा जी से पूछा कि सच कह सुंदरि, इस बात को सुन तू पहले क्या समझ अप्रसन्न हुई थी, उसका भेद मुझे समझायके कह जो मेरे मन का सन्देह जाय। सतिभामा बोली कि महाराज, तुम भौमासुर को मार सोलह सहस्र एक सौ राजकन्या लाओगे तिनमें मुझे भी गिनोगे, यह समझ अनमनी हुई थी।

श्रीकृष्णचंद बोले कि तू किसी बात की चिन्ता मत कर मैं कल्पवृक्ष लाय तेरे घर में रक्खूँगा और तू विसके साथ मुझे नारद मुनि का द न कीजो, फिर मोल ले मुझे अपने पास रखना मैं तेरे सदा अधीन रहूँगा। ऐसेही इन्द्रानी ने इन्द्र को वृक्ष के साथ दान दिया था औ अदिति ने कश्यप को। इस दान के करने से कोई नारी तेरी समान मेरे न होगी। महाराज, इसी भाँति की बातें कहते कहते श्रीकृष्णजी प्रागजोतिषपुर के निकट जा पहुँचे। वहाँ पहाड़ का कोट, अग्नि, जल, पवन की ओट देखतेही प्रभु ने

गरुड़ औ सुदरसन चक्र को आज्ञा की। विन्होंने पल भर में ढाय, बुझाय, बहाय, थाम अच्छा पंथ बनाय दिया।

जों हरि आगे बढ़ नगर में जाने लगे तों गढ़ के रखवाले दैत्य लड़ने को चढ़ आए, प्रभु ने तिन्हें गदा से सहजही मार गिराए। विनके मरने का समाचार पाय मुर नाम राक्षस पाँच सीसवाला, जो उस पुरगढ़ का रखवाला था, सो अति क्रोध कर त्रिशूल हाथ में ले श्रीकृष्णजी पर चढ़ आया औ लगा आँखें लाल लाल कर दाँत पीस पीस कहने कि—

मोतें बली कौन जग और। वाहि देखिहौं मैं या ठौर॥

महाराज, इतना कह मुर दैत्य श्रीकृष्णचंद पर यों दपटा कि जों गरुड़ सर्प पर झपटे। आगे उसने त्रिशूल चलाया, सो प्रभु ने चक्र से काट गिराया। फिर खिजलाय मुर ने जितने शस्त्र हरि पर घाले, तितने प्रभु ने सहजही काट डाले। पुनि वह हकबकाय दौड़कर प्रभु से आय लिपटा औ मल्लयुद्ध करने लगा। निदान कितनी एक बेर में युद्ध करते करते, श्रीकृष्णजी ने सतिभामाजी को महा भयमान जान सुदरसन चक्र से उसके पाँचों सिर काट डाले। धड़ से सिर गिरतेही धमका सुन भौमासुर बोला कि यह अति शब्द काहे का हुआ? इस बीच किसी ने जा सुनाया कि महाराज, श्रीकृष्ण ने आय मुर दैत्य को मार डाला।

इतनी बात के सुनतेही प्रथम तो भौमासुर ने अति खेद किया, पीछे अपने सेनापति को युद्ध करने का आयसु दिया। वह सब कटक साज लड़ने को गढ़ के द्वार पर जा उपस्थित हुआ और विसके पीछे अपने पिता का मरना सुन मुर के सात बेटे जो अति बलवान और बड़े जोधा थे, सो भी अनेक अनेक प्रकार के

अस्त्र शस्त्र धारन कर श्रीकृष्णचंदजी के सनमुख लड़ने को जा खड़े हुए। पीछे से भौमासुर ने अपने सेनापति औ मुर के बेटों से कहला भेजा कि तुम सावधानी से युद्ध करो मैं भी आवता हूँ।

लड़ने की आज्ञा पातेही सब असुरदल साथ ले मुर के बेटों समेत भौमासुर का सेनापति श्रीकृष्णजी से युद्ध करने को चढ़ आया औ एकाएकी प्रभु के चारों ओर सब कटक दल बादल सा जाय छाया। सब ओर से अनेक अनेक प्रकार के अस्त्र शस्त्र भौमासुर के सूर श्रीकृष्णचंद पर चलाते थे औ वे सहज सुभावही काट काट ढेर करते जाते थे। निदान हरि ने श्रीसतिभामाजी को महा भयातुर देख असुर दल को मुर के सात बेटों समेत सुदरसन चक्र से बात की बात में यों काट गिराया कि जैसे किसान ज्वार की खेती को काट गिरावे।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज, मुर के पुत्रों समेत सब सेना कटी सुन, पहले तो, भौमासुर अति चिन्ता कर महा घबराया, पीछे कुछ सोच समझ धीरज कर कितने एक महाबली राक्षसों को अपने साथ लिये, लाल लाल आँखें क्रोध से किये, कसकर फेट बांधे, सर साधे, बकता झकता श्रीकृष्णजी से लड़ने को आय उपस्थित हुआ। जों भौमासुर ने प्रभु को देखा तों उसने एक बार अति रिसाय मूठ की मूठ बान चलाए; सो हरि ने तीन तीन टुकड़े कर काट गिराए, उस काल—

काढ़ खड़ग भौमासुर लियौ। कोपि हंकारि कृष्ण उर दियौ।
करै शब्द अति मेघ समान। अरे गंवार न पावै जान॥
करकस बचन तहाँ उच्चरै। महायुद्ध भौमासुर करै॥

महाराज, वह तो अति बल कर इनपर गदा चलाता था और श्रीकृष्णजी के शरीर में उसकी चोट यों लगती थी कि जों हाथी के अंग में फूलछड़ी। आगे वह अनेक अनेक अस्त्र शस्त्र ले प्रभु से लड़ा औ प्रभु ने सब काट डाले। तब वह फिर घर जाय एक त्रिशूल ले आया औ युद्ध करने को उपस्थित हुआ।

तब सतिभामा टेर सुनाई। अब किन याहि हतौ यदुराई॥
बचन सुनत प्रभु चक्र संभाऱ्यौ। काटि सीस भौमासुर माऱ्यौ॥
कुण्डल मुकुट सहित सिर पऱ्यौ। धर के गिरत शेष थरहऱ्यौ॥
तिहूँ लोक में आनंद भयौ। सोच दुःख सबही को गयौ॥
तासु -जोति हरि देह समानी। जै जै शब्द करैं सुर ज्ञानी॥
घिरे विमान पुहुप बरसावैं। वेद बखानि देव जस गावैं॥

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव मुनि बोले कि महाराज, भौमासुर के मरतेही भूमि औ भौमासुर की स्त्री पुत्र समेत आय प्रभु के सनमुख हाथ जोड़, सिर नवाय, अति बिनती कर कहने लगी– हे जोतीस्वरूप ब्रह्मरूप, भक्तहितकारी तुम साध संत के हेतु धरते हो भेष अनंत, तुम्हारी महिमा, लीला, माया है अपरंपार, तिसे कौन जाने और किसे इतनी सामर्थ है जो बिन कृपा तुम्हारी विसे बखाने। तुम सब देवों के हो देव, कोई नहीं जानता तुम्हारा भेव।

महाराज, ऐसे कह छत्र कुंडल पृथ्वी प्रभु के आगे धर फिर बोली–दीनानाथ, दीनबंधु, कृपासिन्धु, यह सुभगदंत*भौमासुर का बेटा आपकी सरन आया है अब करुना कर अपना कोमल कमल सा कर इसके सीस पर दीजे औ अपने भय से इसे निर्भय कीजे। इतनी बात के सुनतेही करुनानिधान श्रीकान्ह ने करुना

---

* (ख) में केवल "भगदंत है।

कर सुभगदंत के सीस पर हाथ धरा और अपने डर से उसे निडर करा। तब भौमावती भौमासुर की स्त्री बहुत सी भेट हरि के आगे धर, अति बिनती कर हाथ जोड़, सीस झुकाय, खड़ी हो बोली—

हे दीनदयाल, कृपाल, जैसे आपने दरसन दे हम सबको कृतार्थ किया, तैसे अब चलकर मेरा घर पवित्र कीजै। इस बात के सुनतेही अन्तरयामी भक्तहितकारी श्रीमुरारी भौमासुर के घर पधारे। उस काल वे दोनों माँ बेटे हरि को पाटंबर के पाँवड़े डाल घर में ले जाय सिंहासन पर बिठाय, अरघ दै चरनामृत ले अति दीनता कर बोले—हे त्रिलोकीनाथ, आपने भला किया, जो इस महा असुर का बध किया। हरि से विरोध कर किसने संसार में सुख पाया? रावन कुम्भकरन कंसादि ने बैर कर अपना जी गँवाया। और जिसने आप से द्रोह किया तिस तिसका जगत में नामलेवा पानीदेवा कोई न रहा।

इतना कह फिर भौमावती बोली—हे नाथ, अब आप मेरी बिनती मान, सुभगदंत को निज सेवक जान, जो सोलह सहस्र राजकन्या इसके बाप ने अनब्याही रोक रक्खी हैं सो अंगीकार कीजे। महाराज, यों कह उसने सब राजकन्याओंको निकाल प्रभु के सोंही पाँत का पाँत ला खड़ा किया। वे जगत उजागर, रूप-सागर श्रीकृष्णचंद आनंदकंद को देखतेही मोहित हो, अति गिड़-गिड़ाय, हा हा खाय, हाथ जोड़ बोलीं—नाथ जैसे आपने आय हम अबलाओं को इस महादुष्ट की बंध से निकाला, तैसे अब कृपा कर इन दासियों को साथ ले चलिये औ निज सेवा में रखिये तो भला।

यह बात सुन श्रीकृष्णचंद ने विन्हें इतना कह कि हमने तुम्हारे साथ ले चलने को रथ पालकियाँ मँगावे हैं, सुभगदंत की ओर देखा। सुभगदंत प्रभु के मन का कारण समझ अपनी राजधानी में जाय, हाथी घोड़े सजवाय, घुड़बहल औ रथ झम-झमाते जगमगाते जुतवाय, सुखपाल, पालकी, नालकी, डोली, चंडोल, झलाबोर के कसवाय लिवाय लाया। हरि देखते ही सब राजकन्याओं को उनपर चढ़ने की आज्ञा दे, सुभगदंत को साथ ले राजमंदिर में जाय, उसे राजगादी पर बिठाय, राजतिलक विसे निज हाथ से दे, आप बिदा ले जिस काल सब राजकन्याओं को साथ लिए वहाँ से द्वारका को चले तिस समैं की सोभा कुछ बरनी नहीं जाती, कि हाथी बैलों की झलाबोर गंगा जमुनी झूलों की चमक और घोड़ों की पाखरों की दमक औ सुखपाल, पालकी, नालकी, डोली, चडोल, रथ, घुड़बहलों के घटाटोपों की ओप औ उनकी मोतियों की झालरों की जोत सूरज की जोत से मिल एक हो जगमगाय रही थी।

आगे श्रीकृष्णचंद सब राजकन्याओं को लिए कितने दिन में चले चले द्वारकापुरी पहुँचे। वहाँ जाय राजकन्याओं को राजमंदिर में रख, राजा उग्रसेन के पास जाय प्रनाम कर पहले तो श्रीकृष्ण जी ने भौमासुर के मारने और राजकन्याओं के छुड़ाय लाने का सब भेद कह सुनाया। फिर राजा उग्रसेन से बिदा होय प्रभु सतिभामा को साथ ले, छत्र कुडल लिये गरुड़ पर बैठ बैकुँठ को गये। तहाँ पहुँचते ही—

कुँडल दिये अदिति के ईस। छत्र धर्‍यो सुरपति के सीस॥

यह समाचार पाय वहाँ नारद आया, तिससे हरि ने कह

सुनाया, कि तुम जाय इंद्र से कहो जो सतिभामा तुमसे कल्पवृक्ष माँगती है। देखो वह क्या कहता है ? इस बात का उत्तर मुझे ला दो पीछे समझा जायगा। महाराज, इतनी बात श्रीकृष्णचंदजी के मुख से सुन नारदजी ने सुरपति से जाय कहा कि सतिभामा तुम्हारी भौजाई तुमसे कल्पतरु माँगती है, तुम क्या कहते हो सो कहो, मैं उन्हें जाय सुनाऊँ कि इंद्र ने यह कहा। इस बात के सुनतेही इंद्र पहले तो हकबकाय कुछ सोच रहा, पीछे उसने नारदमुनि का कहा सब इंद्रानी से जाय कहा।

इंद्रानी सुन कहै रिसाय। सुरपति तेरी कुमति न जाय॥
तू है बड़ौ मूढ़ पति अँधु। को है कृष्ण कौन को बँधु॥

तुझे वह सुध है कै नहीं, जो उसने ब्रज में तेरी पूजा मेट ब्रजबासियों से गिर पुजवाय, छल कर तेरी पूजा का सब पकवान आप खाया। फिर सात दिन तुझे गिर पर बरसवाय उसने तेरा गर्व गँवाय सब जगत में निरादर किया। इस बात की कुछ तेरे ताईं लाज है कै नहीं। वह अपनी स्त्री की बात मानता है, तू मेरा कहा क्यों नहीं सुनता।

महाराज, जब इंद्रानी ने इंद्र से यों कह सुनाया तब वह अपना सा मुँह ले उलट नारदजी के पास आया और बोला—हे ऋषिराय, तुम मेरी ओर से जाय श्रीकृष्णचंद से कहो कि कल्पवृक्ष नंदन बन तज अनत न जायगा औ जायगा तो वहाँ किसी भाँति न रहेगा। इतना कह फिर समझाके कहियो जो आगे की भाँति अब यहाँ हमसे बिगाड़ न करैं, जैसे ब्रज में ब्रजवासियों को बहकाय गिरि का मिस कर सब हमारी पूजा की सामा खाय गये, नहीं तो महा युद्ध होगा।

यह बात सुन नारदजी ने आय श्रीकृष्णचन्द से इंद्र की बात कही। कह सुनाय के कहा—महाराज, कल्पतरु इंद्र तो देता था पर इंद्रानी ने न देने दिया। इस बात के सुनतेही श्रीमुरारी गर्व-प्रहारी नंदनबन में जाय, रखवालों को मार भगाय, कल्पवृक्ष को उठाय, गरुड़ पर धर ले आये। उस काल वे रखवाले जो प्रभु के हाथ की मार खाय भागे थे, इंद्र के पास जाय पुकारे। कल्पतरु के ले जाने के समाचार पाय महाराज, राजा इंद अति कोप कर वज्र हाथ में ले, सब देवताओं को बुलाय, ऐरावत हाथी पर चढ़, श्रीकृष्णचंदजी से युद्ध करने को उपस्थित हुआ।

फिर नारद मुनि जी ने जाय इंद्र से कहा—राजा, तू महा मूर्ख है जो स्त्री के कहे भगवान से लड़ने को उपस्थित हुआ है। ऐसी बात कहते तुझे लाज नहीं आती। जो तुझे लड़नाही था तो जब भौमासुर तेरा छत्र औ अदिति के कुंडल छिनाय ले गया तब क्यों न लड़ा। अब प्रभु ने भौमासुर को मार कुंडल औ छत्र ला दिया, तो तू उन्हीं से लड़ने लगा। जो तू ऐसा ही बलवान था तो भौमासुर से क्यौं न लड़ा। तू वह दिन भूल गया जो ब्रज में जाय प्रभु की अति दीनता कर अपना अपराध क्षमा कराय आया, फिर उन्हीं से लड़ने चला है। महाराज, नारद के मुख से इतनी बात सुनतेही राजा इंद्र जों युद्ध करने को उपस्थित हुआ तो अछताय पछताय लज्जित हो मन मार रह गया।

आगे श्रीकृष्णचंद द्वारका पधारे, तब हरषित भये देख हरि को यादव सारे। प्रभु ने सतिभामा के मंदिर में कल्पवृक्ष ले जाय के रक्खा औ राजा उग्रसेन ने सोलह सहस्र एक सौ जो राजकन्या अनब्याही थीं, सो सब देव रीति से श्रीकृष्णचंद को ब्याहीं।

भयौ वेद विधि मंगलचार। ऐसे हरि बिहरत संसार॥
सोलह सहस एक सौ ग्रेहा। रहत कृष्ण कर परम सनेहा॥
पटरानी आठो जे गनी। प्रीति निरंतर तिनसों घनी॥

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा, हरि ने ऐसे भौमासुर को बध किया औ अदिति का कुंडल और इंद्र का छत्र ला दिया। फिर सोलह सहस्र एक सौ आठ विवाह कर श्रीकृष्णचंद द्वारका पुरी में आनंद से सबको ले लीला करने लगे।

एकसठवाँ अध्याय

श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, एक समैं मनिमय कंचन के मंदिर में कुन्दन का जड़ाऊ छपरखट बिछा था, तिसपर फेन से बिछोने फूलों से सँवारे, कपोलगेंडुआ औ ओसीसे समेत सुगंध से महक रहे थे। करपूर, गुलाबनीर, चोआ, चंदन, अरगजा सेज के चारो ओर पात्रों में भरा था। अनेक अनेक प्रकार के चित्र विचित्र* चारो ओर भीतों पर खिंचे हुए थे। आलों में जहाँ तहाँ फूल, फल पकवान, पाक धरे थे और सब सुख का सामान जो चाहिये सो उपस्थित था।

झलाबोर का घाघरा घूमघूमाला तिसपर सच्चे मोती टँके हुए, चमचमाती अँगिया, झलझलाती सारी औ जगमगाती ओढ़नी पहने ओढ़े नख सिख से सिंगार किये, रोली की आड़ दिये, बड़े बड़े मोतियों की नथ, सीसफूल, करनफूल, माँग, टीका, ढेढी, बंदी, चंद्रहार, मोहनमाल, धुकधुकी, पंचलडी, सतलड़ी, मुक्तमाल, दुहरे तिहरे नौरतन औ भुजबंध, कंकन, पहुँची, नौगरी, चूड़ी, छाप, छल्ले, किंकिनी, अनवट, बिछुए, जेहर आदि सब आभूषन रतनजटित पहन चंदवदनी, चंपकबरनी, मृगनयनी, गजगमनी, कटिकेहरी श्रीरुक्मनीजी औ मेघबरन, चंदमुख, कंवलनैन, मोरमुकुट दिये; बनमाल हिये, पीतांबर पहरे, पीतपट ओढे, रूपसागर, त्रिभुवन उजागर श्रीकृष्णचंद आनंदकंद तहाँ,

---

* (क) में "बित्र" है।

विराजते थे औ आपस में परसपर सुख लेते देते थे कि एकाएकी लेटे लेटे श्रीकृष्णजी ने रुक्मिनी से कहा कि सुन सुंदरी, एक बात मैं तुझसे पूछता हूँ, तू उसका उत्तर मुझे दे कि तू तो महा सुंदरी सब गुनसंयुक्त औ राजा भीष्मक की पुत्री, और महाबली बड़ा प्रतापी राजा सिसुपाल चंदेरी का राजा ऐसा, कि जिनके घर सात पीढ़ी से राज आता है औ हम उन के त्रास से भागे फिरते हैं औ मथुरापुरी तज समुद्र में जाय बसे हैं उन्हीं के भय से, ऐसे राजा को तुम्हें तुम्हारे मात पिता भाई देते थे औ वह बरात ले ब्याहने को भी आ चुका था, तिसे न बर तुमने कुल की मर्याद छोड़ संसार की लाज औ मात पिता बंधु की संका तज हमें ब्राह्मन के हाथ बुला भेजा।

तुम्हरे जोग न हम परबीन। भूपति नाहिं रूप गुन हीन॥
काहू जाचक कीरत करी। सो तुम सुनकै मन मैं धरी॥
कटक साज नृप ब्याहन आयौ। तब तुम हम कौ बोल पठायौ॥
आय उपाध बनी ही भारी। क्यौंहूँ कै पति रही हमारी॥
तिनके देखत तुमकौं लाए। दल हलधर उनके बिचराए॥
तुम लिख भेजी ही यह बानी। सिसुपाल तें छुड़ावौ आनी॥
सो परतज्ञा रही तिहारी। कछू न इच्छा हुती हमारी॥
अजहूँ कछू न गयौ तिहारौ। सुंदरि मानहु बचन हमारौ॥

कि जो कोई भूपति कुलीन, गुनी, बली तुम्हारे जोग होय तुम तिसके पास जा रहौ। महाराज, इतनी बात के सुनतेही श्री रुक्मिनीजी भयचक हो भहराय पछाड़ खाय भूमि पर गिरीं औ जल बिन मीन की भाँति तड़फड़ाय अचेत हो लगीं उर्द्धसांस लेने। तिस काल,

इहि छबि मुख अलकावली, रही लपट इक संग।
मानहुँ ससि भूतल पर्‍यो, पीवत अमी भुअंग॥

यह चरित्र देख इतना कह श्रीकृष्णचंद घबराकर उठे कि यह तो अभी प्रान तजती है, औ चतुर्भुज हो उसके निकट जाय, दो हाथों से पकड़ उठाय, गोद में बैठाय एक हाथ से पंखा करने लगे औ एक हाथ से अलक सँवारने। महाराज, उस काल नंदलाल प्रेम बस हो अनेक चेष्टा करने लगे। कभी पीताम्बर से प्यारी का चंदमुख पोंछते थे, कभी कोमल कमल सा अपना हाथ उसके हृदै पर रखते थे। निदान कितनी एक बेर में श्री रुक्मिनी जी के जीमें जी आया तब हरि बोले—

तुही सुंदरि प्रेम गँभीर। तैं मन कछू न राखी धीर॥
तैं मन जान्यौ साँचे छाड़ी। हमने हँसी प्रेम की माड़ी॥
अब तू सुंदरि देह सँभार। प्रान ठौरकै नैन उघार॥
जौलौं तू बोलत नहिं प्यारी। तौलौं हम दुख पावत भारी॥
चेती वचन सुनत पिय नारी। चितई बारिज नयन उघारी॥
देखी कृष्ण गोद में लिये। भई लाज अति सकुची हिये॥
अरबराय उठ ठाढ़ी भई। हाथ जोरि पायन परि रही॥
बोले कृष्ण पीठ कर देत। भली भली जू प्रेम अचेत॥

हमने हाँसी ठानी सो तुमने सच ही जानी। हँसी की बात में क्रोध करना उचित नहीं। उठो अब क्रोध दूर करो औ मन का शोक हरो। महाराज, इतनी बात के सुनतेही श्रीरुक्मिनीजी उठ हाथ जोड़ सिर नाय कहने लगी कि महाराज, आपने जो कहा कि हम तुम्हारे जोग नहीं सो सच कहा, क्योंकि तुम लक्ष्मीपति, शिव बिरंच के ईस, तुम्हारी समता का त्रिलोकी में कौन है, हे

जगदीश। तुम्हें छोड़ जो जन और को धावैं, सो ऐसे हैं जैसे कोई हरिजस छोड़ गीधगुन गावै। महाराज, आपने जो कहा कि तुम किसी महाबली राजा को देखो सो तुमसे अति बली औ बड़ा राजा त्रिभुवन में कौन है सो कहो ?

ब्रह्मा रुद्र इंद्रादि सब देवता बरदाई तो तुम्हारे आज्ञाकारी हैं, तुम्हारी कृपा से वे जिसे चाहते हैं तिसे महाबली, प्रतापी, जपी, तेजस्वी बर दे बनाते हैं और जो लोग आपकी सैंकड़ों बरस अति कठिन तपस्या करते हैं, सो राजपद पाते है। फिर तुम्हारा भजन, ध्यान, जप, तप भूल नीति छोड़ अनीति करते हैं, तब वे आप से आप ही अपना सरबस खोय भ्रष्ट होते हैं। कृपा-नाथ, तुम्हारी तो सदा यह रीति है कि अपने भक्तों के हेतु संसार में आय बार बार औतार लेते हो औ दुष्ट राक्षसों को मार पृथ्वी का भार उतार निज जनों को सुख दे कृतारथ करते हो।

औ नाथ, जिसपर तुम्हारी बड़ी दया होती है और वह धन, राज, जोबन, रूप प्रभुता पाय जब अभिमान से अंधा हो धर्म कर्म, तप, सत, दया, पूजा, भजन भूलता है तब तुम उसे दरिद्री बनाते हो, क्योंकि दरिद्री सदाही तुम्हारा ध्यान सुमरन किया करता है, इसीसे तुम्हें दरिद्री भाता है। जिसपर तुम्हारी बड़ी कृपा होगी सो सदा निर्धन रहेगा। महाराज इतना कह फिर रुक्मिनीजी बोलीं कि हे प्राननाथ, जैसा काशीपुरी के राजा इंद्र-दवन की बेटी अंबा ने किया, तैसा मैं न करूँगी कि वह पति को छोड़ राजा भीषम के पास गई और जब उसने इसे न रक्खा तब फिर अपने पति के पास आई। पुनि पति ने उसे निकाल दिया, तद उन्ने गंगा तीर में बैठ महादेव का बड़ा तप किया। वहाँ

भोलानाथ ने आय उसे मुँह माँगा बर दिया। उस बर के बल से जाय उसने राजा भीषम से अपना पलटा लिया। सो मुझसे न होगा।

अरु तुम नाथ यहौ समझाई। काहू जाचक करी बड़ाई॥
बाकौ बचन मान तुम लियौ। हम पै विप्र पठै कै दियौ॥
जाचक शिव बिरंच सारदा। नारद गुन गावत सरबदा॥
विप्र पठायौ जान दयाल। आय कियौ दुष्टनि कौ काल॥
दीन जन दासी संग लई। तुम मोहि नाथ बड़ाई दई॥
यह सुनि कृष्ण कहत सुन प्यारी। ज्ञान ध्यान गति लही हमारी॥
सेवा भजन प्रेम तें जान्यौं। तोही सों मेरो मन मान्यौं॥

महाराज प्रभु के मुख से इतनी बात सुनते ही संतुष्ट हो रुक्मिनी जी फिर हरि की सेवा करने लगीं।

———

बासठवाँ अध्याय

श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, सोलह सहस्र एक सौ आठ स्त्रियों को ले श्रीकृष्णचंद आनद से द्वारकापुरी में बिहार करने लगे। औ आठो पटरानियाँ आठों पहर हरि की सेवा में रहैं। नित उठ भोरही कोई मुख धुलावै, कोई उबटन लगाय न्हिलावे, कोई षट्रस भोजन बनाय जिमावै, कोई अच्छे पान लौंग, इलाइची, जावित्री, जायफल समेत पिय को बनाय बनाय खिलावै, कोई सुथरे वस्त्र औ रतनजटित आभूषन चुन बास औ बनाय प्रभु को पहनाती थी, कोई फूल माल पहराय गुलाबनीर छिड़क केसर चंदन चरचती थी, कोई पंखा डुलाती थी और कोई पाँव दाबती थी।

महाराज, इसी भाँति सब रानियाँ अनेक अनेक प्रकार से प्रभु की सदा सेवा करैं औ हरि हर भाँति उन्हें सुख दें। इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, कई बरस के बीच

> एक एक यदुनाथ की नारिन जाये पुत्र।
> इक इक कन्या लक्ष्मी, दस दस पुत्र सुपुत्र॥
> एक लाख इकसठ सहस, ऐसी बाढ़ इक सार।
> भये कृष्ण के पुत्र ये, गुन बल रूप अपार॥

सब मेघबरन चंदमुख कँवलनयन लीले पीले झगुले पहने, गंडे कठले ताइत गले में डाले, घर घर बालचरित्र कर कर मात पिता को सुख दें औ उनकी माएँ अनेक भाँति से लाड़ प्यार कर प्रतिपालन करें। महाराज, श्रीकृष्णचंदजी के पुत्रों का होना सुन

रुक्म ने अपनी स्त्री से कहा कि अब मैं अपनी कन्या चारुमती जो कृतवर्मा के बेटे को माँगी है, तिसे न दूंगा, स्वयंबर करूँगा, तुम किसी को भेज मेरी बहन रुक्मिनी को पुत्र समेत बुलवा भेजो।

इतनी बात के सुनतेही रुक्म की नारी ने अति बिनती कर ननद को पत्र लिख पुत्र समेत बुलाबाया एक ब्राह्मण के हाथ औ स्वयंबर किया। भाई भौजाई की चिट्ठी पातेही रुक्मिनीजी श्रीकृष्ण-चंदजी से आज्ञा ले विदा हो पुत्र सहित चली चली द्वारका से भोजकट में भाई के घर पहुँचीं।

देख रुक्म ने अति सुख पायौ। आदर कर नीचौ सिर नायौ॥
पायन पर बोली भौजाई। हरन भयौ तब तें अब आई॥

यह कह फिर उसने रुक्मिनीजी से कहा कि ननद जो तुम आई हो तो हम पर दया मया कीजे और इस चारुमती कन्या को अपने पुत्र के लिये लीजे। इस बात को सुनतेही रुक्मिनीजी बोलीं कि भौजाई, तुम पति की गति जानती हो, मत किसीसे कलह करवाओ, भैया की बात कुछ कही नहीं जाती, क्या जानिये किस समय क्या करें, इससे कोई बात कहते करते भय लगता है। रुक्म बोला कि बहन, अब तुम किसी भांति न डरो, कुछ उपाध न होगी बेद की आज्ञा है कि दक्षिन देस में कन्यादान भानजे को दीजे, इस कारन मैं अपनी पुत्री चारुमती तुम्हारे पुत्र प्रद्युम्न को दूंगा, श्रीकृष्णजी से बैर भाव छोड़ नया संबंध करूँगा।

महाराज इतना कह जब रुक्म वहाँ से उठ सभा में गया, तब प्रद्युम्नजी भी माता से आज्ञा ले, बनठन कर स्वयंबर के बीच गये तो क्या देखते हैं कि देस देस के नरेस भांति भांति के बस्त्र,

शस्त्र, आभूषन पहने बांधे, बनाव किये, विवाह की अभिलाषा हिये में लिये सब खड़े हैं। और वह कन्या जैमाल कर लिये, चारो ओर दृष्टि किये बीच में फिरती है पर किसी पै दृष्ट उसकी नहीं ठहरती। इसमें जों प्रद्युम्नजी स्वयंबर के बीच गये तों देखतेही उस कन्या ने मोहित हो आ इनके गले में जैमाल डाली। सब राजा अछताय पछताय मुँह देखते अपना मुह लिये खड़े रह गये और अपने मनही मन कहने लगे कि भला देखें हमारे आगे से इस कन्या को कैसे ले जायगा, हम बाटही में छीन लेंगे।

महाराज, सब राजा तो यों कह रहे थे और रुक्म ने बर कन्या को मढ़े के नीचे ले जाय, वेद की विधि से संकल्प कर कन्यादान किया और उसके यौतुक में बहुतही धन द्रव्य दिया कि जिसका कुछ वारापार नहीं। आगे श्रीरुक्मिनीजी पुत्र को ब्याह भाई भौजाई से विदा हो बेटे बहू को ले रथ पर चढ़ जों द्वारका पुरी को चलीं, तो राजाओं ने आय मारग रोका, इसलिये कि प्रद्युम्न जी से लड़ कन्या को छीन लें।

उनकी यह कुमति देख प्रद्युम्नजी भी अपने अस्त्र शस्त्र ले युद्ध करने को उपस्थित हुए, कितनी बेर तक इनसे उनसे युद्ध रहा। निदान प्रद्युम्नजी उन सबों को मार भगाय आनंद मंगल से द्वारका पुरी पहुँचे। इनके पहुँचने के समाचार पाय सब कुटुंब के लोग क्या स्त्री क्या पुरुष पुरी के बाहर आय, रीति भाँति कर पाटबर के पाँवड़े डालते बाजे गाजे से इन्हें ले गये। सारे नगर में मंगल हुआ औ ये राजमंदिर में सुख से रहने लगे।

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा— महाराज, कई बरष पीछे श्रीकृष्णचंद आनंदकंद के पुत्र प्रद्युम्नजी

के पुत्र हुआ उस काल श्रीकृष्णजी ने जोतिषियों को बुलाय, सब कुटुंब के लोगों को बैठाय, मंगलाचार करवाय शास्त्र की रीति से नामकरन किया। जोतिषियों ने पत्रा देख बरष, मास, पक्ष, दिन, तिथि, घड़ी लग्न, नक्षत्र ठहराय उस लड़के का नाम अनरुद्ध रक्खा। उस काल

फूले अँग न समाँइ, दान दक्षिना द्विजन कौ।
देत न कृष्ण अघाँइ, प्रद्युम्न कै बेटा भयौ॥

महाराज, नाती के होने का समाचार पाय पहले तो रुक्म ने बहन बहनोई को अति हित कर यह पत्री में लिख भेजा कि तुम्हारे पोते से हमारी पोती का व्याह हो तो बड़ा आनंद है और पीछे एक ब्राह्मन को बुलाय, रोली, अक्षत, रुपया, नारियल दे उसे समझायके कहा कि तुम द्वारकापुरी में जाय, हमारी ओर से अति बिनती कर, श्रीकृष्णजी का पौत्र अनरुद्ध जो हमारा दोहता है, तिसे टीका दे आओ। बात के सुनतेही ब्राह्मन टीका औ लग्न साथही ले चला चला श्रीकृष्णचंद के पास द्वारका पुरी में गया। विसे देख प्रभु ने अति मान सनमान कर पूछा कि कहो देवता, आपका आना कहाँ से हुआ? ब्राह्मन बोला— महाराज, मैं राजा भीष्मक के पुत्र रुक्म का पठाया उनकी पौत्री औ आपके पौत्र से संबंध करने को टीका औ लग्न ले आया हूँ।

इस बात के सुनतेही श्रीकृष्णजी ने दस भाइयों को बुलाय, टीका औ लग्न ले विस ब्राह्मन को बहुत कुछ दे विदा किया और आप बलरामजी के निकट जाय चलने का विचार करने लगे।

निदान वे दोनों भाई वहाँ से उठ, राजा उग्रसेन के पास जाय, सब समाचार सुनाय, उनसे विदा हो बाहर आय बरात की

सब सामा मँगवाय मँगवाय इकट्ठी करवाने लगे। कई एक दिन में जब सामान उपस्थित हो चुका, तब बड़ी धूमधाम से प्रभु बारात ले द्वारका से भोजकट नगर को चले।

उस काल एक झमझमाते रथ पर तो श्रीरुक्मिनीजी पुत्र पौत्र को लिये बैठी जाती थीं औ एक रथ पर श्रीकृष्णचंद औ बलराम बैठे जाते थे। निदान कितने एक दिनों में सब समेत प्रभु वहाँ पहुँचे। महाराज, बरात के पहुँचतेही रुक्म कलिंगादि सब देस देस के राजाओं को साथ ले नगर के बाहर जाय, अगौनी कर सबको आगे पहराय, अति आदर मान कर जनवासे में लिवाय लाया। आगे सबको खिलाय पिलाय मढ़े के नीचे लिवाय ले गया औ उसने वेद की बिधि से कन्यादान किया। विसके यौतुक में जो दान दिया उसको मैं कहाँ तक कहूँ, वह अकथ है।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी बोले—महाराज, ब्याह के हो चुकतेही राजा भीष्मक ने जनवासे में जाय हाथ जोड़ अति बिनती कर श्रीकृष्णचंदजी से चुपचुपाते कहा—महाराज, बिवाह हो चुका औ रस रहा, अब आप शीघ्र चलने का विचार कीजे क्योंकि—

नहीं तो रस में अनरस होता दीसे है। यह वचन सुन रुक्म बोला कि बहन, तुम किसी बात की चिन्ता मत करो, मैं पहले जो राजा देस के पाहुने आए हैं तिन्हें बिदा कर आऊँ पीछे जो तुम कहोगी सो मैं करूँगा। इतना कह रुक्म वहाँ से उठ जो राजा पाहुने आए थे उनके पास गया। वे सब मिलके कहने लगे कि रुक्म, तुमने कृष्ण बलदेव को इतना धन द्रव्य दिया और तिन्होंने मारे अभिमान के कुछ भला न माना। एक तो हमें इस बात का पछतावा है और दूसरे उस बात की कसक हमारे मन से नहीं जाती कि जो बलराम ने तुम्हें अभरम किया था।

महाराज, इस बात के सुनतेही रुक्म को क्रोध हुआ, तब राजा कलिंग बोला कि एक बात मेरे जी में आई है, कहो तो कहूँ। रुक्म ने कहा—कहो। फिर उसने कहा कि हमें श्रीकृष्ण से कुछ काम नहीं पर बलराम को बुला दो तो हम उससे चौपड़ खेल सब धन जीत लें और जैसा उसे अभिमान है तैसा यहाँ से रीते हाथ बिदा करें। जों कलिंग ने यह बात कही तोंही रुक्म वहाँ से उठ कुछ सोच विचार करता बलरामजी के निकट जा बोला कि महाराज, आपको सब राजाओं ने प्रनाम कर बुलाया है चौपड़ खेलने को।

सुन बलभद्र तबहि तहाँ आए। भूपनि उठकै सीस निवाए॥

आगे सब राजा बलरामजी का सिष्टाचार कर बोले कि आप को चौपड़ खेलने का बड़ा अभ्यास है, इसलिए हम आपके साथ खेला चाहते हैं। इतना कह उन्होंने चौपड़ मँगवाय बिछाई और रुक्म से औ बलरामजी से होने लगी। पहले रुक्म दस बेर जीता तो बलदेवजी से कहने लगा कि धन तो सब बीता अब

काहे से खेलोगे। इसमें राजा कलिंग बड़ी बात कह हँसा। यह चरित्र देख बलदेवजी नीचा सिर कर सोच विचार करने लगे, तब रुक्म ने दस करोड़ रुपये एक बार लगाए, सो बलरामजी ने ज्यों जीतके उठाए त्यों सब धाँधलकर बोले कि यह रुक्म का पासा पड़ा तुम क्यौं रुपये समेटते हो।

सुनि बलराम फेर सब दीने। अर्ब लगायौ पासे लीने॥

फिर हलधर जीते औ रुक्म हारा। उस समय भी रोंगटी कर सब राजाओं ने रुक्म को जिताया और यों कह सुनाया—

जुआ खेल पासे का सार। यह तुम जानो कहा गँवार॥
जुआ युद्ध गति भूपति जाने। ग्वाल गोप गैयन पहचाने॥

इस बात के सुनते ही बलदेवजी का क्रोध यों बढ़ा कि जैसे पून्यौ को समुद्र की तरंग बढ़े। निदान ज्यों त्यों कर बलरामजी ने क्रोध को रोक, मन को समझाय फिर सात सात अर्ब रुपये लगाये और चौपड़ खेलने लगे। फिर भी बलदेवजी जीते औ सबों ने कपट कर रुक्म ही को जीता कहा। इस अनीति के होते ही आकाश से यह बानी हुई कि हलधर जीते और रुक्म हारा। अरे राजाओ! तुमने क्यौं झूठ बचन उचारा। महाराज, जब रुक्म समेत सब राजाओं ने आकाशबानी सुनी अनसुनी की, तब तो बलदेवजी महा क्रोध में आय बोले—

करी सगाई बैर छाँड्यौ। हम सों फेर कलह तुम माँड्यौ॥
मारौं तोहि अरे अन्याई। भलौ बुरौ मानहु भौजाई॥
अब काहूकी कान न करिहौं। आज प्रान कपटी के हरिहौं॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज, निदान बलरामजीने सबके देखते रुक्म को मार डाला

औ कलिंग को पछाड़ मारे घूसों के उसके दाँत उखाड़ डाले और कहा कि तू भी मुँह पसारके हँसा था। आगे सब राजाओं को मार भगाय, बलरामजी ने जनवासे में श्रीकृष्णचंदजी के पास आय, वहाँ का सब ब्योरा कह सुनाया।

बात के सुनतेही हरि ने सब समेत वहाँ से प्रस्थान किया और चले चले आनंद मंगल से द्वारका में आन पहुँचे। इनके आतेही सारे नगर में सुख छाय गया, घर घर मंगलाचार होने लगा। श्रीकृष्णजी औ बलदेवजी ने उग्रसेन राजा के सनमुख जाय हाथ जोड़ कहा—महाराज, आपके पुन्य प्रताप से अनरुद्ध को ब्याह लाए औ महादुष्ट रुक्म को मारि आए।

तिरसठवाँ अध्याय

श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, अब जो श्रीद्वारकानाथ का बल पाऊँ, तो ऊषाहरण की कथा सब गाऊँ। जैसे उसने रात्र समैं सपने में अनरुद्धजी को देखा औ आशक्त हो खेद किया पुनि चित्ररेखा ने ज्यों अनरुद्ध को लाय ऊषा से मिलाया, तैसे मैं सब प्रसंग कहता हूँ तुम मन दे सुनौ। ब्रह्मा के बंस में पहले कस्यप हुआ। तिसका पुत्र हिरनकस्यप अतिबली महाप्रतापी औ अमर भया। उसका सुत हरिजन प्रभुभक्त पहलाद नाम हुआ, विसका बेटा राजा विरोचन, विरोचन का राजा बलि, जिसका जस धर्म धरनी में अब तक छाय रहा है, कि प्रभु ने बावन अवतार ले राजा बलि को छल पाताल पठाया। उस बलि का ज्येष्ठ पुत्र महापराक्रमी बड़ा तेजस्वी बानासुर हुआ। वह श्रोनित-पुर में बसै, नित प्रति कैलास में जाय शिव की पूजा करै, ब्रह्मचर्य पालै, सत्य बोले, जितेन्द्रिय रहै। महाराज, एक दिन बानासुर कैलास में जाय हर की पूजा कर प्रेम में आय लगा मगन हो मृदंग बजाय बजाय नाचने गाने। उसका गाना बजाना सुन श्रीमहादेव भोलानाथ मगन हो लगे पार्वतीजी को साथ ले नाचने औ डमरू बजाने। निदान, नाचते नाचते शंकर ने अति सुख पाय प्रसन्न हो, बानासुर को निकट बुलाय के कहा-पुत्र, मैं तुमपर सन्तुष्ट हुआ, बर माँग, जो तू बर माँगेगा सो मैं दूँगा।

तैं कर बाजे भले बजाए। सुनत श्रवन मेरे मन भाए॥

इतनी बात के सुनतेही महाराजा, बानासुर हाथ जोड़ सिर

नाय अति दीनता कर बोला कि कृपानाथ, जो आपने मेरे पर कृपा की तो पहले अमर कर सब पृथ्वी का राज दीजे, पीछे मुझे ऐसा बली कीजे कि कोई मुझसे न जीते। महादेवजी बोले कि मैंने तुझे यही बर दिया औ सब भय से निर्भय किया। त्रिभुवन में तेरे बल को कोई न पायगा औ बिधाता का भी कुछ तुझ पर बस न चलेगा।

बाजौ भले बजाय कै, दियौ परम सुख मोहि।
मैं अति हिय आनंद कर, दिये सहस भुज तोहिं॥

अब तू घर जाय निचिंताई से बैठ अविचल राज कर।

महाराज, इतना बचन भोलानाथ के मुख से सुन, सहस्र भुज पाय, बानासुर अति प्रसन्न हो परिक्रमा दे, सिर नाय, बिदा होय आज्ञा ले श्रोनितपुर में आया। आगे त्रिलोकी को जीत, सब देवताओं को बस कर, नगर के चारों ओर जल की चुआन चौड़ी खाई औ अग्नि पवन का कोट बनाय निर्भय हो सुख से राज करने लगा। कितने एक दिन पीछे—

लरवे बिन भइ भुज सबल, फरकहि अति सहिराँय।
कहत बान कासों लरैं, कापर अब चढ़ि जाँय॥

भाई खाज लरवे बिन भारी। को पुजवै हिय हबस हमारी॥

इतना कह बानासुर घर से बाहर जाय, लगा पहाड़ उठाय उठाय, तोड़ तोड़ चूर करने औ देस देस फिरने। जब सब पर्बत फोड़ चुका औ उसके हाथों की सुरसुराहट खुजलाहट न गई, तब—

कहत बान अब कासों लरौं। इतनी भुजा कहा लै करौं॥
सबल भार मैं कैसे सहौं। बहुरि जाय के हर सों कहौं॥

महाराज, ऐसे मन ही मन सोच बिचार कर, बानासुर महा-

देवजी के सनमुख जा, हाथ जोड़, सिर नाय, बोला कि हे त्रिशूलपानि त्रिलोकीनाथ, तुमने कृपा कर जो सहस्र भुजा दीं, सो मेरे शरीर पर भारी भईं। उनका बल अब मुझसे सँभाला नहीं जाता। इसका कुछ उपाय कीजे, कोई महाबली युद्ध करने को मुझे बताय दीजे। मैं त्रिभुवन में ऐसा पराक्रमी किसूको नहीं देखता जो मेरे सनमुख हो युद्ध करे। हाँ दयाकर जैसे आपने मुझे महाबली किया, तैसेही अब कृपा कर मुझ से लड़ मेरे मन का अभिलाष पूरा कीजे तो कीजे, नहीं तो और किसी अति बली को बता दीजे, जिससे मैं जाकर युद्ध करूँ और अपने मन का शोक हरूँ।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, बानासुर से इस भाँति की बातें सुन श्रीमहादेवजी ने बलखाय मन ही मन इतना कहा कि मैंने तो इसे साध जानके बर दिया, अब यह मुझीसे लड़ने को उपस्थित हुआ। इस मूरख को बल का गर्व भया, यह जीता न बचेगा। जिसने अहंकार किया सो जगत में आय बहुत न जिया। ऐसे मन ही मन महादेवजी कह बोले कि बानासुर, तू मत घबराय, तुझसे युद्ध करनेवाला थोड़े दिन के बीच, यदुकुल में श्रीकृष्णावतार होगा, उस दिन त्रिभुवन में तेरा साम्हना करनेवाला कोई नहीं। यह बचन सुन बानासुर अति प्रसन्न हो बोला—नाथ, वह पुरुष कब अवतार लेगा और मैं कैसे जानूँगा कि अब वह उपजा। राजा, शिवजी ने एक ध्वजा बानासुर को देके कहा कि इस बैरख को ले जाय, अपने मंदिर के ऊपर खड़ी कर दे, जब यह ध्वजा आप से आप टूटकर गिरे तब तू जानियो कि मेरा रिपु जन्मा।

महाराज, जद शंकर ने उसे ऐसे कहा समझाय, तद बाना-सुर ध्वजा ले निज घर को चला सिर नाय। आगे घर जाय ध्वजा मन्दिर पर चढ़ाय, दिन दिन यही मनाता था कि कब वह पुरुष प्रगटे औ मैं उससे युद्ध करूँ। इसमें कितने एक बरष बीते उसकी बड़ी रानी जिसका नाम बानावती, तिसे गर्भ रहा औ पूरो दिनों एक लड़की हुई। उस काल बानासुर ने जोतिषियों को बुलाय बैठायके कहा कि इस लड़की का नाम औ गुन गान कर कहो। इतनी बात के कहते ही जोतिषियों ने झट बरष, मास, पक्ष, तिथ बार, घड़ी, महूरत, नक्षत्र ठहराय, लग्न विचार उस लड़की का नाम ऊषा धरके कहा कि महाराज, यह कन्या रूप, गुन, शील की खान महाजान होगी, इसके ग्रह औ लक्षन ऐसे ही आन पड़े हैं।

इतना सुन बानासुर ने अति प्रसन्न हो पहले बहुत कुछ जोतिषियों को दे बिदा किया, पीछे मंगलामुखियों को बुलाय मंगलाचार करवाया। पुनि जों जों वह कन्या बढ़ने लगी, तों तों बानासुर उसे अति प्यार करने लगा। जब ऊषा सात बरष की भई तब उसके पिता ने श्रोनितपुर के निकटही कैलास था तहाँ कै एक सखी सहेलियों के साथ उसे शिव पार्वती के पास पढ़ने को भेज दिया। ऊषा गनेश सरस्वती को मनाय, शिव पार्वती के सनमुख जाय, हाथ जोड़, सिर नाय, बिनती कर बोली कि हे कृपासिन्धु शिव गवरी, दया कर मुझ दासी को विद्यादान दीजे औ जगत में जस लीजे। महाराज, ऊषा के अति दीन बचन सुन शिव पार्वतीजी ने उसे प्रसन्न हो विद्या का आरम्भ करवाया। वह नित प्रति जाय जाय पढ़ पढ़ आवे। इसमें कितने एक दिन

के बीच सब शास्त्र पढ़ गुन बियातती* हुई औ सब यन्त्र बजाने लगी। एक दिन ऊषा पार्वतीजी के साथ मिलकर बीन बजाय संगीत की रीति से गाय रही थी कि उस काल शिवजी ने आय पार्वती से कहा—हे प्रिये, मैंने जो कामदेव को जलाया था, तिसे अब श्रीकृष्णचन्दजी ने उपजाया। इतना कह श्रीमहादेवजी गिरजा को साथ ले गंगा तीर पर जाय, नीर में न्हाय न्हिलाय सुख की इच्छा कर अति लाड़ प्यार से लगे पार्वतीजी को वस्त्र आभूषन पहराने औ हित करने। निदान अति आनंद में मगन हो डमरू बजाय बजाय, तांडव नाच नाच नाच, संगीत शास्त्र की रीति से गाय नाय शिवा को लगे रिझाने और बड़े प्यार से कंठ लगाने। उस समय ऊषा शिव गवरी का सुख प्यार देख देख, पति के मिलने की अभिलाषा कर मन ही मन कहने लगी कि मेरा भी कंत होय तो मैं भी शिव पार्वती की भाँति उसके साथ विहार करूँ। पति बिन कामिनी ऐसे शोभाहीन है, जैसे चन्द्र बिन जामिनी।

महाराज, जों ऊषा ने मनही मन इतनी बात कही तो अंतर-जामिनी† श्रीपार्वतीजी ने ऊषा की अंतरगति जान, उसे अति हित से निकट बुलाय प्यार कर समझायके कहा कि बेटी, तू किसी बात की चिन्ता मन में मत कर तेरा पति तुझे सपने में आय मिलेगा, तू तिसे ढुंढवाय लीजो औ उसीके साथ सुख भोग कीजो। ऐसे बर दे शिवरानी ने ऊषा को बिदा किया। वह सब विद्या पढ़, बर पाय, दंडवत कर अपने पिता के पास आई।

---

* (क) में 'विद्यावान' है।

† (क) में '[illegible]' है।

पिता ने एक मन्दिर अति सुंदर निराला उसे रहने को दिया औ यह कितनी एक सखी सहेलियों को ले यहाँ रहने लगी औ दिन दिन बढ़ने।

महाराज, जिस काल वह बाल बारह बरष की हुई तो उसके मुखचंद की जोति को देखि, पूर्नवासी का चंद्रमा छबिछीन हुआ। बालों की स्यामता के आगे मावस की अँधेरी फीकी लगने लगी। उसकी चोटी की सटकाई लख नागनि अपनी कैंचली छोड़ सटक गई। भौंह की बंकाई निरख धनुष धकधकाने लगा। आँखों की बड़ाई चंचलाई पेख मृग मीन खंजन खिसाय रहे। नाक की सुन्दरताई को देख तिल फूल मुरझाय गया। उसके अधर की लाली लख बिंबाफल बिलबिलाने लगा। दाँत की पाँति निरख दाड़िम का हिया दड़क गया। कपोलों की कोमलताई पेख गुलाब फलने से रहा। गले की गुलाई देख कपोत कलमलाने लगे। कुचों की कोर निरख कँवलकली सरोवर में जाय गिरी। जिसकी कट की कृसता देख केहरी ने बनवास लिया। जाँघों की चिकनाई पेख केले ने कपूर खाया। देह की गुराई निरख सोने को सकुच भई औ चंपा चंप गया। कर पद के आगे पदम की पदवी कुछ न रही। ऐसी वह गजगवनी पिकबयनी नवबाला जोबन की सरसाई से शोभायमान भई कि जिसने इन सबकी शोभा छीन ली।

आगे एक दिन वह नवजोबना सुगंध उबटन लगाय, निर्मल नीर से मल मल न्हाय, कंघी चोटी कर, पाटी सँवार, माँग मोतियों से भर, अंजन मंजन कर, मिहदी महावर रचाय, पान खाय, अच्छे जड़ाऊ सोने के गहने मँगाय, सीसफूल, बेंदा, बैंदी,

बंदी, ढेड़ी, करनफूल, चौदानियाँ, छड़े, गजमोतियों की नथ झलके जटकन समेत, जुगनी मोतियों के दुलड़े में गुही, चंद्रहार, मोहनमाल पँचलड़ी, सतलड़ी धुकधुकी, भुजबंद, नौरतन, चूड़ी, नौगरी, कंकन, कड़े, मुंदरी, छाप, छल्ले, किंकनी, जेहर, तेहर, गूँजरी, अनवट, बिछुए पहन। सुथरा झमझमाता सच्चे मोतियों की कोर का बड़े घेर का घाघरा औ चमचमाती आँचल पल्लू की सारी पहर, जगमगाती कंचुकी कस, ऊपर से झलझलाती ओढ़नी ओढ़, तिसपर सुगंध लगाय इस सज धज से हँसती हँसती सखियों के साथ मात पिता को प्रनाम करने गई कि जैसे लक्ष्मी। जों सनमुख जाय दंडवत कर ऊषा खड़ी भई तों बानासुर ने इसके जोबन की छटा देख, निज मन में इतना कह, इसे बिदा किया कि अब यह ब्याहन जोग हुई और पीछे से कै एक राक्षस उसके मंदिर की रखवाली को भेजे औ कितनी एक राक्षसी विसकी चौकसी को पठाई। वे वहाँ जाय आठ पहर सावधानी से रहने लगे और राक्षसनियाँ सेवा करने लगीं।

महाराज, वह राजकन्या पति के लिए नित प्रति तप, दान, व्रत कर श्रीपार्वतीजी की पूजा किया करै। एक दिन नित्य कर्म से निचिंत हो रात्र समैं सेज पर अकेली बैठी मन मन यों सोच रही थी कि देखिये पिता मेरा विवाह कब करे औ किस भाँति मेरा बर मुझे मिले। इतना कह पतिही के ध्यान में सो गई तों सपने में देखती क्या है कि एक पुरुष किशोर बैस, श्यामबरन, चंदमुख, कँवलनैन, अति सुंदर, कामस्वरूप, पीतांबर पहरे, मोर मुकुट सिर धरे, त्रिभंगी छबि करे, रतनजटित आभूषन, मकराकृत कुंडल, बनमाल, गुंजहार पहने औ पीत बसन ओढ़े, महाचंचल सनमुख

आन खड़ा हुआ। यह उसे देखते ही मोहित होय लजाय सिर झुकाय रही। तब उसने कुछ प्रेमसनी बातें कह, स्नेह बढ़ाय, निकट आय, हाथ पकड़, कठ लगाय इसके मन का भ्रम औ सोच सकोच सब बिसराय दिया। फिर तो परस्पर सोच संकोच तज, सेज पर बैठ, हाव भाव कटाक्ष औ आलिंगन चुंबन कर सुख देने लेने लगे औ आनंद में मगन हो प्रीति की बातें करने की इसमें कितनी एक बेर पीछे ऊषा ने ज्यों प्यार करना चाहा कि पति को अँकवार भर कंठ लगाऊँ, तों नयनों से नींद गई औ जिस भाँति हाथ बढ़ाय मिलने को भई थी तिसी भाँति मुरझाय पछताय रह गई।

जाग परी सोचति खरी, भयो परम दुख ताहि।
कहाँ गयो वह प्रानपति, देखत चहुँ दिसि चाहि॥

सोवत ऊषा मिलिहौं काहि। फिर कैसे मैं देखौं ताहि॥
सोवत जो रहती हौं आज। प्रीतम कबहुँ न जातौ भाज॥
क्यौं सुख में गहिबे कौं भई। जो यह नींद नयन तें गई॥
जागतही जामिनि जम भई। जैहै क्योंकर अब यह दई॥
बिन प्रीतम जिय निपट अचैन। देखे बिन तरसत हैं नैन॥
श्रवन सुन्यौ चाहत हैं बैन। कहाँ गये प्रीतम सुखदैन॥
जौ सपने पिय पुनि लखि लेऊँ। प्रान साधकर उनके देऊँ॥

महाराज, इतना कह ऊषा अति उदास हो पिय का ध्यान कर सेज पर जाय मुख ललेट पड़ रही। जब रात जाय भोर हुआ औ डेढ़ पहर दिन चढ़ा, तब सखी सहेली मिल आपस में कहने लगीं कि आज क्या है जो ऊषा इतना दिन चढ़ा औ अब तक सोती नहीं उठी। यह बात सुन चित्ररेखा बानासुर के प्रधान कूपभाँड

की बेटी चित्रशाला में जाय क्या देखती है कि ऊषा छपरखट के बीच मन मारे जी हारे निढा पड़ी रो रो लंबी साँसें ले रही है। उसकी यह दशा देख—

चित्ररेष बोली अकुलाय। कह सखि तू मोसों समझाय॥
आज कहा सोचति है खरी। परम बियोग समुद में परी॥
रो रो अधिक उसासें लेत। तन मन व्याकुल है किहि हेत॥
तेरे मन को दुख परिहरौं। मन चीत्यौ कारज सब करौं॥
मोसी सखी और ना घनी। है परतीति मोहिं आपनी॥
सकल लोक में हो फिर आऊँ। जहाँ जाउँ कारज कर ल्याऊँ॥
मोकौं वर ब्रह्मा ने दीनौ। बस मेरे सबही कौं कीनौ॥
मेरे संग सारदा रहै। वाके बल करिहौं जो कहै॥
ऐसी महामोहिनी जानौ। ब्रह्मा रुद्र इन्द्र छलि आनौ॥
मेरौ कोऊ भेद न जाने। अपनौ गुन को आप बखाने॥
ऐसे और न कहिहै कोऊ। भलौ बुरौ कोऊ किन होऊ॥
अब तू कह सब अपनी बात। कैसे कटी आज की रात॥
मोसों कपट करै जिन प्यारी। पुजवोंगी सब आस तिहारी॥

महाराज, इतनी बात के सुनतेही ऊषा अति सकुचाय सिर नाय चित्ररेखा के निकट आय मधुर बचन से बोली कि सखी, मैं तुझे अपना हितू जान, रात की बात सब कह सुनाती हूँ, तू निज मन में रख और कुछ उपाय कर सके तो कर। आज रात को सपने में एक पुरुष मेघबरन, चंद्रबदन, कँवलनयन, पीतांबर पहने पीतपट ओढ़े मेरे पास आय बैठा औ उसने अति हित कर मेरा मन हाथ में ले लिया। मैं भी सोच संकोच तज उससे बात करने लगी। निदान बतराते बतराते जो मुझे प्यार आया तो

मैंने उसे पकड़ने को हाथ बढाया। इस बीच मेरी नींद गई औ उसकी मोहिनी मूरत मेरे ध्यान में रही।

देख्यो सुन्यो और नहिं ऐसो। मैं कह कहाँ बताऊँ जैसो॥
वाकी छबि बरनी नहिं जाय। मेरो चित लै गयो चुराय॥

जब मैं कैलास में श्रीमहादेवजी के पास विद्या पढ़ती थी तब श्रीपार्वतीजी ने मुझे कहा था कि तेरा पति तुझे स्वप्न में आय मिलैगा, तू उसे ढुँढ़वा लीजो। सो वर आज रात मुझे सपने में मिला, मैं उसे कहाँ पाऊँ औ अपने बिरह की पीर किसे सुनाऊँ, कहाँ जाऊँ, उसे किस भाँति ढुँढ़वाऊँ. न बिसका नाम जानूँ न गाँम? महाराज, इतना कह जब ऊषा लंबी साँस ले मुरझाय रह गई तब चित्ररेखा बोली कि सखी, अब तू किसी बात की चिन्ता मत करै, मैं तेरे कंत को तुझे जहाँ होगा तहाँ से ढूँढ़ ला मिलाऊँगी। मुझे तीनों लोक में जाने की सामर्थ है, जहाँ होगा तहाँ जाय जैसे बनेगा तैसेही ले आऊँगी, तू मुझे उसका नाम बता औ ज़ाने की आज्ञा दे।

ऊषा बोली—बीर, तेरी वही कहावत है कि मरी क्यौं? कि साँस न आई। जो मैं उसका नाँव गाँव ही जानती तो दुख काहे का था, कुछ न कुछ उपाय करती। यह बात सुन चित्ररेखा बोली—सखी, तू इस बात का भी सोच न कर, मैं तुझे त्रिलोकी के पुरुष लिख दिखाती हूँ, तिनमें से अपने चितचोर को देख बता दीजो, फिर ला मिलाना मेरा काम है। तब तो हँसकर ऊषा बोली—बहुत अच्छा। महाराज, यह बचन ऊषा के मुख से निकलते ही चित्ररेखा लिखने का सब सामान मँगाय आसन मार बैठी औ गनेश सारदा को मनाय गुरु का ध्यान कर लिखने

लगी। पहले तो उसने तीन लोक चौदह भुवन, सात द्वीप, नौखंड पृथ्वी, आकाश, सातो समुद्र, आठो लोक बैकुण्ठ सहित लिख दिखाए। पीछे सब देव, दानव, गन्धर्व, किन्नर, यक्ष, ऋषि, मुनि, लोकपाल, दिगपाल औ सब देसों के भूपाल लिख लिख एक एक कर चित्ररेखा ने दिखाया, पर ऊषा ने अपना चाहीता उनमें न पाया। फिर चित्ररेखा जदुबंसियों की मूरत एक एक लिख लिख दिखाने लगी। इसमें अनरुद्ध का चित्र देखतेही ऊषा बोली—

अब मनचोर सखी मैं पायौ। रात यही मेरे ढिग आयौ॥
कर अब सखी तू कछू उपाय। याको ढूँढ़ कहूँ तें ल्याय॥
सुनकै चित्ररेख यों कहै। अब यह मोते किम बच रहै॥

यौं सुनाय चित्ररेखा पुन बोली कि सखी, तू इसे नहीं जानती मैं पहचानू हूँ, यह यदुबंसी श्रीकृष्णचंदजी का पोता, प्रद्युम्नजी का बेटा और अनरुद्ध इसका नाम है। समुद्र के तीर नीर में द्वारका नाक एक पुरी है तहाँ यह रहता है। हरि आज्ञा से उस पुरी की चौकी आठ पहर सुदरसन चक्र देता है इसलिए की कोई दैत्य, दानव, दुष्ट आय जदुबंसियों को न सतावै और जो कोई पुरी में आवे सो बिन राजा उग्रसेन सूरसेन का आज्ञा न आने पावे। महाराज, इस बात के सुनतेही ऊषा अति उदास हो, बोली कि सखी. जो वहाँ ऐसी बिकट ठाँव है तो तू किस भाँति तहाँ जाय मेरे कंत को लावेगी। चित्ररेखा ने कहा – आली तू इस बात से निचिंत रह मैं हरि प्रताप से तेरे प्रानपति को ला मिलाती हूँ।

इतना कह चित्ररेखा रामनामी कपड़े पहन, गोपीचंदन का ऊर्द्धपुंड तिलक काढ़, छापे उर भुजमूल औ कंठ में लगाय, बहुतसी

तुलसी की माला गले में डाल, हाथ में बड़े बड़े तुलसी के हीरों की सुमिरन ले, ऊपर से हीरावल ओढ़, काँख में आसन लपेटी भगवतगीता की पोथी दबाय, परम भक्त बैष्णव का भेष बनाय, ऊषा को यों सुनाय, सिर नाय विदा हो द्वारका को चली।

पैंड़े अब आकाश के, अँतरिक्ष ह्वै जाउँ।
ल्याऊँ तेरे कंत कौं, चित्ररेख तौ नाऊँ॥

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, चित्ररेखा अपनी माया कर, पवन के तुरंग पर चढ़ अँधेरी रात में श्याम घटा के साथ बात की बात में द्वारका पुरी में जा बिजली सी चमकी औ श्रीकृष्णचंद के मंदिर में बड़ गई, ऐसे कि इसका जाना किसी ने न जाना। आगे वह ढूँढ़ती ढूँढ़ती वहाँ गई, जहाँ पलंग पर सोए अनरुद्धजी अकेले स्वप्न में ऊषा के साथ बिहार कर रहे थे, इसने देखतेही झट उस सोते का पलंग उठाय चट अपनी बाट ली।

सोवत ही परजंक समेत। लिये जात ऊषा के हेत॥
अनरुद्ध कौं लै आई तहाँ। ऊषा चिंतित बैठी जहाँ॥

महाराज, पलंग समेत अनरुद्ध को देखतेही ऊषा पहले तो हकबकाय चित्ररेखा के पाँवों पर जाय गिरी, पीछे यों कहने लगी- धन्य है धन्य है सखी, तेरे साहस औ पराक्रम को जो ऐसी कठिन ठौर जाय बात की बात में पलंग समेत उठा लाई औ अपनी प्रतिज्ञा पूरी की। मेरे लिये तैंने इतना कष्ट किया, इसका पलटा मैं तुझे नहीं दे सकती, तेरे गुन की ऋनियाँ रही।

चित्ररेखा बोली—सखी, संसार में बड़ा सुख यही है जो पर को सुख दीजे औ कारज भी भला यही है कि उपकार कीजे।

यह शरीर किसी काम का नहीं इससे किसीका काम हो सके तो यही बड़ा काम है, इसमें स्वारथ परमारथ दोनों होते हैं। महाराज, इतना बचन सुनाय चित्ररेखा पुनि यों कह बिदा हो अपने घर गई, कि सखी भगवान के प्रताप से तेरा कंत मैंने तुझे ला मिलाया, अब तू इसे जगाय अपना मनोरथ पूरा कर। चित्ररेखा के जाते ही ऊषा अति प्रसन्न लाज किये, प्रथम मिलन का भय लिये, मनही मन कहने लगी—

कहा बात कहि पियहि जगाऊँ। कैसे भुजभर कंठ लगाऊँ॥

निदान बीन मिलाय मधुर मधुर सुरों से बजाने लगी। बीन की धुनि सुनते ही अनरुद्धजी जाग पड़े और चारों ओर देख देख मन मन यों कहने लगे—यह कौन ठौर, किसका मंदिर, मैं यहाँ कैसे आया और कौन मुझे सोते को पलंग समेत उठा लाया? महाराज, उस काल अनरुद्धजी तो अनेक अनेक प्रकार की बातें कह कह अचरज करते थे औ ऊषा सोच संकोच लिये प्रथम मिलन का भय किये, एक ओर खड़ी पिय का चंदमुख निरख निरख अपने लोचन चकोरों को सुख देती थी, इस बीच—

अनरुद्ध देखि कहै अकुलाय। कह सुंदरि तू अपने भाय॥
है तू को मोपै क्यों आई। कै तू मोहि आप लै आई॥
साँच झूठ एकौ नहिं जानौं। सपनौं सौ देखतु हौं मानौं॥

महाराज, अनरुद्धजी ने इतनी बातें कहीं औ ऊषा ने कुछ उत्तर न दिया बरन और भी लाज कर कोने में सट रही। तब तो उन्होंने झट उसका हाथ पकड़ पलंग पर ला बिठाया औ प्रीतिसनी प्यार की बातें कह उसके मनका सोच, संकोच और

भय सब मिटाया। आगे वे दोनों परस्पर सेज पर बैठे हाव भाव कटाक्ष कर सुख लेने देने लगे औ प्रेमकथा कहने। इस बीच बातों ही बातों अनरुद्ध जी ने ऊषा से पूछा कि हे सुंदरि, तूने प्रथम मुझे कैसे देखा और पीछे किस भाँति ह्याँ मँगाया इसका भेद समझा कर कह जो मेरे मन का भ्रम जाय। इतनी बात के सुनते ही ऊषा पति का मुख निरख हरख के बोली—

मोहि मिले तुम सपने आय। मेरौ चित लै गये चुराय॥
जागी मन भारी दुख लह्यौ। तब मैं चित्ररेष सों कह्यौ॥
सोइ प्रभु तुमको ह्याँ लाई। ताकी गति जानी नहिं जाई॥

इतना कह पुनि ऊषा ने कहा—महाराज, मैं तो जिस भाँति तुम्हें देखा औ पाया तैसे सब कह सुनाया। अब आप कहिये अपनी बात समझाय, जैसे तुमने मुझे देखा यादव राय। यह बचन सुन अनरुद्ध अति आनंद कर मुसकरायके बोले कि सुंदरि, मैं भी आज रात्र को सपने में तुझे देख रहा था कि नींदही में कोई मुझे उठाय यहाँ ले आया, इसका भेद अबतक मैंने नहीं पाया कि मुझे कौन लाया, जागा तो मैंने तुझे ही देखा।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, ऐसे वे दोनों पिय प्यारी आपस में बतराय, पुनि प्रीति बढ़ाय अनेक अनेक प्रकार से काम कलोल करने लगे औ बिरह की पीर हरने। आगे पान की सिटाई, मोती माल की सीतलताई औ दीप जोति की मंदताई निरख जो ऊषा बाहर जाय देखे तो ऊषाकाल हुआ। चंद की जोति घटी, तारे दुतिहीन भये, आकाश में अरुनाई छाई, चारों ओर चिड़ियाँ चुहचुहाईं, सरोवर में कुमुदनी कुमलाईं औ कँवल फूले। चकवा चकई को संयोग हुआ।

महाराज, ऐसा समय देख एक बार तो सब बार मूँद ऊषा बहुत घबराय, घर में आय, अति प्यार कर, पिय को कंठ लगाय लेटी। पीछे पिय को दुराय, सखी सहेलियों से छिपाय, छिप छिप कंत की सेवा करने लगी। निदान अनरुद्ध का आना सखी सहेलियों ने जाना फिर तो यह दिन रात पति के संग सुख भोग किया करे। एक दिन ऊषा की माँ बेटी की सुध लेने आई तो उसने छिपकर देखा कि वह एक महा सुंदर तरुन पुरुष के साथ कोठे में बैठी आनंद से चौपड़ खेल रही है। यह देखते ही बिन बोले चाले दबे पाओं फिर मनहीं मन प्रसन्न हो असीस देती सूंट मारे वह अपने घर चली गई।

आगे कितने एक दिन पीछे ऊषा पति को सोता देख, जी में यह बिचार कर सकुचती सकुचती घर से बाहर निकली, कि कहो ऐसा न हो जो कोई मुझे देख अपने मन में जाने कि ऊषा पति के लिये घर से नहीं निकलती। महाराज, ऊषा कंत को अकेला छोड़ जाते तो गई पर उससे रहा न गया, फिर घर में जाय किवाड़ लगाय बिहार करने लगी। यह चरित्र देख पौरियों ने आपस में कहा कि भाई, आज क्या है जो राजकन्या अनेक दिन पीछे घर से निकली औ फिर उलटे पाँओं चली गई। इतनी बात के सुनतेही उनमें से एक बोला कि भाई, मैं कई दिन से देखता हूँ ऊषा के मन्दिर का द्वार दिनरात लगा रहता है और घर भीतर कोई पुरुष कभी हँस हँस बातें करता है और कभी चौपड़ खेलता है। दूसरे ने कहा—जो यह बात सच है तो चलो बानासुर से जाय कहैं, समझ बूझ यहाँ क्यों बैठ रहैं।

एक कहै यह कही न जाय। तुम सब बैठ रहौ अरगाय॥

भली बुरी होवे सो होय। होनहार मेटै नहिं कोय ॥
कछू न बात कुँवरि की कहियै। चुप ह्वै देख बैठ ही रहियै ॥

महाराज, द्वारपाल आपस में ये बातें करतेही थे कि कई एक जोधा साथ लिये फिरता फिरता बानासुर वहाँ आ निकला और मंदिर के ऊपर दृष्ट कर शिवजी की दी हुई ध्वजा न देख बोला—यहाँ से ध्वजा क्या हुई? द्वारपालों ने उत्तर दिया कि महाराज, वह तो बहुत दिन हुए कि टूटकर गिर पड़ी। इस बात के सुनतेही शिवजी का बचन स्मरन कर भावित हो बानासुर बोला—

कब की ध्वजा पताका गिरी। बैरी कहूँ औतर्‍यो हरी ॥

इतना बचन बानासुर के मुख से निकलते ही एक द्वारपाल सनमुख जा खड़ा हो हाथ जोड़ सिर नाय बोला कि महाराज, एक बात है, पर वह मैं कह नहीं सकता, जो आपकी आज्ञा पाऊँ तो जों की तों कह सुनाऊँ। बानासुर ने आज्ञा की—अच्छा कह। तब पौरिया बोला कि महाराज, अपराध क्षमा। कई दिन से हम देखते हैं कि राजकन्या के मंदिर में कोई पुरुष आया है, वह दिन रात बातें किया करता है, इसका भेद हम नहीं जानते कि वह कौन पुरुष है औ कब कहाँ से आया है और क्या करता है? इतनी बात के सुनते प्रमान बानासुर अति क्रोध कर शस्त्र उठाय, दबे पाओं अकेला ऊषा के मंदिर में जाय छिपकर क्या देखता है कि एक पुरुष स्यामबरन, अति सुंदर, पीतपट ओढ़े निद्रा में अचेत ऊषा के साथ सोया पड़ा है।

सोचत बानासुर यों हिये। होय पाप सोवत बध किये ॥

महाराज, यों मनही मन बिचार बानासुर ने तो कई एक रखवाले वहाँ रख, उनसे यह कहा कि तुम इसके जागतेही हमें

जाय कहियो, अपने घर जाय सभा कर सब राक्षसों को बुलाय कहने लगा कि मेरा बैरी आन पहुँचा है तुम सब दल ले ऊषा का मंदिर जाय घेरो, पीछे से मैं भी आता हूँ। आगे इधर तो बानासुर की आज्ञा पाय सब राक्षसों ने आय ऊषा का घर घेरा औ उधर अनरुद्धजी औ राजकन्या निद्रा से चौंक पुनि सार-पासे खेलने लगे। इसमें चौपड़ खेलते खेलते ऊषा क्या देखती है कि चहुँ ओर से घनघोर घटा घिर आई, बिजली चमकने लगी, दादुर मोर, पपीहे बोलने लगे। महाराज, पपीहे की बोली सुनते ही राजकन्या इतना कह पिय के कंठ लगी—

तुम पपिहा पिय पिय मत करौ। यह बियोग भाषा परिहरौ॥

इतने में किसीने जाय बानासुर से कहा कि महाराज; तुम्हारा बैरी जागा। बैरी का नाम सुनतेही बानासुर अति कोप करके उठा औ अस्त्र शस्त्र ले ऊषा की पौली में आय खड़ा हुआ और लगा छिपकर देखने। निदान देखते देखते—

बानासुर यों कहै हँकार। को है रे तू गेह मझार॥
घन तन बरन मदन मन हारी। कँवलनैन पीतांबरधारी॥
अरे चोर बाहर किन आवै। जान कहां अब मोसों पावै॥

महाराज; जब बानासुर ने टेरके यों कहे बैन, तब ऊषा औ अनरुद्ध सुन और देख भये निपट अचैन। पुनि राजकन्या ने अति चिंता कर भयमान हो लंबी साँस ले कंत से कहा कि महाराज, मेरा पिता असुरदल ले चढ़ि आया, अब तुम इसके हाथ से कैसे बचोगे।

तबहि कोप अनरुद्ध कहै, मत डरपै तू नारि।
स्यार झुंड राक्षस असुर, पल में डारों मारि॥

ऐसे कह अनरुद्धजी ने वेद मंत्र पढ़, एक सौ आठ हाथ की सिला बुलाय, हाथ में ले, बाहर निकल, दल में जाय बानासुर को ललकारा। इनके निकलतेही बानासुर धनुष चढ़ाय सब कटक ले अनरुद्धजी पर यों टूटा कि जैसे मधुमाखियों का झुंड किसीपै टूटे। जद असुर अनेक अनेक प्रकार के अस्त्र शस्त्र चलाने लगे तद क्रोध कर अनरुद्धजी ने सिला के हाथ कै एक ऐसे मारे कि सब असुरदल काई सा फट गया। कुछ मरे कुछ घायल हुए, बचे सो भाग गये। पुनि बानासुर जाय सबको घेर लाया औ युद्ध करने लगा। महाराज, जितने अस्त्र शस्त्र असुर चलाते थे तितने इधर उधर ही जाते थे औ अनरुद्धजी के अंग में एक भी न लगता था।

जे अनरुद्ध पर परें हथ्यार। अधबर कटें सिला की धार॥
सिला प्रहार सह्यौ नहिं परै। बज्र चोट मनौ सुरपति करै॥
लागत सीस बीच तें फटे। टूटहिं जांघ भुजा धर कटै॥

निदान लड़ते लड़ते जब बानासुर अकेला रह गया औ सब कटक कट गया, तब उसने मनही मन अचरज कर इतना कह नागपास से अनरुद्धजी को पकड़ बाँधा, कि इस अजीत को मैं कैसे जीतूँगा।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज, जिस समय अनरुद्धजी को बानासुर नागपास से बाँध अपनी सभा में ले गया, उस काल अनरुद्धजी तो मन ही मन यों बिचारते थे कि मुझे कष्ट होय तो होय पर ब्रह्मा का बचन झूठा करना उचित नहीं, क्यौंकि जो मैं नागपास से बल कर निकलूँगा तो उसकी अमर्याद होगी, इससे बँधे रहना ही भला है

और बानासुर यह कह रहा था कि अरे लड़के, मैं तुझे अब मारता हूँ जो कोई तेरा सहायक हो तो तू बुला। बीच ऊषा ने पिय की यह दसा सुन चित्ररेखा से कहा कि सखी, धिक्कार है मेरा जीतब को जो पति मेरा दुख में रहै औ मैं सुख से खाऊँ पीऊँ और सोऊँ। चित्ररेखा बोली—सखी, तू कुछ चिंता मत करै, तेरे पति का कोई कुछ कर न सकेगा, निचिन्त रह। अभी श्रीकृष्णचंद औ बलरामजी सब जदुबंसियों को साथ ले चढ़ि आवेंगे और असुरदल को संहार तुझे समेत अनरुद्ध को छुड़ाय ले जायँगे। उनकी यही रीति है कि जिस राजा के सुंदर कन्या सुनते हैं, तहाँ से बल छल कर जैसे बने तैसे ले जाते हैं। उन्हींका यह पोता है जो कुंडलपुर से राजा भीष्मक की बेटी रुक्मिनी को, महाबली बड़े प्रतापी राजा सिसुपाल औ जरासन्ध से सग्राम कर ले गये थे तैसेही अब तुझे ले जाँयगे तू किसी बात की भावना मत करे। ऊषा बोली—सखी, यह दुख मुझसे सहा नहीं जाता।

नागपास बांधे पिय हरी। दहै गात ज्वाला बिष भरी॥
हौ कैसे पौढौं सुख सेना। पिय दुख क्यौंकर देखों नैना॥
प्रीतम बिपत परे क्यों जीऔं। भोजन करौं न पानी पीऔं॥
बर बध अब बानासुर कीजो। मोकौ सरन कंत की दीजो॥
होनहार होनी है होय। तासों कहा कहैगो कोय॥
लोक वेद की लाज न मानौ। पिय संग दुख सुख ही में जानौ॥

महाराज, चित्ररेखा से ऐसे कह जब ऊषा कंत के निकट जाय निडर निसंक हो बैठी तब किसीने बानासुर को जा सुनाया कि महाराज, राजकन्या घर से निकल उस पुरुष के पास गई।

इतनी बात के सुनतेही बानासुर ने अपने पुत्र स्कंध को बुलाय के कहा कि बेटा तुम अपनी बहन को सभा से उठाय, घर में ले जाय, पकड़ रक्खो औ निकलने न दो।

पिता की आज्ञा पातेही स्कंध बहन के पास जा अति क्रोध कर बोला कि तैंने यह क्या किया पापनी, जो छोड़ी लोक लाज औ कान आपनी। हे नीच, मैं तुझे क्या बध करूँ, होगा पाप और अपजस से भी हूँ डरूँ। ऊषा बोली कि भाई, जो तुम्हें भावै सो कहो औ करो। मुझे पार्वतीजी ने जो बर दिया था सो बर मैंने पाया। अब इसे छोड़ और को धाऊँ, तो अपने को गाली चढ़ाऊँ, तजती हैं पति को अकुलीना नारि, यही रीति परंपरा से चली आती है बीच संसार। जिससे बिधना ने सम्बन्ध किया उसीके संग जगत में अपजस लिया तो लिया। महाराज, इतनी बात के सुनतेही स्कंध क्रोध कर हाथ पकड़ ऊषा को वहाँ से मंदिर में उठा लाया औ फिर न जाने दिया।

पुनि अनरुद्धजी को भी वहाँ से उठाय कहीं अनत ले जाय बंध किया। उस काल इधर तो अनरुद्धजी तिय के वियोग में महासोग करते थे औ उधर राजकन्या कंत के बिरह में अन्न पानी तज कठिन जोग करने लगी। इस बीच कितने एक दिन पीछे एक दिन नारद मुनिजी ने पहले तो अनरुद्धजी को जाय समझाया कि तुम किसी बात की चिन्ता मत करो अभी श्रीकृष्णचंद आनंदकंद औ बलराम सुखधाम राक्षसों से कर संग्राम तुम्हें छोड़ाय ले जायँगे।

पुनि बानासुर को जा सुनाया कि राजा जिसे तुमने नागपास से पकड़ बाँधा है, वह श्रीकृष्ण का पोता औ प्रद्युम्नजी का बेटा

है औ अनरुद्ध उसका नाम है। तुम जदुबंसियो को भली भाँति जानते हो, जो जानो सो करो, मैं इस बात से तुम्हें सावधान करने आया था सो कर चला। यह बात सुन, इतना कह बानासुर ने नारदजी को बिदा किया, कि नारदजी मैं सब जानता हूँ।

———

चौसठवाँ अध्याय

श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, जब अनरुद्धजी को बँधे बँधे चार महीने हुए तब नारदजी द्वारका पुरी में गये तो वहाँ क्या देखते हैं कि सब यादव महा उदास मनमलीन तनछीन हो रहे हैं औ श्रीकृष्णजी औ बलरामजी उनके बीच में बैठे अति चिन्ता कर कह रहे हैं कि बालक को उठाय यहाँ से कौन ले गया। इस भाँति की बातें हो रही थीं औ रनवास में रोना पीटना हो रहा था, ऐसा कि कोई किसीकी बात न सुनता था। नारदजी के जातेही सब लोग क्या स्त्री क्या पुरुष सब उठ धाये औ अति व्याकुल तनछीन, मनमलीन, रोते बिलबिलाते सनमुख आन खड़े हुए। आगे अति बिनती कर हाथ जोड़ सिर नाय हाहा खाय खाय नारदजी से सब पूछने लगे।

साँची बात कहौ ऋषिराय। जासो जिय राखें बहिराय॥
कैसे सुधि अनरुद्ध की लहैं। कहौ साधि ताके बल रहैं॥

इतनी बात के सुनतेही श्रीनारदजी बोले कि तुम किसी बात की चिन्ता मत करो औ अपने मन का शोक हरो। अनरुद्धजी जीते जागते सोनितपुर में हैं। वहाँ विन्होंने जाय राजा बानासुर की कन्या से भोग किया, इसीलिये उसने उन्हें नागपास से पकड़ बाँधा है। बिन युद्ध किये वह किसी भाँति अनरुद्धजी को न छोड़ेगा। यह भेद मैंने तुम्हें कह सुनाया आगे जो उपाय तुम से हो सके सो करो। महाराज, यह समाचार सुनाय नारद मुनिजी तो चले गये। पीछे सब जदुबंसियों ने जाय राजा उग्रसेन से

कहा कि महाराज, हमने ठीक समाचार पाये कि अनरुद्धजी सोनितपुर में बानासुर के ह्याँ हैं। इन्होंने उसकी कन्या रमी इससे उनने इन्हें नागपास से बाँध रक्खा है, अब हमें क्या आज्ञा होती है। इतनी बात के सुनतेही राजा उग्रसेन ने कहा कि तुम हमारी सब सेना ले जाओ और जैसे बने तैसे अनरुद्ध को छुड़ा लाओ। ऐसा बचन उग्रसेन के मुख से निकलतेही महाराज, सब यादव तो राजा उग्रसेन का कटक ले बलरामजी के साथ हुए और श्रीकृष्णचंद औ प्रद्युम्नजी गरुड़ पर चढ़ सबसे आगे सोनितपुर को गए।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, जिस काल बलरामजी राजा उग्रसेन का सब दल ले द्वारकापुरी से धौंसा दे सोनितपुर को चले, उस समय की कुछ शोभा बरनी नहीं जाती कि सब के आगे तो बड़े बड़े दंतीले मतवाले हाथियों की पांति, तिनपर धौंसा बाजता जाता था औ ध्वजा पताका फहराती थी। तिनके पीछे एक और गजों की अवली अंबारियों समेत, जिनपर बड़े बड़े रावत, जोधा, सूर, वीर यादव झिलम टोप पहने सब शस्त्र अस्त्र लगाये बैठे जाते थे। उनके पीछे रथों के तातों के तांते दृष्ट आते थे।

विनकी पीठ पर घुड़चढ़ों के यूथ के यूथ बरन बरन के घोड़े गंडे पट्टेवाले, गजगाह पाखर डाले, जमाते, ढहराते, नचाते, कुदाते, फँदाते चले जाते थे और उनके बीच बीच चारन जस गाते थे औ कड़खैत कड़खा। तिस पीछे फरीं, खांड़े, छुरीं, कटारी, जमधर, धोपें, बरछीं, बरछे, भाले, बल्लम, बाने, पटे, धनुष बान, गदा चक्र, फरसे, गँड़ासे, लुहाँगी, गुप्ती, बाँक, बिछुए

समेत अनेक अनेक प्रकार के अस्त्र शस्त्र लिये पैदलों का दल टीड़ी दल सा चला जाता था। उनके मध्य मध्य धौंसे, ढोल, डफ, बाँसुरी, भेर, नरसिंगों का जो शब्द होता था सो अतिही सुहावन लगता था।

उड़ी रेनु आकाश लों छाई। छिप्यौ भानु भयौ निस के भाई॥
चकवी चकवा भयौ वियोग। सुन्दरि करें कंत सों भोग॥
फूले कुमुद कमल कुम्हलाने। निसचर फिरहिं निसा जिय जाने॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, जिस समैं बलरामजी बारह अक्षौहिनी सेना ले अति धूम धाम से उसके गढ़ गढ़ी कोट तोड़ते औ देस उजाड़ते जा सोनितपुर में पहुँचे और श्रीकृष्णचंद औ प्रद्युम्नजी भी आन मिले, तिसी समैं किसी ने अति भय खाय खबराय, जाय हाथ जोड़ सिरनाय बानासुर से कहा कि महाराज, कृष्ण बलराम अपनी सब सेना ले चढ़ आए औ उन्होंने हमारे देस के गढ़, गढ़ी, कोट ढाय गिराए औ नगर को चारों ओर से आय घेरा, अब क्या आज्ञा होती है।

इतनी बात के सुनते ही बानासुर महा क्रोध कर अपने बड़े बड़े राक्षसों को बुलाय बोला—तुम सब दल अपना ले जाय, नगर के बाहर जाय कृष्ण बलराम के सनमुख खड़े हो, पीछे से मैं भी आता हूँ। महाराज, आज्ञा पाते ही वे असुर बात की बात में बारह अक्षौहनी सेना ले श्रीकृष्ण बलरामजी के सोंही लड़ने को शस्त्र अस्त्र लिये आ खड़े रहे। उनके पीछे ही श्रीमहादेवजी का भजन सुमिरन ध्यान कर बानासुर भी आ उपस्थित हुआ।

शुकदेव मुनि बोले कि महाराज, ध्यान के करतेही शिवजी का आसन डोला औ ध्यान छूटा, तो उन्होंने ध्यान धर जाना

कि मेरे भक्त पर भीड़ पड़ी है, इस समय चलकर उसकी चिन्ता मेटा चाहिये ।

यह मनही मन बिचार जब पार्वतीजी को अर्द्धंगधर, जटा जूट बाँध, भस्म चढ़ाय, बहुत सी भाँग और आक धतूरा खाय, स्वेत नागों का जनेऊ पहन, गजचर्म ओढ़, मुंडमाल, सर्पहार पहन, त्रिशूल, पिनाक, डमरू, खप्पर ले, नांदिये पर चढ़, भूत, प्रेत, पिशाच, डाकिनी, शाकिनी, भूतनी प्रेतनी, पिशाचिनी आदि सेना ले भोलानाथ चले, उस समैं की कुछ शोभा बरनी नहीं जाती कि कान में गजमनि की मुद्रा, लिलाट पै चंद्रमा, सीस पर गंग धरै, लाल लाल लोचन करै, अति भयंकर भेष, महाकाल की मूरत बनाये इस रीति से बजाते गाते सेना को नचाते जाते थे कि वह रूप देखेही बनि आवे, कहने में न आवे। निदान कितनी एक बेर में शिवजी अपनी सेना लिए वहाँ पहुँचे कि जहाँ सब असुरदल लिये बानासुर खड़ा था। हर को देखतेही बानासुर हरष के बोला कि कृपासिधु, आप बिन कौन इस समय मेरी सुध ले।

तेज तुम्हारौ इनकौ दहै। यादवकुल अब कैसे रहै॥

यों सुनाय फिर कहने लगा कि महाराज, इस समैं धर्म युद्ध करो औ एक एक के सनमुख हो एक एक लड़ो। महाराज, इतनी बात जो बानासुर के मुख से निकली तो इधर असुरदल लड़ने को तुल कर खड़ा हुआ औ उधर जदुबंसी आ उपस्थित हुए। दोनों ओर जुझाऊ बाजने लगे, शूर बीर रावत जोधा धीर शस्त्र अस्त्र साजने और अधीर नपुंसक कायर खेत छोड़ छोड़ जी ले ले भागने लगे।

उस काल महाकाल सरूप शिवजी श्रीकृष्णचंद के सनमुख हुए। बानासुर बलरामजी के सोंही हुआ, स्कंध प्रद्युम्नजी से आय भिड़ा और इसी भाँति एक एक से जुट गया औ दोनों ओर से शस्त्र चलने लगा। उधर धनुष पिनाक महादेवजी के हाथ, इधर सारंग धनुष लिये यदुनाथ। शिवजी ने ब्रह्मबान चलाया, श्रीकृष्णजी ने ब्रह्म शस्त्र से काट गिराया। फिर रुद्र ने चलाई महा-बयार, सो हरि ने तेज से दीनी टार। पुनि महादेव ने अग्नि उपजाई, वह मुरारि ने मेह बरसा बुझाई और एक महा ज्वाला उपजाई, सो सदाशिवजी के दल में धाई। उसने दाढ़ी मूछ औ जलायके केस, कीने सब असुर भयानक भेस।

जब असुरदल जलने लगा औ बड़ा त्राहकार हुआ, तब भोलानाथ ने जले अधजले राक्षसों औ भूत प्रेत को तो जल बरसाय ठंढा किया और आप अति क्रोध कर नारायनी बान चलाने को लिया। पुनि मनही मन कुछ सोच समझ न चलाय रख दिया। फिर तो श्रीकृष्णजी आलस्य बान चलाय सबको अचेत कर लगे असुरदल काटने, ऐसे कि जैसे किसान खेती काटे। यह चरित्र देख जों महादेवजी ने अपने मन में सोचकर कहा कि अब प्रलय युद्ध किये बिन नहीं बनता; तोंही स्कंध मोर पर चढ़ धाया और अंतरीक्ष हो उसने श्रीकृष्णजी की सेना पर बान चलाया।

तब हरि सों प्रद्युम्न उचरै। मोर चढ्यौ ऊपर ते लरै॥
आज्ञा देहु युद्ध अति करै। मारौं अबहिं भूमि गिर परै॥

इतनी बात के कहते ही प्रभु ने आज्ञा दी औ प्रद्युम्नजी ने एक बान मारा सो मोर को लगा, स्कंध नीचे गिरा। स्कंध के

गिरते ही बानासुर अति कोप कर पाँच * धनुष चढ़ाय, एक एक धनुष पर दो दो बान धर लगा मेह सा बरसाने औ श्रीकृष्णचंद बीच ही लगे काटने। महाराज, उस काल इधर उधर के मारू ढोल डफ से बाजते थे, कड़खैत धमाल सी गाते थे, घावों से लोहू की धार पिचकारियाँ सी चल रही थीं, जिधर तिधर जहाँ तहाँ लाल लाल लोहू गुलाल सा दृष्ट आता था। बीच बीच भूत प्रेत पिशाच जो भाँति भाँति के भेष भयावने बनाए फिरते थे, सो भगत सी खेल रहे थे औ रक्त की नदी रंग की सी नदी बह निकली थी, लड़ाई क्या दोनों ओर से होली सी हो रही थी। इसमें लड़ते लड़ते कितनी एक बेर पीछे श्रीकृष्णजी ने एक बान ऐसा मारा कि उसके रथका सारथी उड़ गया औ घोड़े भड़के। निदान रथवान के मरतेही बानासुर भी रनभूमि छोड़ भागा। श्रीकृष्णजी ने उसका पीछा किया।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, बानासुर के भागने का समाचार पाय उसकी माँ जिसका नाम कटरा, † सो उसी समैं भयानक भेष, छुटकेस, नंग मुनंगी आ श्रीकृष्णचंद के सनमुख खड़ी हुई औ लगी पुकार करने।

देखत ही प्रभु मूँदे नैन। पीठ दई ताके सुन बैन॥
तौलौं बानासुर भज गयो। फिर अपनौ दल जोरत भयो॥

महाराज, जब तक बानासुर एक अक्षौहिनी दल साज वहाँ आया, तब तक कटरा श्रीकृष्णजी के आगे से न हटी। पुत्र की

---

* (क) (ख) दोनों में पाँच है पर पाँच सौ चाहिए क्योंकि उसे एक सहस्र हाथ थे।

† (ख) में कोटवी लिखा है। शुद्ध नाम कोटरा था।

सेना देख अपने घर गई। आगे बानासुर ने आय बड़ा युद्ध किया पर प्रभु के सनमुख न ठहरा, फिर भाग महादेवजी के पास गया। बानासुर को भयातुर देख शिवजी ने अति क्रोध कर, महा विषमज्वर को बुलाय श्रीकृष्णजी की सेना पर चलाया। विस महाबली ने, बड़ा तेजस्वी जिसका तेज सूरज के समान, तीन मूँड़, नौ पग, छह करवाला, त्रिलोचन, भयानक भेष श्रीकृष्णचंद के दल को आय साला। उसके तेज से जदुबंसी लगे जलने औ थर थर काँपने। निदान अति दुख पाय घबराय यदुबंसियों ने आय श्रीकृष्णजी से कहा कि महाराज, शिवजी के ज्वर ने आय सारे कटक को जलाय मारा, इसके हाथ से बचाइये नहीं तो एक भी जदुबंसी जीता न बचेगा। महाराज, इतनी बात सुन औ सबको कातर देख हरि ने सीतज्वर चलाया, वह महादेव के ज्वर पर धाया। इसे देखतेही वह डरकर पलाया औ चला चला सदाशिवजी के पास आया।

तब ज्वर महादेव सों कहै। राखहु सरन कृष्णज्वर दहै॥

यह बचन सुन महादेवजी बोले कि श्रीकृष्णचंदजी के ज्वर को बिन श्रीकृष्णचंद ऐसा त्रिभुवन में कोई नहीं जो हरे। इससे उत्तम यही है कि तू भक्तहितकारी श्रीमुरारी के पास जा। शिव वाक्य सुन सोच विचार विषमज्वर श्रीकृष्णचंद आनंदकंदजी के सनमुख जा हाथ जोड़ अति बिनती कर गिड़गिड़ाय हा हा खाय बोला—हे कृपासिंधु-दीनबंधु-पतितपावन-दीनदयाल मेरा अपराध क्षमा कीजै औ अपने ज्वर से बचाय लीजै।

प्रभु तुम हौ ब्रह्मादिक ईस। तुम्हरी शक्ति अगम जगदीस।
तुमहीं रचकर सृष्टि सँवारी। सब माया जग कृष्ण तुम्हारी॥

कृपा तुम्हारी यह मैं बूझ्यौ। ज्ञान भये जगकरता सूझ्यौ।

इतनी बात के सुनतेही हरि दयाल बोले कि तू मेरी सरन आया इससे बचा, नहीं तो जीता न बचता। मैंने तेरा अब का अपराध क्षमा किया फिर मेरे भक्त औ दासों को मत व्यापियो, तुझे मेरी ही आन है। ज्वर बोला—कृपासिंधु, जो इस कथा को सुनेगा उसे सीतज्वर, एकतरा, औ तिजारी कभी न व्यापैगी। पुनि श्रीकृष्णचंद बोले कि तू अब महादेव के निकट जा, यहाँ मत रह, नहीं तो तेरा ज्वर तुझे दुख देगा। आज्ञा पाते ही बिदा हो दंडवत कर विषमज्वर महादेवजी के पास गया औ ज्वर का बहधा सब मिट गया। इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज

यह संवाद सुने जो कोय। ज्वर कौ डर ताकौ नहिं होय॥

आगे बानासुर अति कोप कर सब हाथों में धनुष बान ले प्रभु के सनमुख आ ललकार कर बोला—

तुमतें युद्ध कियो मैं भारी। तौहू साद न पुजी हमारी॥

जब यह कह लगा सब हाथों से बान चलाने, तब श्रीकृष्णचंदजी ने सुदरसन चक्र को छोड़, उसके चार हाथ रख सब हाथ काट डाले, ऐसे कि जैसे कोई बात के कहते वृक्ष के गुद्दे छाँट डाले। हाथ के कटतेही बानासुर सिथिल हो गिरा, घावों से लहू की नदी बह निकली, तिसमें भुजाएँ मगरमच्छ सी जनाती थीं। कटे हुए हाथियों के मस्तक घड़ियाल से डूबते तिरते*जाते थे। बीच बीच रथ बेड़े नवाड़े से बहे जाते थे और जिधर तिधर रनभूमि में स्वान स्यार गिद्ध आदि पशुपक्षी लोथें खैंच खैंच आपस में लड़

---

* (ख) में यह शब्द नहीं है।

लड़ झगड़ फाड़ फाड़ खाते थे। पुनि कौवे सिरों से आँखें निकाल निकाल ले ले उड़ उड़ जाते थे।

श्रीशुकदेवजी बोले—महाराज, रनभूमि की यह गति देख बानासुर अति उदास हो पछताने लगा। निदान निर्बल हो सदाशिवजी के निकट गया तब—

कहत रुद्र मन माहिं बिचार। अस हरि की कीजै मनुहार॥

इतना कह श्रीमहादेवजी बानासुर को साथ ले वेद पाठ करते वहाँ आए कि जहाँ रनभूमि में श्रीकृष्णचंद खड़े थे। बानासुर को पाओं पर डाल शिवजी हाथ जोड़ बोले कि हे सरनागतवत्सल; अब यह बानासुर आपकी सरन आया इसपर कृपा दृष्टि कीजे औ इसका अपराध मन में न लीजे। तुम तो बार बार औतार लेते हो भूमि का भार उतारने को और दुष्ट हतन औ संसार के तारने को। तुम ही प्रभु अलख अभेद अनंत, भक्तों के हेत संसार में आय प्रकटते हो भगवंत। नहीं तो सदा रहते हो बिराट स्वरूप, तिसका है यह रूप। स्वर्ग सिर, नाभि आकाश, पृथ्वी पाँव, समुद्र पेट, इन्द्र भुजा, पर्वत नख, बादल केस, रोम बृक्ष, लोचन ससि * औ भानु, ब्रह्मा मन, रुद्र अहंकार; पवन स्वासा, पलक लगना रात दिन, गरजन शब्द।

ऐसे रूप सदा अनुसरौ। काहू पै नहिं जाने परौ॥

और यह संसार दुख का समुद्र है इसमें चिन्ता औ मोहरूपी जल भरा है। प्रभु, बिन तुम्हारे नाम की नाव के सहारे कोई इस महा कठिन समुद्र के पार नहीं जा सकता. और यों तो बहुतेरे डूबते उछलते हैं जो नरदेह पाकर तुम्हारा भजन सुमरन औ न

* (क) में सूर औ भानु हैं।

करेगा जाप, सो नर भूलेगा धर्म औ बढ़ावेगा पाप। जिसने संसार में आय तुम्हारा नाम न लिया तिसने अमृत छोड़ विष पिया। जिसके हृदै में तुम बसे जाय उसीको भक्तिमुक्ति मिली गुन गाय।

इतना कह पुनि श्रीमहादेवजी बोले कि हे कृपासिंधु, दीनबंधु, तुम्हारी महिमा अपरंपार है किसे इतनी सामर्थ है जो उसे बखाने औ तुम्हारे चरित्रों को जाने। अब मुझपर कृपा कर इस बानासुर का अपराध क्षमा कीजे औ इसे अपनी भक्ति दीजे। यह भी तुम्हारी भक्ति का अधिकारी है क्योंकि भक्त पहलाद का बंस है। श्रीकृष्णचंद बोले कि शिवजी, हम तुम में कुछ भेद नहीं औ जो भेद समझेगा सो महा नर्क में पड़ेगा औ मुझे कभी न पावेगा। जिसने तुम्हें ध्याया, तिसने अंत समैं मुझे पाया। इसने निसकपट तुम्हारा नाम लिया; तिसी से मैंने इसे चतुर्भुज किया। जिसे तुमने बर दिया औ दोगे, तिसका निबाह मैंने किया और करूँगा।

महाराज, इतना बचन प्रभु के मुख से निकलते ही, सदाशिवजी दंडवत कर बिदा हो अपनी सेना ले कैलास को गये औ श्रीकृष्णचंद वहीं ही खड़े रहे। तब बानासुर हाथ जोड़ सिर नाय विनती कर बोला, कि दीनानाथ, जैसे आपने कृपा कर मुझे तारा तैसे अब चलके दास का घर पवित्र कीजे औ अनरुद्धजी औ ऊषा को अपने साथ लीजे। इस बात के सुनतेही श्रीबिहारी भक्त हितकारी प्रद्युम्नजी को साथ ले बानासुर के धाम पधारे। महाराज, उस काल बानासुर अति प्रसन्न हो प्रभु को बड़ी आवभगत से पाटंबर के पांवड़े डालता लिवाय ले गया। आगे—

चरन धोय चरनोदक लियौ। आचमन कर माथे पर दियौ॥

पुनि कहने लगा कि जो चरनोदक सबको दुर्लभ है सो मैंने हरि की कृपा से पाया औ जन्म जन्म का पाप गँवाया। यही चरनोदक त्रिभुवन को पवित्र करता है, इसीका नाम गंगा है। इसे ब्रह्मा ने कमंडल में भरा, शिवजी ने शीश पर धरा। पुनि सुर मुनि ऋषि ने माना औ भागीरथ ने तीनों देवताओं को तपस्या कर संसार में आना तबसे इसका नाम भागीरथी हुआ। यह पाप मलहरनी, पवित्रकरनी, साध संत को सुखदेनी, बैकुंठ की निसेनी है। औ जो इसमें न्हाया, उसने जन्म जन्म का पाप गँवाया। जिसने गंगा जल पिया, तिसने निःसंदेह परम पद लिया। जिनने भागीरथी का दर्शन किया, तिनने सारे संसार को जीत लिया। महाराज इतना कह बानासुर अनिरुद्धजी औ ऊषा को ले आय, प्रभु के सनमुख हाथ जोड़ बोला—

क्षमिये दोष भावइ भई। यह मैं ऊषा दासी दई॥

यों कह वेद की विधि मे बानासुर ने कन्यादान किया औ तिसके यौतुक में बहुत कुछ दिया, कि जिसका वारापार नहीं।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, ब्याह के होते ही श्रीकृष्णचंद बानासुर को आसा भरोसा दे, राजगद्दी पर बैठाय, पोते बहू को साथ ले, बिदा हो धौंसा बजाय, सब जदुबसियों समेत वहाँ से द्वारका पुरी को पधारे। इनके आने के समाचार पाय सब द्वारकाबासी नगर के बाहर जाय प्रभु को बाजे गाजे से लिवाय लाये। उस काल पुरबासी हाट, बाट, चौहट्टों चौबारों, कोठों से मंगली गीत गाय गाय मंगलाचार करते थे औ राजमन्दिर में श्रीरुक्मिनी आदि सब सुंदरि बधाए गाय गाय रीति भाँति करती थीं औ देवता अपने अपने बिमानों पर बैठे अधर से

फूल बरसाय जैजैकार करते थे और घर बाहर सारे नगर में आनंद हो रहा था, कि उसी समैं बलराम सुखधाम औ श्रीकृष्ण-चंद आनंदकंद सब यदुबंसियों को बिदा दे, अनरुद्ध ऊषा को साथ ले राजमंदिर में जा विराजे।

आनी ऊषा गेह मझारी। हरषहिं देखि कृष्ण की नारी॥
देहिं असीस सासु उर लावें। निरखि हरषि भूषन पहिरावें॥

———

पैसठवाँ अध्याय

श्री शुकदेवजी बोले कि महाराज, इक्ष्वाकुबंसी राजा नृग बड़ा ज्ञानी, दानी, धर्मात्मा, साहसी था। उसने अनगिनत गौ दान किया। जो गंगा की बालू के कन, भादौं के मेह की बूँदें औ आकास के तारे गिने जायँ तो राजा नृग के दान की गायें भी गिनी जायँ। ऐसा जो ज्ञानी महादानी राजा सो थोड़े अधर्म से गिरगिट हो अंधे कुएँ में रहा, तिसे श्रीकृष्णचंदजी ने मोक्ष दिया।

इतनी कथा सुन श्रीशुकदेवजी से राजा परीक्षित ने पूछा—महाराज, ऐसा धर्मात्मा दानी राजा किस पाप से गिरगिट हो अंधे कुएँ में रहा औ श्रीकृष्णचंदजी ने कैसे उसे तारा, यह कथा तुम मुझे समझाकर कहो जो मेरे मन का संदेह जाय। श्रीशुकदेवजी बोले—महाराज, आप चित दे मन लगाय सुनिये, मैं जों की तों सब कथा कह सुनाता हूँ, कि राजा नृग तो नित प्रति गौ दान किया करते ही थे पर एक दिन प्रात ही न्हाय संध्या पूजा करकै सहस्र धौली, धूमरी, काली, पीली भूरी, कबरी गौ मंगाय, रूपे के खुर, सोने के सींग, ताँबे की पीठ समेत पाटंबर उढ़ाय संकल्पी और उनके ऊपर बहुत सा अन धन ब्राह्मनों को दिया, वे ले अपने घर गये। दूसरे दिन फिर राजा उसी भाँति गौ दान करने लगा तो एक गाय पहले दिन की संकल्पी अनजाने आन मिली, सो भी राजा ने उन गायों के साथ दान कर दी। ब्राह्मन ले अपने घर को चला। आगे दूसरे ब्राह्मन ने अपनी गौ पहचान बाट में रोकी औ कहा कि यह गाय मेरी है मुझे कलह राजा के

ह्याँ से मिली है, भाई तू क्यों इसे लिये जाता है। यह ब्राह्मन बोला—इसे तो मैं अभी राजा के ह्याँ से लिये चला आता हूँ तेरी कहाँ से हुई। महाराज, वे दोनों ब्राह्मण इसी भाँति मेरी मेरी कर झगड़ने लगे। निदान झगड़ते झगड़ते वे दोनों राजा के पास गये। राजा ने दोनों की बात सुन हाथ जोड़ अति बिनती कर कहा कि—

कोऊ लाख रूपैया लेउ। गैया एक काहू कौं देउ॥

इतनी बात के सुनतेही दोनों झगड़ालू ब्राह्मन अति क्रोध कर बोले कि महाराज, जो गाय हमने स्वस्ति बोल के ली सो कड़ोड़ रुपये पाने से भी हम न देंगे, वह तो हमारे प्रान के साथ है। महाराज, पुनि राजा ने उन ब्राह्मनों को पाओं पड़ पड़ अनेक अनेक भाँति फुसलाया, समझाया, पर उन तामसी ब्राह्मनों ने राजा का कहना न माना। निदान महा क्रोध कर इतना कह दोनों ब्राह्मन गाय छोड़ चले गये कि महाराज, जो गाय आपने संकल्प कर हमें दी औ हमने स्वस्ति बोल हाथ पसार ली, वह गाय रुपये ले नहीं दी जाती, अच्छा यों तुम्हारे यहाँ रही तो कुछ चिंता नहीं।

महाराज, ब्राह्मनों को जाते ही राजा नृग पहले तो अति उदास हो मन ही मन कहने लगा कि यह अधर्म अनजाने मुझसे हुआ सो कैसे छुटेगा औ पीछे अति दान पुन्य करने लगा। कितने एक दिन बीते राजा नृग कालबस हो मर गया, उसे यम के गन धर्मराज के पास ले गये। धर्मराज राजा को देखते ही सिंहासन से उठ खड़ा हुआ, पुनि आवभगत कर आसन पर बैठाय अति हित कर बोला—महाराज, तुम्हारा पुन्य है बहुत औ पाप है थोड़ा; कहो पहले क्या भुगतोगे।

सुन नृग कहत जोर कै हाथ। मेरौ धर्म टरौ जिन नाथ॥
पहले हौं भुगतोंगौ पाप। तन धरकै सहिहौं संताप॥

इतनी बात के सुनते ही धर्मराज ने राजा नृग से कहा कि महाराज, तुमने अनजाने जो दान की हुई गाय फिर दान की, उसी पाप से आपको गिरगिट हो बन बीच गोमती तीर अंधे कुएँ में रहना हुआ। जब द्वापर के अंत में श्रीकृष्णचंद अवतार लेंगे तब तुम्हें वे मोक्ष देंगे। महाराज, इतना कह धर्मराज चुप रहा औ राजा नृग उसी समैं गिरगिट हो अंधे कुएँ में जा गिरा औ जीव भक्षन कर कर वहाँ रहने लगा।

आगे कई जुग बीते द्वापर के अंत में श्रीकृष्णचंदजी ने अवतार लिया औ ब्रजलीला कर जब द्वारका को गए औ उनके बेटे पोते भए, तब एक दिन कितने एक श्रीकृष्णजी के बेटे पोते मिल अहेर को गए औ बन में अहेर करते करते प्यासे भए! दैवी, दे बन में जल ढूँढ़ते ढूँढ़ते उसी अंधे कुएँ पर गए, जहाँ राजा नृग गिरगिट का जन्म ले रहा था। कुएँ में झाँकते ही एक ने पुकारके सब से कहा कि अरे भाई, देखो इस कूप में कितना बड़ा एक गिरगिट है।

इतनी बात के सुनते हीं सब दौड़ आए औ कुएँ के मनघटे पर खड़े हो लगे पगड़ी फेटे मिलाय मिलाय लटकाय लटकाय उसे काढ़ने औ आपस में यों कहने कि भाई इसे बिन कुएँ से निकाले हम यहाँ से न जायँगे। महाराज, जब वह पगड़ी फेटों की रस्सी से न निकला तब उन्होंने गाँव से सन, सूत, मूंज, चाम की मोटी मोटी भारी बरतें मँगवाईं और कुएँ में फाँस गिरगिट को बाँध बलकर खैंचने लगे, पर वह वहाँ से टसका भी

नहीं। तब किसी ने द्वारका में जाय श्रीकृष्णजी से कहा कि महाराज, बन में अंधे कुएँ के भीतर एक बड़ा मोटा भारी गिरगिट है, उसे सब कुँवर काढ हारे पर वह नहीं निकलता।

इतनी बात के सुनते ही हरि उठ धाए और चले चले वहाँ आए जहाँ सब लड़के गिरगिट को निकाल रहे थे। प्रभु को देखते ही सब लड़के बोले कि पिता देखो यह कितना बड़ा गिरगिट है, हम बड़ी बेर से इसे निकाल रहे हैं यह निकलता नहीं। महाराज, इस बचन को सुन जों श्रीकृष्णचंदजी ने कुएँ में उतर उसके शरीर से चरन लगाया, तों वह देह को छोड़ अति सुंदर पुरुष हुआ।

भूपति रूप रह्यौ गहि पाय। हाथ जोड़ बिनवै सिर नाय॥

कृपासिन्धु, आपने बड़ी कृपा की जो इस महा बिपत में आय मेरी सुध ली। शुकदेवजी बोले - राजा, जब वह मनुष रूप हो हरि से इस ढब की बातें करने लगा, तब यादवों के बालक औ हरि के बेटे पोते अचरज कर श्रीकृष्णचंद से पूछने लगे कि महाराज, यह कौन है और किस पाप से गिरगिट हो यहाँ रहा था, सो कृपाकर कहो तो हमारे मन का संदेह जाय। उस काल प्रभु ने आप कुछ न कह उस राजा से कहा—

अपनौ भेद कहौ समझाय। जैसे सबै सुनै मन लाय॥
को हौ आप कहाँ ते आए? कौन पाप यह काया पाए?
सुनकै नृग कह जोरे हाथ। तुम सब जानत हौ यदुनाथ॥

तिसपर आप पूछते हो तो मैं कहता हूँ, मेरा नाम है राजा नृग। मैंने अनगिनत गौ ब्राह्मनों को तुम्हारे निमित्त दीं। एक दिन की बात है कि मैंने कितनी एक गाय संकल्प कर ब्राह्मनों को

दीं, दूसरे दिन उन गायों में से एक गाय फिर आई सो मैंने और गायों के साथ अनजाने दूसरे द्विज को दान कर दी। जों वह लेकर निकला तों पहले ब्राह्मन ने अपनी गौ पहचान इससे कहा—यह गाय मेरी है मुझे कल राजा के ह्याँ से मिली है तू इसे क्यों लिये जाता है। वह बोला मैं अभी राजा के ह्याँ से लिये चला आता हूँ तेरी कैसे हुई। महाराज, वे दोनों विप्र इसी बात पर झगड़ते झगड़ते मेरे पास आए। मैंने उन्हें समझाया और कहा कि एक गाय के पलटे मुझ से लाख रुपैया लो औ तुममें से कोई यह गाय छोड़ दो।

महाराज, मेरा कहा हठ कर उन दोनों ने न माना। निदान गौ छोड़ क्रोध कर वे दोनों चले गए। मैं अछताय पछताय मनमार बैठ रहा। अन्त समैं जम के दूत मुझे धर्मराज के पास ले गये धर्मराज ने मुझ से पूछा कि राजा तेरा धर्म है बहुत औ पाप थोड़ा, कह पहले क्या भुगतेगा। मैंने कहा—पाप। इस बात के सुनते ही महाराज, धर्मराज बोले कि राजा, तैंने ब्राह्मन को दी हुई गाय फिर दान की, इस अधर्म से तू गिरगिट हो पृथ्वी पर जाय गोमती तीर बन के बीच अंधकूप में रह। जब द्वापर युग के अन्त में श्रीकृष्णचंद अवतार ले तेरे पास जायँगे तब तेरा उद्धार होगा।

महाराज, तभी से मैं सरट स्वरूप इस अंधकूप में पड़ा आपके चरन कमल का ध्यान करता था, अब आय आपने मुझे महाकष्ट से उबारा औ भवसागर से पार उतारा।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज, इतना कह राजा नृग तो बिदा हो बिमान में बैठ

बैकुंठ को गया औ श्रीकृष्णचंदजी सब बाल गुपालों को समझाय के कहने लगे—

बिप्र दोष जिन कोऊ करौ। मत कोउ अंस बिप्र को हरौ॥
मन संकल्प कियो जिन राखौ। सत्य बचन बिप्रन सों भाखौ॥
बिप्रहि दियौ फेर जो लेइ। ताकौ दंड इतौ जम देइ॥
बिप्रन के सेवक भए रहियौ। सब अपराध बिप्र कौ सहियौ॥
बिप्रहि माने सो मोहि माने। बिप्रन अरु मोहि भिन्न न जाने॥

जो मुझ में औ ब्राह्मन में भेद जानेगा सो नर्क में पड़ेगा औ बिप्र को मानेगा वह मुझे पावेगा औ निसंदेह परमधाम में जावेगा।

महाराज, यह बात कह श्रीकृष्णजी सब को वहाँ से ले द्वारका पुरी पधारे।

———

छाछठवाँ अध्याय

श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, एक समैं श्रीकृष्णचंद आनंद कंद औ बलराम सुखधाम मनिमय मंदिर में बैठे थे कि बलदेवजी ने प्रभु से कहा—भाई, जब हमें बृन्दाबन से कंस ने बुला भेजा था औ हम मथुरा को चले थे, तब गोपियों और नंद जसोदा से हमने तुमने यह बचन किया था कि हम शीघ्रही आय मिलेंगे सो वहाँ न जाय द्वारका में आय बसे। वे हमारी सुरत करते होंगे, जो आप आज्ञा करें तो हम जाय जन्मभूमि देखि आवें औ उनका समाधान करि आवें। प्रभु बोले कि अच्छा। इतनी बात के सुनतेही बलरामजी सबसे बिदा हो हल मूसल ले रथ पर चढ़ सिधारे।

महाराज, बलरामजी जिस पुर नगर गाँव में जाते थे तहाँ के राजा आगू बढ़ अति शिष्टाचार कर इन्हें ले जाते थे औ ये एक एक का समाधान करते जाते थे। कितने एक दिन में चले चले बलरामजी अवंतिका पुरी पहुँचे।

बिद्या गुरु कौं कियौ प्रनाम। दिन दस तहाँ रहे बलराम॥

आगे गुरु से बिदा हो बलदेवजी चले चले गोकुल में पधारे तो देखते क्या हैं कि बन में चारों ओर गायें मुँह बाये बिन तृन खाये श्रीकृष्णचंद की सुरत किये बांसुरी की तान में मन दिये राँभती हौंकती फिरती हैं। तिनके पीछे पीछे ग्वाल बाल हरिजस गाते प्रेम रंग राते चले जाते हैं औ जिधर तिधर नगर निवासी लोग प्रभु के चरित्र औ लीला बखान रहे हैं।

महाराज, जन्म-भूमि में जाय ब्रजबासियों औ गायों की यह

अवस्था देखि बलरामजी करुना कर नयन में नीर भर लाए। आगे रथ की ध्वजा पताका देख श्रीकृष्णचंद औ बलरामजी का आना जान सब ग्वाल बाल दौड़ आए। प्रभु उनके आते ही रथ से उतर लगे एक एक के गले लग लग अति हित से क्षेम कुशल पूछने। इस बीच किसीने जा नंद जसोदा से कहा कि बलदेवजी आए। यह समाचार पाते ही नंद जसोदा औ बड़े बड़े गोप ग्वाल उठ धाए। उन्हें दूर से आते देख बलरामजी दौड़कर नंदराय के पाओं पर जाय गिरे, तब नंदजी ने अति आनंद कर नयनों में जल भर, बड़े प्यार से बलरामजी को उठाय कंठ से लगाया औ वियोग दुख गँवाया। पुनि प्रभु ने—

गहे चरन जसुमति के जाय। उन हित कर उरु लिये लगाय॥
भुज भरि भेट कंठ गहि रही। लोचन तें जल सरिता बही॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी ने राजा से कहा कि महाराज, ऐसे मिल जुल नंदरायजी बलरामजी को घर में ले जाय कुशल क्षेम पूछने लगे कि कहो उग्रसेन बसुदेव आदि सब यादव औ श्रीकृष्णचंद आनंदकंद आनंद से हैं और कभी हमारी सुरत करते हैं। बलरामजी बोले कि आपकी कृपा से सब आनंद मंगल से हैं औ सदा सर्वदा आपका गुन गाते रहते हैं। इतना बचन सुन नंदराय चुप रहे। पुनि जसोदा रानी श्रीकृष्णजी की सुरत कर लोचन में नीर भर अति व्याकुल हो बोलीं कि बलदेव जी, हमारे प्यारे नैनों के तारे श्रीकृष्णजी अच्छे हैं। बलरामजी ने कहा—बहुत अच्छे हैं। पुनि नंदरानी कहने लगीं कि बलदेव, जब से हरि ह्याँ से सिधारे तब से हमारी आँख आगे अंधेरा ही रहा है, हम आठ प्रहर उन्हीं का ध्यान किये रहते हैं औ वे हमारी सुरत

भुलाय द्वारका में जाय छाय रहे औ देखो बहन देवकी रोहनी भी हमारी प्रीति छोड़ बैठीं।

मथुरा तें गोकुल ढिग जान्यौ। बसी दूर तबही मन मान्यौ॥
भेटन मिलन आवते हरी। फिर न मिलैं ऐसी उन करी॥

महाराज, इतना कह जब जसोदाजी अति व्याकुल हो रोने लगीं, तब बलरामजीने बहुत समझाय बुझाय आसा भरोसा दे उनको ढाढ़स बँधाया। पुनि आप भोजन कर पान खाय घर से बाहर निकले तो क्या देखते हैं, कि सब ब्रज युवती तनछीन, मनमलीन, छुटे केस, मैले भेष, जी हारे, घर बार की सुरत बिसारे, प्रेम रंग रातीं, जोबन की मातीं, हरिगुन गातीं, बिरह में व्याकुल जिधर तिधर मत्तवत चली जाती हैं। महाराज, बलरामजी को देखते ही अति प्रसन्न हो सब दौड़ आईं औ दडवत कर हाथ जोड़ चारों ओर खड़ी हो लगीं पूछने औ कहने कि कहो बलराम सुख-धाम, अब कहाँ बिराजते हैं हमारे प्रान सुंदर श्याम? कभी हमारी सुरत करते हैं बिहारी, कै राज पाट पाय पिछली प्रीति सब बिसारी। जब से ह्याँ से गये हैं तब से एक बार ऊधो के हाथ जोग का संदेसा कह पठाया था; फिर किसी की सुध न ली। अब जाय समुद्र माहीं बसे तो काहे को किसी की सोध लेंगे। इतनी बात के सुनतेही एक गोपी बोल उठी कि सखी, हरि की प्रीति का कौन करै परेखा, उनका तो देखा सब से यही लेखा।

वे काहू के नाहिन ईठ। मात पिता कौ जिन दई पीठ॥
राधा बिन रहते नहीं घरी। सोऊ है बरसाने परी॥

पुनि हम तुमने घर बार छोड़, कुल कान लोक लाज तज, सुत पति त्याग, हरि से नेह लगाय क्या फल पाया। निदान नेह

की नाव पर चढ़ाय बिरह समुद्र माँझ छोड़ गए। अब सुनती हैं कि द्वारका में जाय प्रभु ने बहुत ब्याह किये और सोलह सहस्र एक सौ राजकन्या जो भौमासुर ने घेर रक्खी थीं, तिन्हें भी श्रीकृष्ण ने लाय ब्याहा। अब उनसे बेटे पोते नाती भये, उन्हें छोड़ ह्यँ क्यौं आवेंगे। यह बात सुन एक और गोपी बोली की सखी! तुम हरि की बातों का कुछ पछतावा ही मत करो, क्यौंकि उनके तो गुन सब ऊधोजी ने आय ही सुनाए थे। इतना कह पुनि वह बोली कि आली मेरी बात मानौ तो अब

हलधरजू के परसौ पाय। रहिहैं इन्हींके गुन गाय ॥
ये हैं गौर स्याम नहिं गात। करिहैं नाहिं कपट की बात ॥
सुनि संकर्षन उत्तर दियौ। तिहरे हेतु गवन हम कियौ ॥
आवन हम तुमसों कहि गये। ताते कृष्ण पठै ब्रज दये ॥
रहि द्वै मास करेंगे रास। पुजवेंगे सब तुम्हरी आस ॥

महाराज, बलरामजी ने इतना कह सब ब्रज युवतियों को आज्ञा दी कि आज मधुमास की रात है तुम सिंगार कर बन में आओ, हम तुम्हारे साथ रास करेंगे। यह कह बलरामजी साँझ समैं बन को सिधारे, तिनके पीछे सब ब्रजयुवती भी सुथरे वस्त्र आभूषन पहन, नख सिख से सिंगार कर बलदेवजी के पास पहुँची।

ठाढ़ी भईं सबै सिर नाय। हलधर छबि बरनी नहिं जाय ॥
कनक बरन नीलाँबर धरें। ससिमुख कँवलनयन मन हरें ॥
कुंडल एक श्रवन छबि छाजै। मनौ भान ससि संग बिराजै ॥
एक श्रवन हरिजस रस पान। दूजौ कुंडल धरत न कान ॥
अंग अंग प्रति भूषन घने। तिनकी शोभा कहत न बने ॥

यों कहि पाँय परी सुंदरी। लीला रास करहु रस भरी ॥

महाराज, इतनी बात के सुनतेही बलरामजी ने हूँ किया। हूँ के करते ही रास की सब वस्तु आय उपस्थित हुई। तब तो सब गोपियाँ सोच संकोच तज, अनुराग कर बीन, मृदंग, करताल, उपंग, मुरली आदि सब यंत्र ले ले लगीं बजाने गाने औ थेइ थेइ कर नाच नाच भाव बताय बतात प्रभु को रिझाने। उनका बजाना गाना नाचना सुन देख मगन हो बारुनी पान कर बलदेवजी भी सब के साथ मिल गाने नाचने औ अनेक अनेक भाँति के कुतूहल कर कर सुख देने लेने लगे। उस काल देवता, गंधर्व, किन्नर, यक्ष अपनी अपनी स्त्रियों समेत आय आय, विमान पर बैठे प्रभु गुन गाय गाय अधर से फूल बरसाते थे। चंद्रमा तारामंडल समेत रासमंडली का सुख देख देख किरनों से अमृत बरसाता था औ पवन पानी भी थँभ रहा था।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, इसी भांति बलरामजी ने ब्रज में रह चैत्र बैसाख दो महीने रात्र को तो ब्रज युवतियों के साथ रास बिलास किया औ दिन को हरिकथा सुनाय नंद जसोदा को सुख दिया। तिसीमें एक दिन रात समै रास करते करते बलरामजी ने जा—

नदी तीर करके बिश्राम। बोले तहाँ कोप के राम ॥
यमुना तू इतही नहिं आव। सहस्र धार कर मोहि न्हवाव ॥
जो न मानिहै कह्यो हमारौ। खंड खंड जल होय तिहारौ ॥

महाराज, जब बलरामजी की बात अभिमान कर यमुना ने सुनी अनसुनी की, तब तो इन्होंने क्रोध कर उसे हल से खेंच ली औ स्नान किया। उसी दिन से वहाँ यमुना अब तक टेढ़ी है।

आगे न्हाय श्रम मिटाय बलरामजी सब गोपियों को सुख दे साथ ले बन से चल नगर में आए, तहाँ—

गोपी कहैं सुनौं ब्रजनाथ। हमकौ हूँ लै चलियौ साथ॥

यह बात सुन बलरामजी गोपियों को आसा भरोसा दे, ढाढ़स बँधाय बिदाकर बिदा होने नंद जसोदा के निकट गये। पुनि विन्हे भी समझाय बुझाय धीरज बँधाय, कई दिन रह बिदा हो द्वारका को चले और कितने एक दिनों में जाय पहुँचे।

———

सँड़सठवाँ अध्याय

श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, काशीपुरी में एक पौंड्रक नाम राजा, सो महाबली औ बड़ा प्रतापी था। तिसने विष्णु का भेष किया औ छल बल कर सब का मन हर लिया। सदा पीत बसन, बैजंतीमाल, मुक्तमाल, मनिमाल पहने रहे और संख, चक्र गदा, पद्म लिए, दो हाथ काठ के किये, एक घोड़े पर काठही का गरुड़ धरे उसपर चढ़ा फिरै। वह बासुदेव पौंड्रक कहावे औ सब से आपको पुजावे। जो राजा उसकी आज्ञा न माने उसपर चढ़ जाय फिर मार धाड़ कर विसे अपने बस में रक्खै।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि राजा, विसका यह आचरन देख सुन देस देस, नगर नगर, गाँव गाँव, घर घर में लोग चरचा करने लगे कि एक बासुदेव तो ब्रजभूमि के बीच युद्धकाल में प्रकट हुए थे सो द्वारका पुरी में बिराजते हैं, दूसरा अब काशी में हुआ है, दोनों में हम किसे सच्चा जानें औ मानें। महाराज, देश देश में वह चरचा हो रही थी कि कुछ संधान पाय, बासुदेव पौंड्रक एक दिन अपनी सभा में आय बोला—

को है कृष्ण द्वारका रहै। ताकौं बासुदेव जग कहै॥
भक्त हेतु भू हौं औतर्‍यौ। मेरौ भेष तहाँ तिन धर्‍यौ॥

इतनी बात कह एक दूत को बुलाय, उसने ऊँच नीच की बातें सब समझाय बुझाय, इतना कह द्वारका में श्रीकृष्णचंद जी के पास भेज दिया कि कै तो मेरा भेष बनाए फिरता है सो छोड़ दे, नहीं तो लड़ने का विचार कर। आज्ञा पाते ही दूत विदा हो

काशी से चला चला द्वारकापुरी में पहुँचा औ श्रीकृष्णचंदजी की सभा में जा उपस्थित हुआ। प्रभु ने इससे पूछा कि तू कौन है और कहाँ से आया है? बोला—मैं काशीपुरी के बासुदेव पौंड्रक का दूत हूँ, स्वामी का कुछ संदेसा कहने आपके पास आया हूँ। कहो तो कहूँ। श्रीकृष्णचंद बोले—अच्छा कह। प्रभु के मुख से यह बचन निकलते ही दूत खड़ा हो हाथ जोड़ कहने लगा कि महाराज, बासुदेव पौंड्रक ने कहा है कि त्रिभुवनपति जगत का करता तो मैं हूँ, तू कौन है जो मेरा भेष बनाय जरासंध के डर से भाग द्वारका में जाय रहा है। कै तो मेरा बाना छोड़ शीघ्र आय मेरी शरण गह नहीं तो तेरे सब जदुबंसियों समेत तुझे आय मारूंगा औ भूमि का भार उतार अपने भक्तों को पालूँगा। मैं ही हूँ, अलख अगोचर निरंकार*। मेरा ही जप, तप, यज्ञ, दान करते हैं सुर, मनि, ऋषि, नर बार बार। मैं ही ब्रह्मा हो बनाता हूँ, विष्णु हो पालता हूँ, शिव हो संहारता हूँ। मैंने ही मच्छ रूप हो बेद डूबते निकाले, कच्छ स्वरूप हो गिरधारन किया, बाराह बन भूमि को रख लिया नृसिंह अवतार ले हिरनकस्यप को बध किया, बावन अवतार ले बलि को छला, रामावतार ले महादुष्ट रावन को मारा। मेरा यही काम है कि जब जब असुर मेरे भक्तों को आय सताते हैं तब तब मैं अवतार ले भूमि का भार उतारता हूँ।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज, बासुदेव पौंड्रक का दूत तो इस ढब की बातें करता था

---

* (ख) में 'निराकार' है।

औ श्रीकृष्णचंद आनंदकंद रत्नसिंहासन पर बैठे यादवों की सभा में हँस हँसकर सुनते थे, कि इस बीच कोई जदुबंसी बोल उठा

तोहि कहा जम आयो लैन। भाखत तू जो ऐसे बैन॥
मारें कहा तोहि हम नीच। आयो है कपटी के बीच॥

जो तु बसीठ न होता तो बिन मारे न छोड़ते, दूत को मारना उचित नहीं। महाराज, जब जदुबंसी ने यह बात कही तब श्रीकृष्णजी ने उस दूत को निकट बुलाय, समझाय बुझाय के कहा कि तू जाय अपने बासुदेव से कह कि कृष्ण ने कहा है जो मैं तेरा बाना छोड़ सरन आता हूँ सावधान हो रहे। इतनी बात के सुनते ही दूत दंडवत कर बिदा हुआ औ श्रीकृष्णचंदजी भी अपनी सेना ले काशीपुरी को सिधारे। दूत ने जाय बासुदेव पौंड्रक से कहा कि महाराज, मैंने द्वारका में जाय आपका कहा संदेसा सब श्रीकृष्ण को सुनाया। सुनकर उन्होंने कहा कि तू अपने स्वामी से जाय कह कि सावधान हो रहे, मैं उसका बाना छोड़ सरन लेने आता हूँ।

महाराज, बसीठ यह बात कहता ही था कि किसीने आय कहा – महाराज, आप निचिंत क्या बैठे हो श्रीकृष्ण अपनी सेना ले चढ़ि आया। इतनी बात के सुनतेही बासुदेव पौंड्रक उसी भेष से अपना सब कटक ले चढ़ धाया औ चला चला श्रीकृष्णचंद के सनमुख आया। तिसके साथ एक और भी काशी का राजा चढ़ दौड़ा। दोनों ओर दल तुल कर खड़े हुए, जुझाऊ बाजने लगे, सूर बीर रावत लड़ने औ कायर खेत छोड़ छोड़ अपना जीव ले ले भागने लगे। उस काल युद्ध करता करता कालबस हो बासुदेव पौंड्रक उसी भाँति श्रीकृष्णचंद के सनमुख जा ललकारा। उसे विष्णु भेष से देख सब जदुबंसियों ने श्रीकृष्णचंद से पूछा

कि महाराज, इसे इस भेष से कैसे मारेंगे ? प्रभु ने कहा-कपटी के मारने का कुछ दोष नहीं ।

इतना कह हरि ने सुदरसन चक्र को आज्ञा दी। उसने जातेही जो दो भुजा काठ की थी सो उखाड़ लीं, उसके साथ गरुड़ भी टूटा औ तुरंग भागा। जब बासुदेव पौंड्रक नीचे गिरा तब सुदरसन ने उसका सिर काट फेंका।

कटत सीस नृप पौंड्रक तऱ्यो। सीस जाय काशी में पऱ्यो ॥
जहाँ हुतौ ताकौ रनवासु। देखत सीस सुंदरी तासु ॥
रोवें यों कहि खैंचे बार। यह गति कहा भई करतार ॥
तुम तो अजर अमर है भए। कैसे प्रान पलक में गए ॥

महाराज, रानियों का रोना सुन सुदक्ष नाम उसका एक बेटा था सो वहाँ आय, बाप का सिर कटा देख अति क्रोध कर कहने लगा कि जिसने मेरे पिता को मारा है उससे मैं बिन पलटा लिये न रहूँगा।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, बासुदेव पौंड्रक को मार श्रीकृष्णचंदजी तो अपना सब कटक ले द्वारका को सिधारे औ उसका बेटा अपने बाप का बैर लेने को महादेवजी की अति कठिन तपस्या करने लगा। इसमें कितने एक दिन पीछे एक दिन प्रसन्न हो महादेव भोलानाथ ने आय कहा कि बर माँग। यह बोला—महाराज, मुझे यही बर दीजे कि श्रीकृष्ण से मैं अपने पिता का बैर लूँ। शिवजी बोले—अच्छा, जो तू बैर लिया चाहता है तो एक काम कर। बोला—क्या ? कहा—उलटे वेदमंत्रों से यज्ञ कर, इससे एक राक्षसी अग्नि से निकलेगी, उससे जो तू कहैगा सो वह करेगी। इतना वचन शिवजी के मुख

से सुन महाराज, वह जाय ब्राह्मनों को बुलवाय बेदी रच तिल, जौ, घी, चीनी आदि सब होम की सामा ले शाकल बनाय लगा उलटे बेदमंत्र पढ़ पढ़ होम करने। निदान यज्ञ करते करते अग्नि-कुंड से कृत्या नाम एक राक्षसी निकली, सो श्रीकृष्णजी के पीछे ही पीछे नगर देस गाँव जलाती जलाती द्वारकापुरी में पहुँची औ लगी पुरी को जलाने। नगर को जलता देख सब जदुबंसी भय खाय श्रीकृष्णचंदजी के पास जा पुकारे कि महाराज, इस आग से कैसे बचेंगे, यह तो सारे नगर को जलाती चली आती है। प्रभु बोले—तुम किसी बात की चिंता मत करो, यह कृत्या नाम राक्षसी काशीसे आई है, मैं अभी इसका उपाय करता हूँ।

महाराज, इतना कह श्रीकृष्णजी ने सुदरसन चक्र को आज्ञा दी कि इसे मार भगाव और इसी समय जाय काशीपुरी को जलाय आव। हरि की आज्ञा पातेही सुदरसन चक्र ने कृत्या को मार भगाया औ बात के कहते ही काशी को जा जलाया।

परजा भागी फिरे दुखारी। गारी देहिं सुदक्षहि भारी॥
फिर्‍यौ चक्र शिवपुरी जराय। सोई कही कृष्ण सो आय॥

अड़सठवाँ अध्याय

श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, जैसे बलराम सुखधाम रूप-निधान ने दुबिद कपि को मारा, तैसे ही मैं कथा कहता हूँ, तुम चित दै सुनौ। एक दिन दुबिद, जो सुग्रीव का मंत्री औ मयंद्री* कपि का भाई औ भौमासुर का सखा था, कहने लगा कि एक सूल मेरे मन में है सो जब न तब खटकता है। यह बात सुन किसीने उससे पूछा कि महाराज, सो क्या? बोला—जिसने मेरे मित्र भौमासुर को मारा तिसे मारूँ तो मेरे मन का दुख जाय।

महाराज, इतना कह वह विसी समैं अति क्रोध कर द्वारका पुरी को चला, श्रीकृष्णचंद के देस उजाड़ता, औ लोगों को दुख देता। किसीको पानी बरसाय बहाया, किसी को आग बरसाय जलाया। किसीको पहाड़ से पटका। किसी पर पहाड़ दे पटका। किसीको समुद्र में डुबाया किसीको पकड़ बाँध गुफा में छिपाया। किसीका पेट फाड़ डाला, किसीपर वृक्ष उखाड़ मारा। इसी रीति से लोगों को सताता जाता था और जहाँ मुनि, ऋषि, देवताओं को बैठे पाता था, तहाँ गू, मूत, रुधिर बरसाता था। निदान इसी भाँति लोगों को दुख देता औ उपाध करता जा द्वारका पुरी पहुँचा औ अल्प तन धर श्रीकृष्णचंद के मंदिर पर जा बैठा। उसको देख सब सुंदरि मंदिर के भीतर किवाड़ दे दे भागकर जाय छिपीं। तब तो वह मनही मन यह बिचार बलरामजी के समाचार पाय रैवतगिर पर गया कि—

---

*(ख) में 'मैंद' लिखा है।

पहलै हलधर कौं बध करौं। पाछै प्रान कृष्ण के हरौं॥

जहाँ बलदेवजी स्त्रियों के साथ विहार करते थे, महाराज, छिपकर यह वहाँ क्या देखता है कि बलरामजी मद पी सब स्त्रियों को साथ ले एक सरोवर बीच अनेक अनेक भाँति की लीला कर कर, गाय गाय, न्हाय न्हलाय रहे हैं। यह चरित्र देख दुबिद एक पेड़ पर जा चढ़ा औ किलकारियाँ मार मार, घुरक घुरक लगा डाल डाल कूद कूद, फिर फिर चरित्र करने औ जहाँ मदिरा का भरा कलस औ सबके चीर धरे थे, तिनपर हगने मूतने लगा। बंदर को सब सुंदरि देखतेही डरकर पुकारीं कि महाराज, यह कपि कहाँ से आया जो हमें डराय, हमारे वस्त्रों पर हग मूत रहा है। इतनी बात के सुनतेही बलदेवजी ने सरोवर से निकल जों हँसके ढेल चलाया, तों वह इनको मतवाला जान महा क्रोध कर किलकारी मार नीचे आया। आतेही उसने मद का भरा घड़ा जो तीर पर धरा था सो लुढ़ाय दिया औ सारे चीर फाड़ लीर लीर कर डाले। तब तो क्रोध कर बलरामजी ने हल मूसल सँभाले औ वह भी पर्वत सम हो प्रभु के सोंही युद्ध करने को आय उपस्थित हुआ। इधर से ये हल मूसल चलाते थे औ उधर से वह पेड़ पर्वत।

महायुद्ध दोऊ मिल करैं। नेक न कहूँ ठौर तें टरैं॥

महाराज, ये तो दोनों बली अनेक अनेक प्रकार की घातें बातें कर निधड़क लड़ते थे, पर देखनेवालों का मारे भय के प्रानही निकलता था। निदान प्रभु ने सबको दुखित जान दुबिद को मार गिराया। उसके मरतेही सुर नर मुनि सबके जी को आनंद हुआ औ दुख दंद गया।

फूले देव पहुप बरसावैं। जै जै कर हलधरहि सुनावैं॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी ने कहा कि महाराज, त्रेतायुग से वह बंदरही था तिसे बलदेवजी ने मार उद्धार किया। आगे बलराम सुखधाम सबको सुख दे वहाँ से साथ ले श्रीद्वारका पुरी में आए औ दुबिद के मारने के समाचार सारे जदुबंसियों को सुनाए।

उन्हत्तरवाँ अध्याय

श्रीशुकदेवजी बोले कि राजा, अब मैं दुर्योधन की बेटी लक्ष्मना के विवाह की कथा कहता हूँ, कि जैसे संबू[1] हस्तिनापुर जाय उसे ब्याह लाए। महाराज, राजा दुर्योधन की पुत्री लक्ष्मना जब ब्याहन जोग हुई, तब उसके पिता ने सब देस देस के नरेसों को पत्र लिख लिख बुलाया औ स्वयंबर किया। स्वयंबर के समाचार पाय श्रीकृष्णचंद का पुत्र जो जाम्मवंती से था, संदू नाम वह भी वहाँ पहुँचा। वहाँ जाय संबू क्या देखता है कि देस देस के नरेस बलवान, गुनवान, रूपनिधान, महाजन सुथरे वस्त्र आभूपन रत्नजटित पहने, अस्त्र शस्त्र बांधे, मौन साधे स्वयंबर के बीच पांति पांति खड़े हैं औ उनके पीछे उसी भाँति सब कौरव भी। जहाँ तहाँ बाहर बाजन बाज रहे हैं, भीतर मंगली लोग मंगलाचार कर रहे हैं। सबके बीच राजकुमारी, मात पिता की प्यारी मन ही मन यों कहती हार लिए आँखों की सी पुतली फिरती है, कि मैं किसे बरूँ।

महाराज, जब वह सुंदरि शीलवान, रूपनिधान माला लिए लाज किये फिरती फिरती संबू के सनमुख आई तब इन्होंने सोच संकोच तज निर्भय उसे हाथ पकड़ रथ में बैठाय अपनी बाट ली। सब राजा खड़े मुँह देखते रह गए और कर्न, द्रोन, सल्य, भूरिश्रवा, दुर्योधन आदि सारे कौरव भी उस समय कुछ न बोले। पुनि अति क्रोध कर आपस में कहने लगे कि देखो इसने क्या

१–(ख) में 'शांब' (शुद्ध नाम) है।

काम किया, जो रस में आय अनरस किया। कर्न बोला कि जदु-बंसियों की सदा से यह टेव है कि जहाँ कहीं शुभ काज में जाते हैं तहाँ उपाधही करते हैं। सल्य ने कहा—

जातहीन अबही ये बढ़े। राज पाय माथे पर चढ़े॥

इतनी बात के सुनतेही सब कौरव महा कोप कर अपने अपने अस्त्र शस्त्र ले यों कह चढ़ दौड़े कि देखें वह कैसा बली है जो हमारे आगे से कन्या ले निकल जायगा औ बीच बाट के संबू को जा घेरा। आगे दोनों ओर से शस्त्र चलने लगे। निदान कितनी एक बेर के लड़ने में जब संबू का सारथी मारा गया औ वह नीचे उतरा, तब ये उसे घेर पकड़कर बाँध लाए। सभा के बीचो बीच खड़ाकर इन्होंने उससे पूछा कि अब तेरा पराक्रम कहाँ गया? यह बात सुन वह लजाय रहा। इसमें नारदजी ने आय राजा दुर्योधन समेत सब कौरवों से कहा कि यह संबू नाम श्रीकृष्णचंद का पुत्र है। तुम इसे कुछ मत कहो, जो होना था सो हुआ! अभी इसके समाचार पाय दल साज आवेंगे श्रीकृष्ण औ बलराम, जो कुछ कहना सुनना हो सो उनसे कह सुन लीजो, लड़के से बात कहनी तुम्हें किसी भाँति उचित नहीं, इसने लड़कबुद्धि की तो की। महाराज, इतना बचन कह नारदजी वहाँ से बिदा हो, चले चले द्वारका पुरी गये और उग्रसेन राजा की सभा में जा खड़े रहे।

देखत सबै उठे सिर नाय। आसन दियौ ततक्षन लाय॥

बैठतेही नारदजी बोले कि महाराज, कौरवों ने संबू को बाँध महा दुख दिया औ देते हैं, जो इस समैं जाय उसकी सुध लो तो लो नहीं फिर संबू का बचना कठिन है।

गर्व भयौ कौरव कौं भारी। लाज सकुच नहिं करी तिहारी॥
बालक कौं बाँध्यौ उन ऐसे। शत्रू कौं बाँधे कोउ जैसे॥

इस बात के सुनतेही राजा उग्रसेन ने अति कोप कर जदुबंसियों को बुलायके कहा—तुम अभी सब हमारा कटक ले हस्तिनापुर पर चढ़ जाओ औ कौरवों को मार संबू को छुड़ाय ले आओ। राजा की आज्ञा पातेही जों सब दल चलने को उपस्थित हुआ तों बलरामजी ने जाय राजा उग्रसेन से समझायकर कहा कि महाराज, आप उनपर सेना न पठाइये, मुझे आज्ञा कीजै जो मैं जाय उन्हें उलहना दे संबू को छुड़ाय लाऊँ। देखू विन्होंने किस लिये संबू को पकड़ बाँधा। इस बात का भेद बिन मेरे गये न खुलेगा।

इतनी बात के कहतेही राजा उग्रसेन ने बलरामजी को हस्तिनापुर जाने की आज्ञा दी औ बलदेवजी कितने एक बड़े बड़े पंडित ब्राह्मन औ नारद मुनि को साथ ले द्वारका से चले चले हस्तिनापुर पहुँचे। उस समय प्रभु ने नगर के बाहर एक बाड़ी में डेरा कर नारदजी से कहा कि महाराज, हम ह्याँ उतरे हैं आप जाय कौरवों से हमारे आने के समाचार कहिये। प्रभु कौं आज्ञा पाय नारदजी ने नगर में जाय बलरालजी के आने के समाचार सुनाए।

सुनकै सावधान सब भए। आगे होय लेन तहँ गए॥
भीषम कर्न द्रोन मिल चले। लीने वसन पटंबर भले॥
दुर्योधन यों कहिकै धायौ। मेरौ गुरु संकर्षन आयौ॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी ने राजासे कहा कि महाराज, सब कौरवों ने उस बाड़ी में जाय बलरामजी से भेट कर भेट दी औ पाओं पड़ हाथ जोड़ बहुत सी स्तुति की। आगे चोआ चंदन

लगाय, फूल माल पहराय, पाटंबर के पाँवड़े बिछाय, बाजे गाजे से नगर में लिवा लाए। पुनि षटरस भोजन करवाय, पास बैठ सबकी कुशल क्षेम पूछ पूछा कि महाराज, आपका आना ह्याँ कैसे हुआ? कौरवों के मुख से यह बात निकलतेही बलरामजी बोले कि हम राजा उग्रसेन के पठाए संदेसा कहन तुम्हारे पास आए हैं। कौरव बोले—कहो। बलदेवजी ने कहा कि राजाजी ने कहा है कि तुम्हें हमसे विरोध करना उचित न था।

तुम हो बहुत सो बालक एक। कियौ युद्ध तज ज्ञान बिवेक ॥
महा अधर्म जानकै कियौ। लोक लाज तज सुत गह लियौ ॥
ऐसे गर्व तुम्हैं अब भयौ। समझ बूझ ताकौं दुख दयौ ॥

महाराज, इतनी बात के सुनतेही कौरव महा कोप कर बोले कि बलरामजी, बस करो बस करो, अधिक बड़ाई उग्रसेन की मत करो, हमसे यह बात सुनी नहीं जाती। चार दिन की बात है कि उग्रसेन को कोई जानता मानता न था। जब से हमारे ह्याँ सगाई की तभी से प्रभुता पाई। अब हमींसे अभिमान की बात कह पठाई। उसे लाज नहीं आती जो द्वारका में बैठा राज पाय, पिछली बात सब गँवाय जो मन मानता है सो कहता है। वह दिन भूल गया कि मथुरा में ग्वाल गूजरों के साथ रहता खाता था। जैसा हमने साथ खिलाय सम्बन्ध कर राज दिलवाया, तिसका फल हाथों हाथ पाया। जो किसी पूरे पर गुन करते तो वह जन्म भर हमारा गुन मानता। किसी ने सच कहा है कि ओछे की प्रीत बालू की भीत समान है।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले—महाराज, ऐसे अनेक अनेक प्रकार की बातें कह कह कर्न, द्रोन, भीषम, दुर्योधन, सल्य

आदि सब कौरव गर्व कर उठ उठ अपने घर गए औ बलरामजी उनकी बातें सुन सुन, हँसि हँसि वहाँ बैठे मनही मन यों कहते रहे कि इनको राज औ बल का गर्ब भया है जो ऐसी ऐसी बातें करते हैं। नहीं तो ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र का ईस, जिसे नवावैं सीस, तिस उग्रसेन की ये निन्दा करैं। तौ मेरा नाम बलदेव जो सब कौरवों को नगर समेत गंगा में डबोऊँ नहीं तो नहीं।

महाराज, इतना कह बलदेवजी अति क्रोध कर सब कौरवों को नगर समेत हल से खैंच गंगा तीर पर ले गए औ चाहैं कि डबोवैं, तोंही अति घबराय भय खाय सब कौरव आय, हाथ जोड़ सिर नाय गिड़गिड़ाय बिनती कर बोले कि महाराज, हमारा अपराध क्षमा कीजे, हम आपकी सरन आए, अब बचाय लीजे। जो कहोगे सो करेंगे, सदा राजा उग्रसेन की आज्ञा में रहेंगे। राजा, इतनी बात के कहते ही बलरामजी का क्रोध शांत हुआ औ जो हल से खैंच नगर गंगा तीर पर लाए थे सो वहीं रक्खा। तिसी दिन से हस्तिनापुर गंगा तीर पर है, पहले वहाँ न था। आगे उन्होंने संबू को छोड़ दिया औ राजा दुर्योधन ने चचा भतीजों को मनाय, घर में ले जाय मंगलाचार करवाय, वेद की विध से संबू को कन्यादान दिया औ उसके यौतुक में बहुत कुछ संकल्प किया।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी ने कहा कि महाराज, ऐसे बलरामजी हस्तिनापुर जाय, कौरवों का गर्व गँवाय, भतीजे को छुड़ाय ब्याह लाए। उस काल सारी द्वारका पुरी में आनंद हो गया औ बलदेवजी ने हस्तिनापुर का सब समाचार ब्यौरे समेत समझाय राजा उग्रसेन के पास जाय कहा।

———

सत्तरवाँ अध्याय

श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, एक समय नारदजी के मन में आई कि श्रीकृष्णचंद सोलह सहस्र एक सौ आठ स्त्री ले, कैसे गृहस्थाश्रम करते हैं, सो चलकर देखा चाहिए। इनता विचार चले चले द्वारका पुरी में आए तो नगर के बाहर क्या देखते हैं कि वाड़ियों में नाना भाँति के बड़े बड़े ऊँचे ऊँचे वृक्ष हरे फल फूलों से भरे खरे झूम रहे हैं। तिनपर कपोत, कीर, चातक, मोर आदि पक्षी मनभावन बोलियाँ बैठ बोल रहे हैं। कहीं सुंदर सरोबरों में कँवल खिले हुए, तिनपर भौंरों के झुंड गूँज रहे, तीर में हंस, सारस समेत खग कुलाहल कर रहे हैं। कहीं फुलवाड़ियों में माली मीठे सुरों से गाय गाय, ऊँचे नीचे नीर चढ़ाय क्यारियों में जल खैंच रहे हैं। कहीं इंदारे बावड़ियों पर रहट परोहे चल रहें हैं और पनघट पर पनहारियों के ठट्ट के ठट्ट लगे हैं, तिनकी शोभा कुछ बरनी नहीं जाती वह देखेही बन आवे।

महाराज, यह शोभा बन उपवन की निरख हरष नारदजी पुरी में जाय देखैं तो अति सुंदर कंचन के मनिमय मंदिर जगमगाय रहे हैं तिनपर ध्वजा पताका फहराय रही हैं, बार बार में तोरन बंदनवार बँधी हैं, द्वार द्वार पर केले के खंभ औ कंचन के कुंभ सपल्लव भरे धरे हैं, घर घर की जाली झरोखों से धूप का धुँआ निकल स्याम घटा सा मँडलाय रहा है, उसके बीच बीच सोने के कलस कलसियाँ बिजली सी चमक रही हैं, घर घर पूजा पाठ होम यज्ञ दान हो रहा है, ठौर ठौर भजन सुमिरन

गान कथा पुरान की चरचा चल रही है, जहाँ तहाँ जदुबंसी इंद्र की सी सभा किये बैठे हैं औ सारे नगर में सुख छाय रहा है ।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज, नारदजी पुरी में जाते ही मगन हो कहने लगे कि प्रथम किस मंदिर में जाऊँ जो श्रीकृष्णचंद को पाऊँ । महाराज, मनही मन इतना कह नारदजी पहले श्रीरुक्मिनीजी के मंदिर में गये, वहाँ श्रीकृष्णचंद विराजते थे सो इन्हें देख उठ खड़े भये। रुक्मिनीजी जल की झारी भर लाईं । प्रभु ने पाँव धोय आसन पर बैठाय, धूप दीप नैवेद्य धर पूजा कर हाथ जोड़ नारदजी से कहा–

जा घर चरन साध के परैं । ते नर सुख संपत अनुसरैं ॥
हमसे कुटमी तारन हेतु । घरहि आय तुम दरसन देत ॥

महाराज, प्रभु के मुख से इतना बचन निकलते ही यह असीस दे नारदजी जामवंती के मंदिर में गये, कि जगदीस, तुम चिर थिर रहो श्रीरुक्मिनीजी के सीस, तो देखा कि हरि सारपासे खेल रहे हैं । नारदजी को देखतेही जों प्रभु उठे तों नारदजी आशीर्वाद दे उलटे फिरे । पुनि सतिभामा के यहाँ गये तो देखा कि श्रीकृष्ण-चंद बैठे तेल उबटन लगवाय रहे हैं । वहाँ से चुपचाप नारदजी फिर आये, इसलिये कि शास्त्र में लिखा है कि तेल लगाने के समैं न राजा प्रनाम करै न ब्राह्मन असीस । आगे नारद जी कालिंदी के घर गए, वहाँ देखा कि हरि सो रहे हैं, महाराज, कालिन्दी ने नारदजी को देखते ही हरि को पाँव दाब जगाया । प्रभु जागते ही ऋषि के निकट जाय दंडवत कर हाथ जोड़ बोले कि साधु के चरन तीरथ के जल समान हैं, जहाँ पड़े तहाँ पवित्र करते हैं । यह सुन वहाँ से भी असीस दे नारदजी चल खड़े हुए औ मित्र-

बिन्दा के धाम गये। तहाँ देखे कि ब्रह्मभोज हो रहा है औ श्रीकृष्णजी परोसते हैं। नारदजी को प्रभु ने कहा कि महाराज, जो कृपा कर आये हो तो आप भी प्रसाद ले हमें उच्छिष्ट दीजै औ घर पवित्र कीजै। नारदजी ने कहा—महाराज, मैं थोड़ा फिर आऊँ, फिर आऊँगा, ब्राह्मनों को जिमा लीजै पुनि ब्रह्मशेष आय मैं पाऊँगा। यों सुनाय नारदजी बिदा हो सत्या के ग्रेह पधारे, वहाँ क्या देखते हैं कि श्रीबिहारी भक्तहितकारी आनंद से बैठे बिहार कर रहे हैं। यह चरित्र देख नारदजी उलटे पाँवों फिरे। पुनि भद्रा के स्थान पर गये तो देखा कि हरि भोजन कर रहे हैं। वहाँ से फिरे तो लक्ष्मना के घर पधारे, तो तहाँ देखा कि प्रभु स्नान कर रहे हैं। इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी ने कहा कि महाराज, इसी भाँति नारद मुनिजी सोलह सहस्र एक सौ आठ घर फिरे, पर बिन श्रीकृष्ण कोई घर न देखा। जहाँ देखा तहाँ हरि को गृहस्थाश्रम का काज ही करते देखा, यह चरित्र लख-

नारद के मन अचरज एह। कृष्ण बिना नहिं कोऊ गेह॥
जा घर जाउँ तहाँ हरि प्यारी। ऐसी प्रभु लीला बिस्तारी॥
सोलह सहस अठोतर सौ घर। तहाँ तहाँ सुंदरि संग गिरधर॥
मगन होय ऋषि कहत विचारी। योगमाया यदुनाथ तिहारी॥
काहू सों नहिं जानी परै। कौन तिहारी माया तरै॥

महाराज, जब नारदजी ने अचंभा कर कहे ये बैन, तब बोले प्रभु श्रीकृष्णचंद सुखदेन कि नारद, तू अपने मन में कुछ संदेह मत करै, मेरी माया अति प्रबल है औ सारे संसार में फैल रही है, यह मुझे ही मोहती है तो दूसरे की क्या सामर्थ जो इसके हाथ से बचे औ जगत के बीच आय इसमें न रचे।

नारद सुन बिनवै सिर नाय। मोंपर कृपा करौ यदुराय ॥

जो आपकी भक्ति सदा मेरे चित्त में रहे औ मेरा मन माया के बस होय विषय की वासना न चहै। राजा, इतना कह नारद जी प्रभु से बिदा हो दंडवत कर बीन बजाते गुन गाते अपने स्थान को गये औ श्रीकृष्णचंदजी द्वारका में लीला करते रहे।

———

इकहत्तरवाँ अध्याय

श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, एक दिन श्रीकृष्णचंद रात्र समैं श्रीरुक्मिनीजी के साथ बिहार करते थे औ श्रीरुक्मिनीजी आनंद में मगन बैठीं प्रीतम का चंदमुख निरख अपने नयन चकोरों को सुख देती थीं, कि इस बीच रात बितीत भई। चिड़ियाँ चुहचुहाईं, अंबर में अरुनाई छाई, चकोर को बियोग हुआ औ चकवा चकवियों को संयोग। कँवल बिकसे, कमोदनी कुम्हलाई, चंद्रमा छबिछीन भया औ सूरज का तेज बढ़ा। सब लोग जागे औ अपना गृहकाज करन लागे।

उस काल रुक्मिनीजी तो हरि के समीप से उठ सोच संकोच लिए, घर की टहल टकोर करने लगीं औ श्रीकृष्णचंदजी देह शुद्ध कर हाथ मुँह धोय, स्नान कर जप ध्यान पूजा तर्पन से निचिंत होय, ब्राह्मनों को नाना प्रकार के दान दे, नित्य कर्म से सुचित हो, बालभोग पाय, पान, लौंग, इलायची, जायपत्री; जायफल के साथ खाय, सुथरे वस्त्र आभूषन मँगाय पहन, शस्त्र लगाय राजा उग्रसेन के पास गये। पुनि जुहार कर जदुबंसियों की सभा के बीच आय रत्नसिंहासन पर बिराजे।

महाराज, उसी समैं एक ब्राह्मन ने जाय द्वारपालों से कहा कि तुम श्रीकृष्णचंदजी से जाकर कहो कि एक ब्राह्मन आपके दरसन की अभिलाषा किये पौर पर खड़ा है, जो प्रभु की आज्ञा पावे तो भीतर आवे। ब्राह्मन की बात सुन द्वारपाल ने भगवान से जा कहा कि महाराज, एक ब्राह्मन आपके दरसन की अभिलाषा

किये पौर पर खड़ा है, जो आज्ञा पावे तो आवे। हरि बोले—अभी लाव। प्रभु के मुख से बात निकलते ही द्वारपाल हाथोंहाथ ब्राह्मन को सनमुख ले गये। बिप्र को देखते ही श्रीकृष्णचंद सिंहासन से उतर दंडवत कर आगू बढ़ हाथ पकड़ उसे मंदिर में ले गए औ रत्न सिंहासन पर अपने पास बिठाय पूछने लगे कि कहो देवता, आपका आना कहाँ से हुआ औ किस कार्य के हेतु पधारे? ब्राह्मन बोला—कृपासिंधु, दीनबंधु, मैं मगध देस से आया हूँ औ बीस सहस्र राजाओं का संदेसा लाया हूँ। प्रभु बोले-सो क्या? ब्राह्मन ने कहा महाराज, जिन बीस सहस्र राजाओं को जरासंध ने बल कर पकड़ हथकड़ी बेड़ी दे रक्खा है, तिन्होंने मेरे हाथ आपको अति बिनती कर यह संदेसा कहला भेजा है। दीनानाथ, तुम्हारी सदा सर्वदा यह रीति है कि जब जब असुर तुम्हारे भक्तों को सताते हैं, तब तब तुम अवतार ले अपने भक्तों की रक्षा करते हो। नाथ, जैसे हिरनकस्यप से प्रह्लाद को छुड़ाया औ गज को ग्राह से, तैसे ही दया कर अब हमें इस महादुष्ट के हाथ से छुड़ाइये, हम महाकष्ट में हैं। तुम बिन और किसी को सामर्थ नहीं जो इस महा विपत से निकाले और हमारा उद्धार करे।

महाराज, इतनी बात के सुनते ही प्रभु दयाल हो बोले कि हे देवता, तुम अब चिंता मत करो विनकी चिंता मुझे है। इतनी बात के सुनते ही ब्राह्मन संतोष कर श्रीकृष्णचंद को आसीस देने लगा। इस बीच नारदजी आ उपस्थित हुए। प्रनाम कर श्रीकृष्णचंद ने इनसे पूछा कि नारदजी, तुम सब ठौर जाते आते हो, कहो हमारे युधिष्ठिर आदि पाँचों पाँडव इन दिनों कैसे हैं

औ क्या करते हैं। बहुत दिन से हमने उनके कुछ समाचार नहीं पाए, इससे हमारा चित उन्हीं में लगा है। नारदजी बोले कि महाराज, मैं विन्हीं के पास से आया हूँ, हैं तो कुशल क्षेम से पर इन दिनों राजसूय यज्ञ करने के लिए निपट भावित हो रहे हैं औ घड़ी घड़ी यह कहते हैं कि बिना श्रीकृष्णचंद की सहायता के हमारा यज्ञ पूरा न होगा, इससे महाराज, मेरा कहा मानिये तो

पहिले उनकौ यज्ञ सँवारौ। पाछे अनत कहूँ पग धारौ ॥

महाराज, इतनी बात नारदजी के मुख से सुनते हो प्रभु ने ऊधोजी को बुलाय के कहा—

ऊधो तुम हौ सखा हमारे। मन आँखन ते कबहुँ न न्यारे ॥
दुहूँ ओर की भारी भीर। पहले कहाँ चलैं कहौ बीर ॥
उत राजा संकट में भारी। दुख पावत किये आस हमारी ॥
इत पंडुनि मिछ यज्ञ रचायौ। ऐसे कहि प्रभु बचन सुनायौ ॥

———

बहत्तरवाँ अध्याय

श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, पहले तो श्रीकृष्णचंदजी ने उस ब्राह्मन को इतना कह बिदा किया, जो राजाओं का संदेसा लाया था, कि देवता तुम हमारी ओर से सब राजाओं से जाय कहो कि तुम किसी बात की चिंता मत करो, हम बेग आय तुम्हें छुड़ाते हैं। महाराज, यह बात कह श्रीकृष्णचंद ब्राह्मन को बिदा कर ऊधोजी को साथ ले राजा उग्रसेन सूरसेन की सभा में गये औ इन्होंने सब समाचार उनके आगे कहे। वे सुन चुप हो रहे। इसमें ऊधोजी बोले कि महाराज, ये दोनों काज कीजे। पहले राजाओं को जरासंध से छुड़ा लीजे, पीछे चलकर यज्ञ सँवारिये क्यों कि राजसूय यज्ञ का काम बिन राजा और कोई नहीं कर सकता औ वहाँ बीस सहस्र नृप इकट्ठे हैं। विन्हें छुड़ाओगे तो वे सब गुन मान यज्ञ का काज बिन बुलाए जाकर करेंगे। महाराज, और कोई दसो दिस जीत आवेगा तो भी इतने राजा इकट्ठे न पावेगा। इससे अब उत्तम यही है कि हस्तिनापुर को चलिये। पांडवों से मिल मता कर जो काम करना हो सो करिये।

महाराज, इतना कह पुनि ऊधोजी बोले कि महाराज, राजा जरासंध बड़ा दाता औ गौ ब्राह्मन का मानने औ पूजनेवाला है जो कोई विससे जाकर जो मांगता है सो पाता है, जाचक उसके यहां से विमुख नहीं आता। वह झूठ नहीं बोलता, जिससे बचनबंध होता है विससे निबाहता है औ दस सहस्र हाथी का बल रखता है। उसके बल की समान भीमसेन का बल है। नाथ, जो

तुम वहाँ चलो तो भीमसेन को भी अपने साथ ले चलो। मेरी बुद्धि में आता है कि उसकी मीच भीमसेन के हाथ है।

इतनी कथा कह श्रीसुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा कि राजा, जब ऊधोजी ने ये बात कही तभी श्रीकृष्णचदजी ने राजा उग्रसेन सूरसेन से बिदा हो सब जदुबंसियों से कहा कि हमारा कटक सजो हम हस्तिनापुर को चलेंगे। बात के सुनते ही सब जदुबंसी सेना साज ले आए औ प्रभु भी आठो पटरानियों समेत कटक के साथ हो लिए। महाराज, जिस काल श्रीकृष्णचंद कुटुब सहित सब सेना ले धौंसा दे द्वारका पुरी से हस्तिनापुर को चले, उस समय का शोभा कुछ बरनी नहीं जाती। आगे हाथियों का कोट, बाएँ दाहिने रथ घोड़ों की ओट, बीच में रनवास औ पीछे सब सेना साथ लिए सबकी रक्षा किये श्रीकृष्णजी चले जाते थे। जहाँ डेरा होता था तहाँ कै जोजन के बीच एक सुदर सुहावन नगर बन जाता था, देस देस के नरेस भय खाय आय आय भेट कर भेट धरते थे औ प्रभु विन्हें भयातुर देख तिनका सब भाँति समाधान करते थे।

निदान इसी धूमधाम से चले चले हरि सब समेत हस्तिना पुर के निकट पहुँचे। इसमें किसी ने राजा युधिष्ठिर से जाय कहा कि महाराज, कोई नृपति अति सेना ले बड़ी भीड़ भाड़ से आपके देस पर चढ़ आया है, आप बेग उसे देखिये, नहीं तो उसे यहाँ पहुँचा जानिये। महाराज, इस बात के सुनते ही राजा युधिष्ठिर ने अति भय खाय, अपने नकुल सहदेव दोनों छोटे भाइयों को यह कह प्रभु के सनमुख भेजा कि तुम देखि आओ कि कौन राजा चढ़ा आता है। राजा की आज्ञा पातेही वे चले गये और

सहदेव नकुल देख फिर आये। राजा को ये बचन सुनाये ॥
प्राणनाथ आये हैं हरी। सुनि राजा चिंता परिहरी ॥

आगे अति आनंद कर राजा युधिष्ठिर ने भीम अर्जुन को बुलाय के कहा कि भाई तुम चारों भाई आगू जाय श्रीकृष्णचंद आनंदकंद को ले आओ। महाराज, राजा की आज्ञा पाय औ प्रभु का आना सुन वे चारों भाई अति प्रसन्न हो भेट पूजा की सामा औ बड़े बड़े पंडितों को साथ ले बाजे गाजे से प्रभु को लेने चले। निदान अति आदर मान से मिल, वेद की विधि से भेट पूजा कर- ये चारों भाई श्रीकृष्णजी को सब समेत पाटंबर के पांवड़े डालते, चोआ, चदन, गुलाबनीर छिड़कते, चाँदी सोने के फूल बरसाते, धूप दीप नैवेद्य करते, बाजे गाजे से नगर में ले आये। राजा युधिष्ठिर ने प्रभु से मिल अति सुख माना औ अपना जीवन सुफल जाना। आगे बाहर भीतर सबने सबसे मिल जथाजोग्य परस्पर सनमान किया, औ नयनों को सुख दिया। घर बाहर सारे नगर में आनंद हो गया औ श्रीकृष्णचंद वहाँ रह सब को सुख देने लगे।

तिहत्तरवाँ अध्याय

श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, एक दिन श्रीकृष्णचंद करुना-सिन्धु दीनबंधु भक्तहितकारी ऋषि ब्राह्मन क्षत्रियों की सभा में बैठे थे, कि राजा युधिष्ठिर ने आय अति गिड़गिड़ाय बिनती कर हाथ जोड़ सिर नायके कहा कि हे शिव विरंचि के ईस, तुम्हारा ध्यान करते हैं सदा सुर मुनि ऋषि जोगीस। तुम हो अलख अगोचर अभेद, कोई नहीं जानता तुम्हारा भेद।

मुनि जोगीश्वर इकचित धावत। तिनके मन छिन कभू न आवत॥
हमकौं घरहीं दरसन देतु। मानत प्रेम भक्त के हेतु॥
जैसी मोहन लीला करौ। काहू पै नहि जाने परौ॥
माया में भुलयौ संसार। हमसों करत लोक व्यौहार॥
जे तुमकौं सुमिरत जगदीस। ताहि आपनौ जानत ईस॥
अभिमानी तें हौ तुम दूर। सतबादी के जीवन-मूर॥

महाराज, इतना कह पुनि राजा युधिष्ठिर बोले कि हे दीन-दयाल, आपकी दया से मेरे सब काम सिद्ध हुए पर एकही अभिलाषा रही। प्रभु बोले—सो क्या? राजा ने कहा कि महाराज, मेरा यही मनोरथ है कि राजसूय यज्ञ कर आपको अर्पन करूँ, तो भवसागर तरूँ। इतनी बात के सुनतेही श्रीकृष्णचंद प्रसन्न हो बोले कि राजा यह तुमने भला मनोरथ किया इसमें सुर नर मुनि ऋषि सब सन्तुष्ट होंगे। यह सबको भाता है और इसका करना तुम्हें कुछ कठिन नहीं, क्योंकि तुम्हारे चारों भाई अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव बड़े प्रतापी औ अति बली हैं, संसार में ऐसा अब कोई नहीं जो इनका साम्हना करै। पहले इन्हें भेजिये कि ये

जाय दसो दिसा के राजाओं को जीत अपने बस कर आवें, पीछे आप निचिंताई से यज्ञ कीजे।

राजा, प्रभु के मुख से इतनी बात जों निकली तोंही राजा युधिष्ठिर अपने चारों भाइयों को बुलाय कटक दे चारों को चारों ओर भेज दिया। दक्षिन को सहदेवजी पधारे, पश्चिम को नकुल सिधारे, उत्तर को अर्जुन धाए, पूरब में भीमसेन जी आए। आगे कितने एक दिन के बीच, महाराज, वे चारों हरिप्रताप से सात द्वीप नौ खंड जीत, दसो दिसा के राजाओं को बस कर अपने साथ ले आए। उस काल राजा युधिष्ठिर ने हाथ जोड़ श्रीकृष्ण-चंदजी से कहा कि महाराज, आपकी सहायता से यह काम तो हुआ अब क्या आज्ञा होती है ? इस में ऊधो जी बोले कि धर्मा-वतार, सब देश के नरेश तो आए, पर अब एक मगध देस का राजा जरासंध ही आपके बस का नहीं और जब तक वह बस न होगा तब तक यज्ञ भी करना सुफल न होगा। महाराज, जरासंध राजा बृहद्रथ* का बेटा महाबली बड़ा प्रतापी औ अति दानी धर्मात्मा है। हर किसी का सामर्थ नहीं जो उसका सामना करे। इस बात को सुन जों राजा युधिष्ठिर उदास हुए तों श्रीकृष्णचंद बोले कि महाराज, आप किसी बात की चिंता न कीजे, भाई भीम अर्जुन समेत हमें आज्ञा दीजे। कै तो बल छलकर हम उसे पकड़ लावें, कै मार आवें। इस बात के सुनतेही राजा युधिष्ठिर ने दोनों भाइयों को आज्ञा दी, तब हरि ने उन दोनों को अपने साथ ले मगध देश की बाट ली। आगे जाय पथ में श्रीकृष्णजी ने अर्जुन और भीम से कहा कि—

---

*—(क) में जैद्रथ है।

विप्ररूप ह्वै पग धारिये। छल बल कर बैरी मारिये॥

महाराज, इतनी बात कह श्रीकृष्णचंदजी ने ब्राह्मण का भेष किया, उनके साथ भीम अर्जुन ने भी विप्र भेष लिया। तीनों त्रिपुंड किये पुस्तक काँख में लिये, अति उज्जल स्वरूप सुंदर रूप बन ठन कर ऐसे चले कि जैसे तीनों गुन सत रज तम देह धरे जाते होयँ, कै तीनों काल। निदान कितने एक दिन में चले चले ये मगध देश में पहुँचे औ दोपहर के समय राजा जरासंध के पौरि पर जा खड़े हुए। इनका भेष देख पौरियों ने अपने राजा से जा कहा कि महाराज, तीन ब्राम्हन अतिथि बड़े तेजस्वी महा पंडित अति ज्ञानी कुछ कांक्षा किये द्वार पर खड़े हैं, हमें क्या आज्ञा होती है? महाराज, बात के सुनते ही राजा जरासंध उठ आया औ इन तीनों को प्रणाम कर अति मान सनमान से घर में ले गया। आगे वह इन्हें सिंहासन पर बैठाय आप सनमुख हाथ जोड़ खड़ा हो देख देख सोच सोच बोला—

जाचक जो पर द्वारे आवे। बड़ौ भूप सोउ अतिथ कहावे॥
विप्र नहीं तुम जोधा बली। बात न कछू कपट की भली॥
जौ ठग ठगनि रूप धरि आवै। ठगि तो जाय भलौ न कहावै॥
छिपै न छत्री कांति तिहारी। दीसत सूर बीर बलधारी॥
तेजवंत तुम तीनों भाई। शिव विरंचि हरि से बरदाई॥
मैं जान्यो जिय कर निर्मान। करौ देव तुम आप बखान॥
तुम्हरी इच्छा हो सो करौ। अपनी बाचा सो नहिं टरौं॥
दानी मिथ्या कबहु न भाखै। धन तन सर्बसु कछू न राखै॥
मांगौ सोई देहौं दान। सुत सुंदरि सर्वस्व परान॥

महाराज, इस बात के सुनते ही श्रीकृष्णचंदजी ने कहा कि

महाराज, किसी समैं राजा हरिचंद बड़ा दानी हो गया है कि जिसकी कीर्त्ति ससार में अब तक छाय रही है। सुनिये, एक समय राजा हरिचंद के देस में काल पड़ा औ अन्न बिन सब लोग मरने लगे तब राजा ने अपना सर्वस बेच बेच सबको खिलाया। जद देस नगर धन गया औ निर्धन हो राजा रहा, तद एक दिन साँझ समैं यह तो कुटुंब सहित भूखा बैठा था, कि इसमें बिस्वा-मित्र ने आय इनका सत्त देखने को यह बचन कहा—महाराज, मुझे धन दीजे औ कन्यादान का फल लीजे। इस बचन के सुनते-ही जो कुछ घर में था सो ला दिया। पुनि ऋषि ने कहा—महा-राज, मेरा काम इतने में न होगा। फिर राजा ने दास दासी बेच धन ला दिया औ धन जन गँवाय निर्धन निर्जन हो स्त्री पुत्र को ले रहा। पुनि ऋषि ने कहा कि धर्ममूर्त्ति, इतने धन से मेरा काम न सरा, अब मैं किसके पास जाय माँगूँ। मुझे तो संसार में तुझसे अधिक धनवान धर्मात्मा दानी कोई नहीं दृष्टि आता, हाँ एक सुपच नाम चंडाल मायापात्र है, कहो तो उससे जा धन माँगूँ, पर इसमें भी लाज आती है कि ऐसे दानी राजा को जाँच उससे क्या जाचूँ। महाराज, इतनी बात के सुनतेही राजा हरिचंद बिस्वा-मित्र को साथ ले उस चंडाल के घर गये औ इन्होंने विससे कहा कि भाई, तू हमें एक बरस के लिये गहने धर औ इनका मनोरथ पूरा कर। सुपच बोला—

कैसे टहल हमारी करिहौ। राजस तामस मन ते हरि हौ॥
तुम नृप महा तेज बल धारी। नीच टहल है खरी हमारी॥

महाराज, हमारे तो यही काम है कि स्मशान में जाय चौकी दे औ जो मृतक आवे उससे कर ले। पुनि हमारे घर बार की

चौकसी करे। तुमसे यह हो सके तो मैं रुपये दूँ औ तुम्हें बंधक रक्खूं। राजा ने कहा—अच्छा मैं बरष भर तुम्हारी सेवा करूँगा, तुम इन्हें रुपये दो। महाराज, इतना बचन राजा के मुख से निकलतेही सुपच ने विस्वामित्र को रुपये गिन दिये, वह ले अपने घर गया औ राजा वहाँ रह उसकी सेवा करने लगा। कितने एक दिन पीछे कालबस हो राजा हरिचंद का पुत्र रुहितास मर गया। उस मृतक को ले रानी मरघट में गई और जों चिता बनाय अग्नि संसकार करने लगी तों ही राजा ने आय कर माँगा।

रानी बिलख कहै दुख पाय। देखौ समझ हिये तुम राय

यह तुम्हारा पुत्र रुहितास है औ कर देने को मेरे पास और तो कुछ नहीं एक यह चीर है जो पहरे खड़ी हूँ। राजा ने कहा—मेरा इसमें कुछ बस नहीं, मैं स्वामी के कार्य पर खड़ा हूँ, जो स्वामी का काम न करूँ तो मेरा सत जाय। महाराज, इस बात के सुनतेही रानी ने चीर उतारने को जों आँचल पर हाथ डाला तो तीनों लोक काँप उठे। वोंही भगवान ने राजा रानी का सत देख पहले एक बिमान भेज दिया औ पीछे से आय दरसन दे तीनों का उद्धार किया। महाराज, जब विधाता ने रुहितास को जिवाय, राजा रानी को पुत्र सहित बिमान पर बैठाय बैकुंठ जाने की आज्ञा की, तब राजा हरिचंद ने हाथ जोड़ भगवान से कहा कि हे दीनबंधु पतितपावन दीनदयाल, मैं सुपच बिना बैकुण्ठधाम में कैसे जा करूँ विश्राम। इतना बचन सुन औ राजा के मन का अभिप्राय जान, श्री भक्तहितकारी करुनासिन्धु हरि ने पुरी समेत सुपच को भी राजा रानी कुँवर के साथ तारा।

ह्याँ हरिचंद अमर पद पायौ। ह्याँ जुगान जुग जस चलि आयौ॥

महाराज, यह प्रसंग जरासंध को सुनाय श्रीकृष्णचंदजी ने कहा कि महाराज, और सुनिये कि रतिदेव* ने ऐसा तप किया कि अड़तालीस दिन बिन पानी रहा औ जब जल पीने बैठा, तिसी समय कोई प्यासा आया, इसने वह नीर आप न पी उस तृषावंत को पिलाया, उस जलदान से उसने मुक्ति पाई। पुनि राजा बलि ने अति दान किया तो पाताल का राज लिया औ अब तक उसका जस चला आता है। फिर देखिये कि उद्दालक मुनि छठे महीने अन्न खाते थे, एक समैं खाती बिरियाँ उनके ह्याँ कोई अतिथि आय', उन्होंने अपना भोजन आप न खाय भूखे को खिलाया औ उस क्षुधाही में मरे। निदान अन्नदान करने से बैकुण्ठ को गये चढ़कर बिमान।

पुनि एक समय सब देवताओं को साथ ले राजा इन्द्र के जाय दधीच से कहा कि महाराज, हम वृत्रासुर के हाथ से अब बच नहीं सकते, जौ आप अपना अस्थि हमें दीजे तो उसके हाथ से बचें, नहीं तो बचना कठिन है। क्योंकि वह बिन तुम्हारे हाड़ के आयुध किसी भाँति न मारा जायगा। महाराज, इतनी बात के सुनतेही दधीच ने शरीर गाय से चटवाय, जाँघ का हाड़ निकाल दिया। देवताओं ने ले उस अस्थि का बज्र बनाया औ दधीच ने प्रान गँवाय बैकुण्ठधाम पाया।

ऐसे दाता भये अपार। तिन कौ जस गावत संसार॥

राजा, यों कह श्रीकृष्णचंदजी ने जरासन्ध से कहा कि महाराज, जैसे आगे और जुग में धर्मात्मा दानी राजा हो गये हैं तैसे

---

* (क) में रातिदेव है पर वह अशुद्ध है।

अब इस काल में तुम हो। जों आगे उन्होंने जाचकों की अभिलाषा पूरी की, तों तुम अब हमारी आस पुजाओ। कहा है—

जाचक कहा न माँगई, दाता कहा न देय।
गृह सुत सुन्दरि लोभ नहिं, तन सिर दे जस लेय॥

इतना बचन प्रभु के मुख से निकलतेही जरासंध बोला कि जाचक कौ दाता की पीर नहीं होती तौ भी दानी धीर अपनी प्रकृत नहीं छोड़ता, इसमें सुख पावे कै दुख। देखो हरि ने कपट रूप कर बावन बन राजा बलि के पास जाय तीन पैंड पृथ्वी माँगी, उस समैं शुक्र ने बलि को चिताया, तौ भी राजा ने अपना प्रन न छोड़ा।

देह समेत मही तिन दई। ताकी जग में कीरति भई॥
जाचक विष्णु कहा जस लीनौं। सर्बसु लै तौऊ हठ कीनौं॥

इससे तुम पहले अपना नाम भेद कहो तद जो तुम मांगोगे सो मैं दूँगा, मैं मिथ्या नहीं भाषता। श्रीकृष्णचंद बोले कि राजा, हम क्षत्री हैं, बासुदेव मेरा नाम है, तुम भली भाँति हमें जानते हो औ ये दोनों अर्जुन भीम हमारे फुफेरे भाई हैं। हम युद्ध करने को तुम्हारे पास आए हैं, 'हमसे युद्ध कीजे, हम यही तुमसे माँगने आए हैं और कुछ नहीं माँगते।

महाराज, यह बात श्रीकृष्णचंदजी से सुनि जरासन्ध हँसकर बोला कि मैं तुझसे क्या लड़ूं तू मेरे सोंहीं से भाग चुका है औ अर्जुन से भी न लड़ूंगा, क्योंकि यह विदर्भ देस गया था करके नारी का भेष। रहा भीमसेन, कहो तो इससे लड़ूं, यह मेरी समान का है, इससे लड़ने में मुझे कुछ लाज नहीं।

पहले तुम सब भोजन करौ। पाछै मल्ल अखारे लरौ।

भोजन दे नृप बाहर आयौ। भीमसेन तहाँ बोल पठायौ॥
अपनी गदा ताहि तिन दई। गदा दूसरी आपुन लई॥

जहाँ सभामंडल वन्यौ, बैठे जाय मुरारि।
जरासंध अरु भीम तहँ, भये ठाढ़ इक बारि॥
टोपा सीस काछनी काछें। बने रूप नटुवा के आछें॥

महाराज, जिस समैं दोनों वीर अखाड़े में खम ठोक, गदा तान, धज पलट, भूमकर सनमुख आए, उस काल ऐसे जनाए कि मानो दो मतंग मतवाले उठ धाए। आगे जरासंध ने भीमसेन से कहा कि पहले गदा तू चला क्योंकि तू ब्राह्मण का भेष ले मेरी पौरि पर आया था, इससे मैं पहले प्रहार तुझपर न करूँगा। यह बात सुन भीमसेन बोले कि राजा हमसे तुमसे धर्मयुद्ध है, इसमें यह ज्ञान न चाहिये, जिसका जी चाहे सो पहले शस्त्र करे। महाराज, उन दोनों वीरों ने परस्पर ये बातें कर एक साथ ही गदा चलाई औ युद्ध करने लगे।

ताकत घात आप आपनी। चोट करत बाँई दाहनी।
अंग बचाय उछरि पग धरें। झरपहिं गदा गदा सों लरें॥
खटपट चोट गदा पट कारी। लागत शब्द कुलाहल भारी।

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज, इसी भाँति वे दोनों बली दिन भर तो धर्मयुद्ध करते औ साँझ को घर आय एक साथ भोजन कर विश्राम। ऐसे नित लड़ते लड़ते सत्ताईस दिन भए तब एक दिवस उन दोनों के लड़ने के समैं श्रीकृष्णचंदजी ने मन ही मन विचारा कि यह यों न मारा जायगा, क्यौंकि जब यह जन्मा था तब दो फाँक हो जन्मा था, उस समैं जरा राक्षसी ने आय जरासंध का मुँह और नाक मूँदी,

तब दोनों फाँक मिल गईं। यह समाचार सुनि उसके पिता वृहद्रथ ने जोतिषियों को बुलाय कै पूछा, कि कहो इस लड़के का नाम क्या होगा औ कैसा होगा। ज्योतिषियों ने कहा कि महाराज, इसका नाम जरासंध हुआ औ यह बड़ा प्रतापी औ अजर अमर होगा। जब तक इसकी संधि न फटेगी तब तक यह किसी से न मारा जायगा, इतना कह जोतिषी बिदा हो चले गए। महाराज, यह बात श्रीकृष्णजी ने मन में सोच औ अपना बल दे भीमसेन को तिनका चीर सैन से जताया कि इसे इस रीति से चीर डालो। प्रभु के चितातेही भीमसेन ने जरासंघ को पकड़कर दे मारा औ एक जाँघ पर पाँव दे दूसरा पाँव हाथ से पकड़ यों चीर डाला कि जैसे कोई दातन चीर डाले। जरासंध के मरतेही सुर नर गंधर्व ढोल दमामे भेर बजाय बजाय, फूल बरसाय-बरसाय, जैजैकार करने लगे औ दुख दंद जाय सारे नगर में आनंद हो गया। उसी बिरियाँ जरासंध की नारी रोती पीटती आ श्रीकृष्णचंदजी के सनमुख खड़ी हो हाथ जोड़ बोली कि धन्य है धन्य है नाथ तुम्हें जो ऐसा काम किया कि जिसने सरबस दिया, तुमने उसका प्रान लिया। जो जन तुम्हे सुत वित औ समर्पै देह, उससे तुम करते हो ऐसा ही नेह। कपट रूप कर छल बल कियौ। जगत आय तुम यह जस लियौ।

महाराज, जरासंध की रानी ने जब करुना कर करुनिधान के आगे हाथ जोड़ बिनती कर यों कहा, तब प्रभु ने दयाल हो पहले जरासंध की क्रिया की, पीछे उसके सुत सहदेव को बुलाय राजतिलक दे सिंहासन पर बिठाय के कहा कि पुत्र, नीति सहित राज कीजो औ ऋषि, मुनि, गौ, ब्राह्मन, प्रजा की रक्षा।

चौहत्तरवाँ अध्याय

श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, राजपाट पर बैठाय समझाय श्रीकृष्णचंदजी ने सहदेव से कहा कि राजा, अब तुम जाय उन राजाओं को ले आओ जिन्हें तुम्हारे पिता ने पहाड़ की कंदरा में मूद रक्खा है। इतना बचन प्रभु के मुख से सुनतेही जरासंध का पुत्र सहदेव बहुत अच्छा कर कंदरा के निकट जाय, उसके मुख से सिला उठाय, आठ सौ बीस सहस्र राजाओं को निकाल हरि के सनमुख ले आया। आतेही हथकड़ियाँ बेड़ियाँ पहने, गले में सांकल लोहे की डाले, नख केस बढ़ाये, तनछीन, मनमलीन, मैले भेष सब राजा प्रभु के सनमुख पांति पांति खड़े हो हाथ जोड़ बिनती कर बोले—हे कृपासिधु, दीनबंधु, आपने भले समें आय हमारी सुध ली, नहीं तो सब मर चुके थे। तुम्हारा दरसन पाया, हमारे जी में जी आया, पिछला दुख सब गँवाया।

महाराज, इस बात के सुनतेही कृपासागर श्रीकृष्णचंद जी ने जों उनपर दृष्ट की, तों बात की बात में सहदेव उनको ले जाय हथकड़ी बेड़ी कड़ी कटवाय, क्षौर करवाय, न्हिलवाय, धुलवाय, षट रस भोजन खिलाय, वस्त्र आभूषन पहराय, अस्त्र शस्त्र बँधवाय, पुनि हरि के सोंही लिवाय लाया। उस काल श्रीकृष्णचंदजी ने उन्हे चतुर्भुज हो संख चक्र गदा पद्म धारन कर दरसन दिया। प्रभु का स्वरूप भूप देखतेही हाथ जोड़ बोले—नाथ, तुम संसार के कठिन बंधन से जीव को छुड़ाते हो, तुम्हें जरासंध की बंध से हमें छुड़ाना क्या कठिन था। जैसे आपने कृपा कर हमें इस

कठिन बंधन से छुड़ाया, तैसेही अब हमें गृह रूप कूप से निकाल काम क्रोध, लोभ, मोह से छुड़ाइये, जो हम एकांत बैठ आपका ध्यान करैं औ भवसागर को तरैं। श्रीशुकदेवजी बोले कि राजा, जब सब राजाओं ने ऐसे ज्ञान वैराग्य भरे बचन कहे, तब श्रीकृष्णचंदजी प्रसन्न हो बोले कि सुनौ जिनके मन में मेरी भक्ति है वे निःसंदेह भक्ति मुक्ति पावेंगे। बंध मोक्ष मन ही का कारन है, जिसका मन स्थिर है तिन्हें घर औ बन समान है। तुम और किसी बात की चिंता मत करो, आनंद से घर में बैठ नीति सहित राज करो, प्रजा को पालो, गौ ब्राह्मण की सेवा में रहो, झूठ मत भाखो, काम, क्रोध, लोभ, अभिमान तजो, भाव भक्ति से हरि को भजो, तुम निःसंदेह परम पद पाओगे। संसार में आय जिसने अभिमान किया वह बहुत न जिया, देखो अभिमान ने किसे किसे न खो दिया।

सहसबाहु अति बली बखान्यौ। परसुराम ताकौ बल भान्यौ॥
बेनु भूप रावन हो भयौ। गर्व आपने सोऊ गयौ॥
भौमासुर बानासुर कंस। भये गर्व तें तें विध्वंस॥
श्रीमद गर्व करो जिन कोय। त्यागै गर्व सो निर्भय होय॥

इतना कह श्रीकृष्णचंदजी ने सब राजाओं से कहा कि अब तुम अपने घर जाओ, कुटुंब से मिल अपना राज पाट सँभाल, हमारे न पहुँचते न पहुँचते हस्तिनापुर में राजा युधिष्ठिर के यहाँ राजसूय यज्ञ में शीघ्र आओ। महाराज, इतना बचन श्रीकृष्णचंदजी के मुख से निकलतेही सहदेव ने सब राजाओं के जाने का सामान जितना चाहिये तितना बात की बात में ला उपस्थित किया। वे ले प्रभु से बिदा हो अपने अपने देसों को गए औ

श्रीकृष्णचंद्जी भी सहदेव को साथ ले, भीम अर्जुन सहित वहाँ से चल; चले चले आनंदमंगल से हस्तिनापुर आए। आगे प्रभु ने राजा युधिष्ठिर के पास जाय, जरासंध के मारने के समाचार औ सब राजाओं के छुड़ाने के ब्यौरे समेत कह सुनाए।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज, श्रीकृष्णचंद आनंदकंदजी के हस्तिनापुर पहुँचते पहुँचतेही वे सब राजा भी अपनी अपनी सेना ले भेट सहित आन पहुँचे औ राजा युधिष्ठिर से भेट कर भेट दे श्रीकृष्णचंदजी की आज्ञा ले हस्तिनापुर के चारों ओर जा उतरे औ यज्ञ की टहल में आ उपस्थित हुए।

पचहत्तरवाँ अध्याय

श्रीशुकदेवजी बोले कि राजा, जैसे यज्ञ राजा युधिष्ठिर ने किया औ सिसुपाल मारा गया तैसे मैं सब कथा कहता हूँ, तुम चित दे सुनो। बीस सहस्र आठ सौ राजाओं के जातेही चारों ओर के और जितने राजा थे, क्या सूर्यबंसी औ क्या चंद्रबंसी, तितने सब आय हस्तिनापुर में उपस्थित हुए। उस समय श्रीकृष्णचंद औ राजा युधिष्ठिर ने मिलकर सब राजाओं का सब भाँति शिष्टाचार कर समाधान किया औ हर एक को एक एक काम यज्ञ का सौंपा। आगे श्रीकृष्णचंदजी ने राजा युधिष्ठिर से कहा कि महाराज, भीम, अर्जुन नकुल, सहदेव सहित हम पाचों भाई तो सब राजाओं को साथ ले ऊपर की टहल करैं और आप ऋषि मुनि ब्राह्मनों को बुलाय यज्ञ का आरंभ कीजै। महाराज, इतनी बात के सुनतेही राजा युधिष्ठिर ने सब ऋषि मुनि ब्राह्मनों को बुलाकर पूछा कि महाराजो, जो जो वस्तु यज्ञ में चाहिये, सो सो आज्ञा कीजे। महाराज, इस बात के कहतेही ऋषि मुनि ब्राह्मनों ने ग्रंथ देख देख यज्ञ की सब सामग्री एक पत्र पर लिख दी औ राजा ने वोंही मँगवाय उनके आगे धरवा दी। ऋषि मुनि ब्राह्मनों ने मिल यज्ञ की वेदी रची। चारों वेद के सब ऋषि मुनि ब्राह्मन वेदी के बीच आसन बिछाय बिछाय जा बैठे। पुनि सुच होय स्त्री सहित गंठजोड़ा बाँध राजा युधिष्ठिर भी आय बैठे औ द्रोनाचार्य, कृपाचार्य, धृतराष्ट्र, दुर्योधन, सिसुपाल आदि जितने योधा औ बड़े बड़े राजा थे वे भी आन बैठे। ब्राह्मनों ने स्वस्ति-

वाचन कर गणेश पुजवाय, कलश स्थापन कर ग्रहस्थापन किया। राजा ने भरद्वाज, गौतम, वशिष्ठ, विश्वामित्र, बामदेव, परासर, व्यास, कस्यप आदि बड़े बड़े ऋषि मुनि ब्राह्मनों का बरन किया औ विन्होंने वेद मंत्र पढ़ पढ़ सब देवताओं का आवाहन किया औ राजा से यज्ञ का संकल्प करवाय होम का आरम्भ।

महाराज, मंत्र पढ़ पढ़कर ऋषि मुनि ब्राह्मन आहुति देने लगे औ देवता प्रत्यक्ष हाथ बढ़ाय बढ़ाय लेने। उस समय ब्राह्मन वेद पाठ करते थे औ सब राजा होमने की सामग्री लाला देते थे औ राजा युधिष्ठिर होमते थे कि इसमें निर्द्वंद यज्ञ पूरन हुआ औ राजा ने पूर्नाहुति दी। उस काल सुर नर मुनि सब राजा को धन्य धन्य कहने लगे औ यक्ष गंधर्व किन्नर बाजन बजाय बजाय, जस गाय गाय फूल बरसावने। इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज, यज्ञ से निचिन्त हो राजा युधिष्ठिर ने सहदेवजी को बुलाय के पूछा—

पहले पूजा काकी कीजै। अक्षत तिलक कौन को दीजै॥
कौन बड़ो देवन कौ ईस। ताहि पूज हम नावें सीस॥

सहदेवजी बोले कि महाराज, सब देवों के देव हैं बासुदेव, कोई नहीं जानता इनका भेव। ये हैं ब्रह्मा रुद्र इन्द्र के ईस, इन्हीं को पहले पूज नवाइये सीस। जैसे तरवर की जड़ में जल देने से सब शाखा हरी होती हैं, तैसे हरि की पूजा करने से सब देवता सन्तुष्ट होते हैं। यही जगत के करता हैं औ येही उपजाते पालते मारते हैं। इनकी लीला हैं अनन्त, कोई नहीं जानता इनका अंत। येई हैं प्रभु अलख अगोचर अविनासी, इन्हींके चरनकँवल सदा

सेवती है कमला भई दासी। भक्तों के हेतु बार बार लेते हैं अवतार, तनु धर करते हैं लोक व्यौहार।

बन्धु कहत घर बैठे आवैं। अपनी माया मांहि भुलावैं॥
महा मोह हम प्रेम भुलाने। ईश्वर कौ भ्राता कर जाने॥
इनते बड़ौ न दीसे कोई। पूजा प्रथम इन्हींकी होई॥

महाराज, इस बात के सुनतेही सब ऋषि मुनि औ राजा बोल उठे कि राजा, सहदेवजी ने सत्य कहा, प्रथम पूजन जोग हरिही हैं। तब तो राजा युधिष्ठिर ने श्रीकृष्णचंदजी को सिंहासन पर बिठाय, आठों पटरानियों समेत, चंदन, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य कर पूजा। पुनि सब देवताओं ऋषियों मुनियों ब्राह्मन और राजाओं की पूजा की रंग रंग के जोड़े पहनाए, चंदन केसर की खौड़ें की, फूलों के हार पहराए, सुगंध लगाय यथा-योग्य राजाने सबकी मनुहार की। श्रीशुकदेवजी बोले कि राजा,

हरि पूजत सब कौ सुख भयौ। सिसुपाल कौ सीस भूं नयौ॥

कितनी एक बेर तक तो वह सिर झुकाए मनही मन कुछ सोच विचार करता रहा। निदान कालबस हो अति क्रोध कर सिंहासन से उतर सभा के बीच निःसंकोच निडर हो बोला कि इस सभा में धृतराष्ट्र, दुर्योधन, भीषम, कर्न, द्रोनाचार्य आदि सब बड़े बड़े ज्ञानी मानी हैं, पर इस समैं सबकी गति मति मारी गई, बड़े बड़े मुनीस बैठे रहे औ नंद गोप के सुत की पूजा भई औ कोई कुछ न बोला। जिसने ब्रज में जन्म ले ग्वाल बालों की जूठी छाक खाई, तिसीकी इस सभा में भई प्रभुताई बड़ाई।

ताहि बड़ौ सब कहत अचेत। सुरपति को बलि कागहि देत॥

जिनने गोपी औ ग्वालनों से नेह किया, इस सभा ने तिसेही

सब से बड़ा साध बनाय दिया। जिसने दूध दही माखन घर घर चुराय खाया, उसी का जस सबने मिल गाया। बाट घाट में जिनने लिया दान, तिसी का ह्याँ हुआ सनमान। परनारी से जिसने छल बल कर भोग किया, सब ने मता कर उसी को पहले तिलक दिया। ब्रज में से इंद्र की पूजा जिसने उठाई औ पर्वत की पूजा ठहराई, पुनि पूजा की सब सामग्री गिर के निकट लिवाय ले जाय मिस कर आपही खाई तो भी उसे लाज न आई। जिसकी जाति पाँति औ माता पिता कुल धर्म का नहीं ठिकाना, तिसीको अलख अविनासी कर सबने माना।

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज, इसी भाँति से कालवस होय राजा सिसुपाल अनेक अनेक बुरी बातें श्रीकृष्णचंदजी को कहता था औ श्रीकृष्णचंदजी सभा के बीच सिंहासन पर बैठे सुन सुन एक एक बात पर एक एक लकीर खैंचते थे। इस बीच भीष्म, कर्न, द्रोन औ बड़े बड़े राजा हरिनिंदा सुन अति क्रोध कर बोले कि अरे मूर्ख, तू सभा में बैठा हमारे सनमुख प्रभु की निंदा करता है, रे चंडाल, चुप रह नहीं अभी पछाड़ मार डालते हैं। महाराज, यह कह शस्त्र ले ले सब राजा सिसुपाल के मारने को उठ धाए। उस समय श्रीकृष्णचंद आनंदकंद ने सबको रोककर कहा कि तुम इस पर शस्त्र मत करो, खड़े खड़े देखो, यह आपसे आप ही मारा जाता है। मैं इसके सौ अपराध सहूँगा, क्योंकि मैंने वचन हारा है सौ से बढ़ती न सहूँगा, इसलिए मैं रेखा काढ़ता जाता हूँ।

महाराज, इतनी बात के सुनतेही सब ने हाथ जोड़ श्रीकृष्णचंद से पूछा कि कृपानाथ, इसका क्या भेद है जो आप इसके

सौ अपराध क्षमा करिएगा, सो कृपा कर हमें समझाइये जो हमारे मन का संदेह जाय। प्रभु बोले कि जिस समय यह जन्मा था तिस समय इसके तीन नेत्र औ चार भुजा थीं। यह समाचार पाय इसके पिता राजा दमघोष ने जोतिषियों औ बड़े बड़े पंड़ितों को बुलाय के पूछा कि यह लड़का कैसा हुआ इसका विचार कर मुझे उत्तर दो। राजा की बात सुनते ही पंडित औ जोतिषियों ने शास्त्र विचारके कहा कि महाराज, यह बड़ा बली औ प्रतापी होगा और यह भी हमारे विचार में आता है जिसके मिलने से इसकी एक आँख औ दो बाँह गिर पड़ेंगी, यह उसी के हाथ मारा जायगा। इतना सुन इसकी मा महादेवी, सूरसेन की बेटी, बसुदेव की बहन, हमारी फूफी अति उदास भई औ आठ पहर पुत्र ही की चिंता में रहने लगीं।

कितने एक दिन पीछे एक समै पुत्र जो लिये पिता के घर द्वारका में आई औ इसे सबसे मिलाया। जब यह मुझसे मिला औ इसकी एक आँख औ दो बाँह गिर पड़ीं, तब फूफू ने मुझे वचनबंध करके कहा कि इसकी मीच तुम्हारे हाथ है तुम इसे मत मारियो, मैं यह भीख तुमसे माँगती हूँ। मैंने कहा—अच्छा सौ अपराध हम इसके न गिनेंगे, इस उपरांत अपराध करेगा तो हनेंगे। हमसे यह बचन ले फूफू सबसे बिदा हो, इतना कह पुत्र सहित अपने घर गई, कि यह सौ अपराध क्यों करेगा जो कृष्ण के हाथ मरेगा।

महाराज, इतनी कथा सुनाय श्रीकृष्णजी ने सब राजाओं के मन का भ्रम मिटाय, उन लकीरों को गिना जो एक एक अपराध पर खैंची थीं। गिनतेही सौ से बढ़ती हुई, तभी प्रभु ने सुदरसन

चक्र को आज्ञा दी, उसने झट सिसुपाल का सिर काट डाला। उसके धड़ से जो जोति निकली सो एक बार तो आकाश को धाई, फिर आय सबके देखते श्रीकृष्णचंद के मुख में समाई। यह चरित्र देख सुर नर मुनि जैजैकार करने लगे औ पुष्प बर-सावने। उस काल श्रीमुरारि भक्तहितकारी ने उसे तीसरी मुक्ति दी औ उसकी क्रिया की।

इतनी कथा सुन राजा परीक्षित ने श्रीशुकदेवजी से पूछा कि महाराज, तीसरी मुक्ति प्रभु ने किस भाँति दी सो मुझे समझायके कहिये। शुकदेवजी बोले कि राजा, एक बार यह हरनकस्यप हुआ तब प्रभु ने नृसिंह अवतार ले तारा। दूसरी बेर रावन भया तो हरि ने रामावतार ले इसका उद्धार किया। अब तीसरी बिरियाँ यह है इसीसे तीसरी मुक्ति भई। इतना सुन राजा ने मुनि से कहा कि महाराज, अब आगे कथा कहिए। श्रीशुकदेवजी बोले कि राजा, यज्ञ के हो चुकतेही राजा युधिष्ठिर ने सब राजाओं को स्त्री सहित बागे पहराय ब्राह्मनों को अनगिनत दान दिया। देने का काम यज्ञ में राजा दुर्योधन को था तिसने द्वेष कर एक की ठौर अनेक दिये, उसमें उसका जस हुआ तो भी वह प्रसन्न न हुआ।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज, यज्ञ के पूर्ण होतेही श्रीकृष्णजी राजा युधिष्ठिर से बिदा हो सब सेना ले कुटुंबसहित, हस्तिनापुर से चले चले द्वारकापुरी पधारे। प्रभु के पहुँचतेही घर घर मंगलाचार होने लगा औ सारे नगर में आनंद हो गया।

———

छिहत्तरवाँ अध्याय

राजा परीक्षित बोले कि महाराज, राजसूय यज्ञ होने से सब कोई प्रसन्न हुए, एक दुर्योधन अप्रसन्न हुआ। इसका कारन क्या है, सो तुम मुझे समझायकै कहो जो मेरे मन का भ्रम जाय। श्रीशुकदेवजी बोले कि राजा, तुम्हारे पितामह बड़े ज्ञानी थे, जिन्होंने यज्ञ में जिसे जैसा देखा तिसे तैसा काम दिया। भीम को भोजन करवाने का अधिकारी किया, पूजा पर सहदेव को रक्खा, धन लाने को नकुल रहे, सेवा करने पर अर्जुन ठहरे, श्रीकृष्णचंदजी ने पाँव धोने औ जूठी पत्तल उठाने का काम लिया, दुर्योधन को धन बाँटने का कार्य दिया और सब जितने राजा थे तिन्होंने एक एक काज बाँट लिया। महाराज, सब तो निष्कपट यज्ञ की टहल करते थे, पर एक राजा दुर्योधन ही कपट सहित काम करता था, इससे वह एक की ठौर अनेक उठाता था, निज मन में यह बात ठानके कि इनका भंडार टूटे तो अप्रतिष्ठा होय, पर भगवत कृपा से अप्रतिष्ठा न हो और जस होता था, इस लिये वह अप्रसन्न था और वह यह भी न जानता था कि मेरे हाथ में चक्र है एक रुपया दूंगा तो चार इकटठे होंगे।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि राजा, अब आगे कथा सुनिये। श्रीकृष्णचंद के पधारते ही राजा युधिष्ठिर ने सब राजाओं को खिलाय पिलाय, पहराय, अति शिष्टाचार कर बिदा किया। वे दल साज साज अपने अपने देस को सिधारे। आगे राजा युधिष्ठिर पांडव औ कौरवों को ले गंगास्नान को बाजे गाजे से गए। तीर पर जाय दंडवत कर रज लगाय आचमन कर

स्त्री सहित नीर में पैठे, उनके साथ सब ने स्नान किया। पुनि न्हाय धोय, सन्ध्या पूजन से निचिन्त होय वस्त्र आभूषन पहन सब को साथ लिये राजा युधिष्टिर कहाँ आते हैं, कि जहाँ मय दैत्य ने मन्दिर अति सुन्दर सुवर्न के रतन जटित बनाए थे। महाराज, वहाँ जाय राजा युधिष्ठिर सिंहासन पर विराजे, उस काल गन्धर्व गुन गाते थे, चारन बंदीजन जस बखानते थे, सभा के बीच पातर नृत्य करती थीं, घर बाहर में मंगली लोग गाय बजाय मंगलाचार करते थे और राजा युधिष्ठिर की सभा इन्द्र की सी सभा हो रही थी। इस बीच राजा युधिष्ठिर के आने के समाचार पाय, राजा दुर्योधन भी कपट स्नेह किये वहाँ मिलने को बड़ी धूम धाम से आया।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज, वहाँ मय ने चौक के बीच ऐसा काम किया था कि जो कोई जाता था तिसे थल में जल का भ्रम होता था औ जल में थल का। महाराज, जो राजा दुर्योधन मंदिर में पैठा तों उसे थल देख जल का भ्रम हुआ, उसने वस्त्र समेट उठाय लिये। पुनि आगे बढ़ जल देख उसे थल का धोखा हुआ, जों पाँव बढ़ाया तो विसके कपड़े भींगे। यह चरित्र देख सब सभा के लोग खिल-खिला उठे। राजा युधिष्ठिर ने हँसी को रोक मुँह फेर लिया। महा-राज सबके हँस पड़तेही राजा दुर्योधन अति लज्जित हो महा क्रोध कर उलटा फिर गया। सभा में बैठ कहने लगा कि कृष्ण का बल पाय युधिष्ठिर को अति अभिमान हुआ है। आज सभा में बैठ मेरी हाँसी की, इसका पलटा मैं लूं औ उसका गर्व तोड़ूं तो मेरा नाम दुर्योधन, नहीं तो नहीं।

———

सतहत्तरवाँ अध्याय

श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, जिस समैं श्रीकृष्णचंद औ बलरामजी हस्तिनापुर में थे, तिसी समय सालव नाम दैत्य सिसुपाल का साथी जो रुक्मिनी के ब्याह में श्रीकृष्णचंदजी के हाथ की मार खाय भागा था सो मन ही मन इतना कह लगा महादेव जी की तपस्या करने कि अब मैं अपना बैर जदुबंसियों से लूंगा।

इंद्री जीत सबै बस कीनी। भूख प्यास सब ऋतु सह लीनी॥
ऐसी बिधि तप लाग्यौ करन। सुमिरै महादेव के चरन॥
नित उठ मूठी रेत लै खाय। करै कठिन तप शिव मन लाय॥
बरष एक ऐसी बिधि गयौ। तबही महादेव बर दयौ॥

कि आज से तू अजर अमर हुआ औ एक रथ माया का तुझे मय दैत्य बना देगा, तू जहाँ जाने चाहेगा वह तुझे तहाँ ले जायगा बिमान की भाँति, त्रिलोकी में उसे मेरे बर से सब ठौर जाने की सामर्थ होगी।

महाराज, सदाशिवजी ने जों बर दिया तों एक रथ आय इसके सनमुख खड़ा हुआ। यह शिवजी को प्रनाम कर रथ पर चढ़ द्वारका पुरी को धर धमका। वहाँ जाय नगरनिवासियों को अनेक अनेक भाँति की पीड़ा उपजाने लगा। कभी अग्नि बरसाता था, कभी जल। कभी बृक्ष उखाड़ नगर पर फैंकता था, कभी पहाड़। उसके डर से सब नगर निवासी अति भयमान हो भाग राजा उग्रसेन के पास जा पुकारे कि महाराज की दुहाई दैत्य ने आय नगर में अति धूम मचाई, जो इसी भाँति उपाध करैगा तो कोई

जीता न रहैगा। महाराज, इतनी बात के सुनतेही उग्रसेन ने प्रद्युम्न जी औ संबू को बुलायके कहा कि देखो हरि का पीछा ताक यह असुर आया है प्रजा को दुख देने, तुम इसका कुछ उपाय करो। राजा की आज्ञा पाय प्रद्युम्नजी सब कटक ले रथ पर बैठ, नगर के बाहर लड़ने को जा उपस्थित हुए औ संबू को भयातुर देख बोले कि तुम किसी बात की चिंता मत करो मैं हरि प्रताप से इस असुर को बात की बात में मार लेता हूँ। इतना बचन कह प्रद्यु-म्नजी सेना ले शस्त्र पकड़ जों उसके सनमुख हुए, तों उसने ऐसी माया की कि दिन की महा अँधेरी रात हो गई। प्रद्युम्नजी ने वोंही तेजवान बान चलाय यों महा अँधकार को दूर किया कि जों सूरज का तेज कुहासे को दूर करै। पुनि कई एक बान इन्होंने ऐसे मारे कि उसका रथ अस्तव्यस्त हो गया औ वह घबराकर कभी भाग जाता था, कभी आय अनेक अनेक राक्षसी माया उपजाय उपजाय लड़ता था औ प्रभु की प्रजा को अति दुख देता था।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज, दोनों ओर से महायुद्ध होताही था कि इस बीच एका एकी आय, सालव दैत्य के मंत्री दुबिद* ने प्रद्युम्नजी की छाती में एक गदा ऐसी मारी कि ये मूर्छा खाय गिरे। इनके गिर-तेही वह किलकारी मारके पुकारा कि मैंने श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न को मारा। महाराज, यादव तो राक्षसों से महायुद्ध कर रहे थे, उसी समैं प्रद्युम्नजी को मूर्छित देख दारुक सारथी का बेटा रथ में डाल रन से ले भागा औ नगर में ले आया। चैतन्य होते ही प्रद्युम्नजी ने अति क्रोध कर सूत से कहा—

---

* १ (ख) में द्युमत् है।

ऐसो नाहिं उचित हो तोहि। जानि अचेत भजावै मोहि॥
रन तजकै तू ल्यायौ धाम। यह तो नहिं सूरकौ काम॥
यदुकुल में ऐसौ नहि कोय। तजकै खेत जो भाग्यो होय॥

क्या तैंने कहीं मुझे भागते देखा था, जो तू आज मुझे रन से भगाय लाया! यह बात जो सुनेगा सो मेरी हाँसी औ निंदा करेगा। तैंने यह काम भला न किया जो बिन काम कलंक का टीका लगा दिया। महाराज, इतनी बात के सुनते ही सारथी रथ से उतर सनमुख खड़ा हो हाथ जोड़ सिर नाय बोला कि हे प्रभु, तुम सब नीति जानते हो, ऐसा संसार में कोई धर्म नहीं जिसे तुम नहीं जानते, कहा है—

रथी सूर जो घायल परै। ताकौं सारथि लै नीकरै॥
जौ सारथी परै खा घाय। ताहि बचाय रथी लै जाय॥
लागी प्रबल गदा अति भारी। मूर्छित ह्वै सुध देह बिसारी॥
तब हौं रन तें लै नीसर्यौ। स्वामिद्रोह अपजस तें डर्यौ॥
घरी एक लीनौ विश्राम। अब चलकर कीजै संग्राम॥
धर्म नीति तुमतें जानिये। जग उपहास न मन आनिये॥
अब तुम सबही कौं बध करिहौ। मायामय दानव की हरिहौ॥

महाराज, ऐसे कह, सूत प्रद्युम्नजी को जल के निकट ले गया। वहाँ जाय उन्होंने मुख हाथ पाँव धोय, सावधान होय, कवच टोप पहन, धनुष बान सँभाल सारथी से कहा—भला जो भया सो भया पर अब तू मुझे वहाँ ले चल, जहाँ दुबिद जदुबंसियों से युद्ध कर रहा है। बात के सुनतेही सारथी बात के बात में रथ वहाँ ले गया, जहाँ वह लड़ रहा था। जाते ही इन्होंने ललकारकर कहा कि तू इधर उधर क्या लड़ता है आ मेरे सन-

मुख हो जो तुझे सिसुपाल के पास भेजूँ। यह वचन सुनतेही वह जों प्रद्युम्नजी पर आय टूटा, तों कई एक बान मार इन्होंने उसे मार गिराया औ संबू ने भी असुरदल काट काट समुद्र में पाटा।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, जब असुर-दल से युद्ध करते करते द्वारका में सब जदुबंसियों को सत्ताइस दिन हुए, तब अंतरजामी श्रीकृष्णचंदजी ने हस्तिनापुर में बैठे बैठे द्वारका की दसा देख, राजा युधिष्टिर से कहा कि महाराज, मैंने रात्र स्वप्न में देखा कि द्वारका में महा उपद्रव हो रहा है औ सब जदुबंसी अति दुखी हैं, इससे अब आप आज्ञा दो तो हम द्वारका को प्रस्थान करैं। यह बात सुन राजा युधिष्टिर ने हाथ जोड़कर कहा—जो प्रभु की इच्छा। इतना बचन राजा युधिष्टिर के मुख में निकलतेही श्रीकृष्ण बलराम सबसे विदा हो, जों पुर के बाहर निकले तों क्या देखते हैं कि बाँई ओर एक हिरनी दौड़ी चली जाती है औ सोंहीं स्वान खड़ा सिर झाड़ता है। यह अप-शकुन देख हरि ने बलरामजी से कहा कि भाई, तुम सब को साथ ले पीछे आओ मैं आगे चलता हूँ। राजा, भाई से यों कह श्रीकृष्णचंदजी आगे जाय रनभूमि में क्या देखते हैं, कि असुर जदुबंसियों को चारों ओर से बड़ी मार मार रहे हैं औ वे निपट घबराय शस्त्र चलाय रहे हैं। यह चरित्र देख हरि जों वहाँ खड़े हो कुछ भावित हुए, तों पीछे से बलदेवजी भी जा पहुँचे। उस काल श्रीकृष्णजी ने बलरामजी से कहा कि भाई, तुम जाय नगर औ प्रजा की रक्षा करो मैं इन्हें मार चला आता हूँ। प्रभु की आज्ञा पाय बलदेवजी तो पुरी में पधारे औ आप हरि वहाँ रन में गए, जहाँ प्रद्युम्नजी सालव से युद्ध कर रहे थे।

यदुपति के आते ही शंख धुनि हुई औ सबने जाना कि श्रीकृष्णचंद आए। महाराज, प्रभु के जातेही सालव अपना रथ उड़ाय आकाश में लेगया औ वहाँ से अग्नि सम बान बरसाने लगा। इस समय श्रीकृष्णचंदजी ने सोलह बान गिनकर ऐसे मारे कि उसका रथ औ सारथी उड़ गया, औ वह लड़खड़ाय नीचे गिरा। गिरतेही संभलकर एक बान उसने हरि की बाम भुजा में मारा औ यों पुकारा कि रे कृष्ण, खड़ा रह मैं युद्ध कर तेरा बल देखता हूँ, तैने तो संखासुर, भौमासुर औ सिसुपाल आदि बड़े बड़े बलवान छल बल कर मारे हैं, पर अब मेरे हाथ से तेरा बचना कठिन है।

मोंसों तोहि पर्‌यो अब काम। कपट छाँड़ि कीजो संग्राम॥
बानासुर भौमासुर बरी। तेरौ मग देखत हैं हरी॥
पठऊँ तहाँ बहुरि नहिं आवै। भाजे तू न बड़ाई पावै॥

यह बात सुन जों श्रीकृष्णजी ने इतना कहा कि रे मूरख अभिमानी कायर कूर, जो हैं क्षत्री गंभीर धीर सूर वे पहले किसी से बड़ा बोल नहीं बोलते, तों उसने दौड़कर हरि पर एक गदा अति क्रोध कर चलाई सो प्रभु ने सहज सुभाव ही काट गिराई। पुनि श्रीकृष्णचंदजी ने उसे एक गदा मारी वह गदा खाय माया की ओट में जाय दो घड़ी मूर्छित रहा। फिर कपटरूप बनाय प्रभु के सनमुख आय बोला—

माय तिहारी देवकी, पठयौ मोहि अकुलाय॥
रिपु सालव बसुदेव कौं, पकरे लीये जाय॥

महाराज, वह असुर इतना बचन सुनाय वहाँ से जाय माया का बसुदेव बनाय बाँध लाय श्रीकृष्णचंद के सोंही आय

बोला—रे कृष्ण, देख मैं तेरे पिता को बाँध लाया औ अब इसका सिर काट सब जदुबंसियों को मार समुद्र में पाटूँगा, पीछे तुझे मार इकछत राज करूँगा। महाराज, ऐसे कह उसने माया के बसुदेव का सिर पछाड़ के श्रीकृष्णजी के देखते काट डाला औ बरछी के फल पर रख सबको दिखाया। यह माया का चरित्र देख पहले तो प्रभु को मूर्छा आई, पुनि देह सँभाल मनहीं मन कहने लगे कि यह क्योंकर हुआ जो यह बसुदेवजी को बलरामजी के रहते द्वारका से पकड़ लाया। क्या यह उनसे भी बली है जो उनके सनमुख से बसुदेवजी को ले निकल आया।

महाराज, इसी भाँति की अनेक अनेक बातें कितनी एक बेर लग आसुरी माया में आय प्रभु ने की औ महा भावित रहे। निदान ध्यान कर हरि ने देखा तो सब आसुरी माया की छाया का भेद पाया, तब तो श्रीकृष्णचंदजी ने उसे ललकारा। प्रभु की ललकार सुन वह आकाश को गया औ लगा वहाँ से प्रभु पर शस्त्र चलाने। इस बीच श्रीकृष्णजी ने कई एक बान ऐसे मारे कि वह रथ समेत समुद्र में गिरा। गिरतेही सँभल गदा ले प्रभु पर झपटा। तब तो हरि ने उसे अति क्रोध कर सुदरसन चक्र से मार गिराया, ऐसे कि जैसे सुरपति ने वृत्रासुर को मार गिराया था। महाराज, उसके गिरतेही उसके सीस की मनि निकल भूमि पर गिरी औ जोति श्रीकृष्णचंद के मुख में समाई।

अठहत्तरवाँ अध्याय

श्रीशुकदेवजी बोले कि राजा, अब मैं सिसुपाल के भाई वक्र-दंत और बिदूरथ की कथा कहता हूँ कि जैसे वे मारे गए। जबसे सिसुपाल मारा गया तबसे वे दोनों श्रीकृष्णचंदजी से अपने भाई का पलटा लेने का विचार किया करते थे। निदान सालव औ दुविद के मरतेही अपना सब कटक ले द्वारका पुरी पर चढ़ि आए औ चारों ओर से घेर लगे अनेक अनेक प्रकार के जन्त्र औ शस्त्र चलाने।

पर्‍यौ नगर में खरभर भारी। सुनि पुकार रथ चढ़े मुरारी॥

आगे श्रीकृष्णचंद नगर के बाहर जाय वहाँ खड़े हुए, कि जहाँ अति कोप किये शस्त्र लिये वे दोनों असुर लड़ने को उपस्थित थे। प्रभु को देखतेही वक्रदंत महा अभिमान कर बोला कि रे कृष्ण, तू पहले अपना शस्त्र चलाय ले पीछे मैं तुझे मारूँगा। इतनी बात मैंने इसलिये तुझे कही कि मरते समय तेरे मन में यह अभिलाषा न रहै कि मैंने वक्रदंत पर शस्त्र न किया। तूने तो बड़े बड़े बली मारे हैं पर अब मेरे हाथ से जीता न बचेगा। महाराज, ऐसे कितने एक दुष्ट वचन कह वक्रदंत ने प्रभु पर गदा चलाई, सो हरि ने सहज ही काट गिराई। पुनि दूसरी गदा ले हरि से महा युद्ध करने लगा, तब तो भगवान ने उसे मार गिराया औ विसका जी निकल प्रभु के मुख में समाया।

आगे वक्रदंत का मरना देख बिदूरथ जों युद्ध करने को चढ़ आया, तों ही श्रीकृष्णजी ने सुदरसन चक्र चलाया। उसने बिदू-

रथ का सिर मुकुट कुण्डल समेत काट गिराया। पुनि सब असुर-दल को मार भगाया। उस काल—

फूले देव पहुप बरषावैं। किन्नर चारन हरि जस गावैं॥
सिद्ध साध विद्याधर सारे। जय जय चढ़े विमान पुकारे॥

पुनि सब बोले कि महाराज, आपकी लीला अपरंपार है कोई इसका भेद नहीं जानता। प्रथम हिरनकस्यप और हिरनाकुस भए, पीछे रावन औ कुम्भकरन, अब ये दंतवक्र औ सिसुपाल हो आए। तुम ने तीनों बेर इन्हें मारा औ परम मुक्ति दी, इससे तुम्हारी गति कुछ किसीसे जानी नहीं जाती। महाराज इतना कह देवता तो प्रभु को प्रनाम कर चले गए औ हरि बलरामजी से कहने लगे कि भाई, कौरव औ पांडवों से हुई लड़ाई; अब क्या करैं। बलदेवजी बोले—कृपा निधान, कृपा कर आप हस्तिनापुर को पधारिये, तीरथ यात्रा कर पीछे से मैं भी आता हूँ। इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, यह बचन सुन श्री कृष्णचंदजी तो वहाँ को पधारे जहाँ कुरुक्षेत्र में कौरव औ पांडव महाभारत युद्ध करते थे औ बलरामजी तीरथ यात्रा को निकले। आगे सब तीरथ करते करते बलदेवजी नीमषार में पहुँचे तो वहाँ क्या देखते हैं कि एक ओर ऋषि मुनि यज्ञ रच रहे हैं औ एक ओर ऋषि मुनि की सभा में सिंहासन पर बैठे सूतजी कथा बाँच रहे हैं। इनको देखतेही सौनकादि सब मुनि ऋषियों ने उठकर प्रनाम किया औ सूत सिंहासन पर गद्दी लगाए बैठा देखता रहा।

महाराज, सूत के न उठतेही बलरामजी ने सौनकादि सब ऋषि मुनियों से कहा कि इस मूरख को किसने बक्ता किया और व्यास आसन दिया। बक्ता चाहिये भक्तिवंत, विवेकी औ ज्ञानी,

यह है गुनहीन, कृपन औ अति अभिमानी। पुनि चाहिये निर्लोभी औ परमारथी, यह है महालोभी औ आप स्वारथी। ज्ञानहीन अविवेकी को यह ब्यासगादी फबती नहीं, इसे मारें तो क्या, पर यहाँ से निकाल दिया चाहिये। इस बात के सुनतेही सौनकादि बड़े बड़े मुनि ऋषि अति विनती कर बोले कि महाराज, तुम हो बीर धीर सकल धर्म नीति के जान, यह है कायर अधीर अविवेकी अभिमानी अज्ञान। इसका अपराध क्षमा कीजे क्योंकि यह ब्यासगादी पर बैठा है औ ब्रह्मा ने यज्ञ कर्म के लिये इसे यहाँ स्थापित किया है।

आसन गर्व मूढ़ मन धर्‍यौ। उठि प्रनाम तुमकौं नहिं कर्‍यौ॥
यही नाथ याकौ अपराध। परी चूक है तौ यह साध॥
सूतहि मारे पातक होय। जग में भलौ कहै नहिं कोय॥
निर्फल वचन न जाय तिहारौ। यह तुम निज मन माहि बिचारौ॥

महाराज, इतनी बात के सुनतेही बलरामजी ने एक कुश उठाय, सहज सुभाय सूत के मारा, उसके लगते ही वह मर गया। यह चरित्र देख सौनकादि ऋषि मुनि हाहाकार कर अति उदास हो बोले कि महाराज, जो बात होनी थी सो तो हुई पर अब कृपा कर हमारी चिन्ता मेटिये। प्रभु बोले—तुम्हें किस बात की इच्छा है सो कहो हम पूरी करैं। मुनियों ने कहा—महाराज, हमारे यज्ञ करने में किसी बात का विघ्न न होय यही हमारी वासना है सो पूरी कीजै औ जगत में जस लीजे। इतना बचन मुनियों के मुख से निकलतेही अंतरजामी बलरामजी ने सूत के पुत्र को बुलाय, व्यासगादी पर बैठाय के कहा—यह अपने बाप से अधिक बक्ता होगा औ मैंने इसे अमरपद दे चिरंजीव किया, अब तुम निचिंताई से यज्ञ करो।

———

उन्नासीवाँ अध्याय

श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, बलरामजी की आज्ञा पाय सौनकादि सब ऋषि मुनि अति प्रसन्न हो जों यज्ञ करने लगे, तों जालव* नाम दैत्य लत्र का वेटा आय, महा मेघ कर बादल गरजाय, बड़ी भयंकर अति काली आँधी चलाय, लगा आकाश से रुधिर औ मल मूत्र बरसावने और अनेक अनेक उपद्रव मचाने।

महाराज, दैत्य की यह अनीति देखि बलदेवजी ने हल मूसल का आवाहन किया, वे आय उपस्थित हुए। पुनि महा क्रोध कर प्रभु ने जालव को हल से खैंच एक मूसल उसके सिर में ऐसा मारा कि

फूट्यो मस्तक छूटे प्रान। रुधिर प्रवाह भयो तिहिं स्थान॥
कर भुज डारि परो बिकरार। निकरे लोचन राते बार॥

जालव के मरतेही सब मुनियों ने अति संतुष्ट हो बलदेवजी की पूजा की औ बहुत सी स्तुति कर भेंट दी। फिर बलराम सुखधाम वहाँ से बिदा हो तीरथ यात्रा को निकले तो महाराज, सब तीरथ कर पृथ्वी प्रदक्षना करते करते कहाँ पहुँचे कि जहाँ कुरुक्षेत्र में दुर्योधन औ भीमसेन महायुद्ध करते थे औ पाँडव समेत श्रीकृष्णचंद औ बड़े बड़े राजा खड़े देखते थे। बलरामजी के जातेही बीरों ने प्रनाम किया, एक ने गुरु जान, दूसरे ने बंधु मान। महाराज दोनों को लड़ता देख बलदेवजी बोले—

सुभट समान प्रबल दोउ बीर। अब संग्राम तजहु तुम धीर॥
कौर पंडु कौ राखहु बंस। बंधु मित्र सब भए विध्वंस॥

---

* (ख) में इल्लव का पुत्र बल्कल है पर शुद्ध नाम बल्वल है।

दोउ सुनि बोले सिर नाय। अब रन तें उतर्‌यौ नहिं जाय॥

पुनि दुर्योधन बोला कि गुरुदेव, मैं आपके सनमुख झूठ नहीं भाषता, आप मेरी बात मन दे सुनिये। यह जो महाभारत युद्ध होता है औ लोग मारे गए औ मारे जाते हैं औ जायँगे, सो तुम्हारे भाई श्रीकृष्णचंदजी के मते से। पाँडव केवल श्रीकृष्णजी के बल से लड़ते हैं, नहीं इनकी क्या सामर्थ थी जो ये कौरवों से लड़ते। ये बापरे तो हरि के बस ऐसे हो रहे हैं, कि जैसे काठ की पुतली नटुए के बस होय, जिधर वह चलावे तिधर वह चले। उनको यह उचित न था, जो पाँडवों की सहायता कर हमसे इतना द्वेष करें। दुसासन की भीम से भुजा उखड़वाई औ मेरी जाँघ में गदा लगवाई। तुमसे अधिक हम क्या कहेंगे इस समय

जो हरि करें सोई अब होय। या बातें जाने सब कोय॥

यह वचन दुर्योधन के मुख से निकलतेही इतना कह बलरामजी श्रीकृष्णचंद के निकट आए कि तुम भी उपाध करने में कुछ घट नहीं औ बोले कि भाई, तुमने यह क्या किया जो युद्ध करवाय दुसासन की भुजा उखड़वाई औ दुर्योधन की जाँघ कटवाई। यह धर्मयुद्ध की रीति नहीं है कि कोई बलवान हो किसी की भुजा उखाड़े, कै कटि के नीचे शस्त्र चलावे। हाँ धर्मयुद्ध यह है कि एक एक को ललकार सनमुख शस्त्र करै। श्रीकृष्णचंद बोले कि भाई, तुम नहीं जानते ये कौरव बड़े अधर्मी अन्याई हैं। इनकी अनीति कुछ कही नहीं जाती। पहले इन्होंने दुसासन शकुनी भगदंत* के कहे जुआ खेल कपट कर राजा युधिष्ठिर का सर्वस जीत लिया। दुसासन द्रौपदी के हाथ पकड़ लाया

---

* (ख) में भगदत्त है।

इससे उसके हाथ भीमसेन ने उखाड़े। दुर्योधन ने सभा के बीच द्रौपदी को जाँघ पर बैठने को कहा, इसीसे उसकी जाँघ काटी गई।

इतना कह पुनि श्रीकृष्णचंद बोले कि भाई, तुम नहीं जानते इसी भाँति की जो जो अनीति कौरवों ने पाँडवों के साथ की है, सो हम कहाँ तक कहैंगे। इससे यह भारत की आग किसी रीति से अब न बुझेगी, तुम इसका कुछ उपाय मत करो। महाराज, इतना बचन प्रभु के मुख से निकलते ही बलरामजी कुरक्षेत्र से चलि द्वारका पुरी में आये औ राजा उग्रसेन सूरसेन से भेट कर हाथ जोड़ कहने लगे कि महाराज, आपके पुन्य प्रताप से हम सब तीरथ यात्रा तो कर आए पर एक अपराध हमसे हुआ। राजा उग्रसेन बोले – सो क्या ? बलरामजी ने कहा – महाराज, नीमषार में जाय हमने सूतको मारा तिसकी हत्या हमें लगी। अब आपकी आज्ञा होय तो पुनि नीमपार जाय, यज्ञ के दरसन कर तीरथ न्हाय, हत्या का पाप मिटाय आवें, पीछे ब्राह्मण-भोजन करवाय जात को जिमावें जिससे जग में जस पावें। राजा उग्रसेन बोले—अच्छा आप हो आइये। महाराज, राजा की आज्ञा पाय बलरामजी कितने एक जदुबंसियों को साथ ले, नीमपार जाय स्नान दान कर शुद्ध हो आए। पुनि प्रोहित को बुलाय होम करवाय ब्राह्मन जिमाय, जात को खिलाय लोक रीति कर पवित्र हुए। इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले—महाराज,

जो यह चरित सुने मन लाय। ताकौ सबही पाप नसाय॥

अस्सीवाँ अध्याय

श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, अब मैं सुदामा की कथा कहता हूँ कि जैसे वह प्रभु के पास गया औ उसका दरिद्र कटा, सो तुम मन दे सुनो। दक्षिन दिसा की ओर है एक द्रविड़ देश, तहाँ विप्र औ बनिक बसते थे नरेस। जिनके राज में घर घर होता था भजन सुमिरन औ हरि का ध्यान, पुनि सब करते थे तप यज्ञ धर्म दान और साध संत गौ ब्राह्मन का सनमान।

ऐसे बसें सबै तिहिं ठौर। हरि बिन कछू न जानें और॥

तिसी देस में सुदामा नाम ब्राह्मन श्रीकृष्णचंद का गुरुभाई, अति दीन तन छीन महा दरिद्री ऐसा कि जिसके घर पै न घास, न खाने को कुछ पास रहता था। एक दिन सुदामा की स्त्री दरिद्र से अति घबराय महा दुख पाय पति के निकट जाय, भय खाय डरती काँपती बोली कि महाराज, अब इस दरिद्र के हाथ से महा दुख पाते हैं, जो आप इसे खोया चाहिये तो मैं एक उपाय बताऊँ। ब्राह्मन बोला, सो क्या, कहा—तुम्हारे परम मित्र त्रिलोकी नाथ द्वारकावासी श्रीकृष्णचंद आनंदकंद हैं, जो उनके पास जाओ तो यह जाय, क्यौंकि वे अर्थ धर्म काम मोक्ष के दाता हैं।

महाराज, जब ब्राह्मनी ने ऐसे समझायकर कहा, तब सुदामा बोला कि हे प्रिये बिन दिये श्रीकृष्णचंद भी किसीको कुछ नहीं देते। मैं भली भाँति से जानता हूँ कि जन्म भर मैंने किसीको कभी कुछ नहीं दिया, बिन दिये कहाँ से पाऊँगा। हाँ, तेरे कहे से जाऊँगा, तो श्रीकृष्णजी के दरसन कर आऊँगा। इस बात के सुन-

तेही ब्राह्मनी ने एक अति पुराने धौले वस्त्र में थोड़े से चावल बांध ला दिये प्रभू की भेट के लिये और डोर लोटा औ लाठी आगे धरी। तब तो सुदामा डोर लोटा काँधे पर डाल चाँवल की पोटली काँख में दबाय, लाठी हाथ में ले गनेस को मनाय, श्रीकृष्णचंदजी का ध्यान कर द्वारकापुरी को पधारा।

महाराज, बाट ही में चलते चलते सुदामा मन ही मन कहने लगा कि भला धन तो मेरी प्रारब्ध में नहीं पर द्वारका जाने से श्रीकृष्णचंद आनंदकंद का दरसन तो करूँगा। इस भाँति से सोच विचार करता करता सुदामा तीन पहर के बीच द्वारकापुरी में पहुँचा, तो क्या देखता है कि नगर के चारों ओर समुद्र है औ बीच में पुरी, वह पुरी कैसी है कि जिसके चहुँ ओर बन उपवन फूल फल रहे हैं, तड़ाग वापी इंदारों पर रहट परोहे चल रहे हैं, ठौर ठौर गायों के यूथ के यूथ चर रहे हैं, तिनके साथ साथ ग्वाल बाल न्यारे ही कुतूहल करते हैं।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, सुदामा बन उपबन की शोभा निरख पुरी के भीतर जाय देखे तो कंचन के मनिमय मंदिर महा सुंदर जगमगाय रहे हैं, ठाँव ठाँव अथाइयों में यदुबंसी इंद्र की सी सभा किये बैठे हैं। हाट बाट चौहटों में नाना प्रकार की वस्तु बिक रही हैं, घर घर जिधर तिधर गान दान हरिभजन औ प्रभु का जस हो रहा है औ सारे नगर निवासी महा आनंद में हैं। महाराज, यह चरित्र देखता देखता औ श्रीकृष्णचंद का मंदिर पूछता पूछता सुदामा जा प्रभु की सिंहपौर पर खड़ा हुआ। इसने किसी से डरते डरते पूछा कि श्रीकृष्ण-चंदजी कहाँ विराजते हैं? उसने कहा कि देवता, आप मंदिर

भीतर जाओ सनमुख ही श्रीकृष्णचंदजी रत्न सिंहासन पर बैठे हैं।

महाराज, इतना बचन सुन सुदामा जों भीतर गया, तों देखते ही श्रीकृष्णचंद सिंहासन से उतर, आगू बढ़ भेट कर अति प्यार से हाथ पकड़ उसे ले गए। पुनि सिंहासन पर बिठाय पाँव धोय चरनामृत लिया, आगे चंदन चरच, अक्षत लगाय, पुष्प चढ़ाय, धूप दीप कर प्रभु ने सुदामा की पूजा को।

इतनौ करिकै जोरे हाथ। कुशल क्षेम पूछत यदुनाथ ॥

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी ने राजा से कहा कि महाराज, यह चरित्र देख श्रीरुक्मिनीजी समेत आठों पटरानियाँ औ सोलह सहस्र आठ सौ रानियाँ और सब यदुबंसी जो उस समय वहाँ थे, मन ही मन यों कहने लगे कि इस दरिद्री, दुर्बल, मलीन, वस्त्रहीन, ब्राह्मन ने ऐसा क्या अगले जन्म पुन्य किया था जो त्रिलोकीनाथ ने इसे इतना माना। महाराज, अंतरजामी श्रीकृष्णचंद उस काल सब के मन की बात समझ उनका संदेह मिटाने को, सुदामा से गुरु के घर की बातें करने लगे कि भाई तुम्हें वह सुध है जो एक दिन गुरुपत्नी ने हमें तुम्हें ईंधन लेने भेजा था और जब बन से ईंधन ले गठड़ियाँ बाँध सिर पर धर घर को चले, तब आँधी और मेह आया औ लगा मूसलाधार बरसने, जल थल चारों ओर भर गया, हम तुम भींगकर महादुख पाय जाड़ा खाय रात भर एक बृक्ष के नीचे रहे। भोर ही गुरुदेव बन में ढूँढ़ने आये औ अति करुना कर असीस दे हमें तुम्हें अपने साथ घर लिवाय लाए।

इतना कह पुनि श्रीकृष्णचंदजी बोले कि भाई, जब से तुम

गुरुदेव के ह्याँ से बिछड़े, तब से हमने तुम्हारा समाचार न पाया था कि कहाँ थे औ क्या करते थे। अब आय दरस दिखाय तुमने हमें महासुख दिया औ घर पवित्र किया। सुदामा बोला— हे कृपासिंधु, दीनबंधु, स्वामी, अंतरजामी तुम सब जानते हो, कोई बात संसार में ऐसी नहीं जो तुमसे छिपी है।

एक्यासीवाँ अध्याय

श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, अंतरजामी श्रीकृष्णजी ने सुदामा की बात सुन औ उसके अनेक मनोरथ समझ हँसकर कहा कि भाई, भाभी ने हमारे लिये क्या भेट भेजी है सो देते क्यों नहीं, काँख में किस लिये दबाय रहे हो। महाराज, यह बचन सुन सुदामा तो सकुचाय मुरझाय रहा औ प्रभु ने झट चावल की पोटली उसकी काँख से निकाल ली। पुनि खोल उसमें से अति रुचि कर दो मुट्ठी चावल खाए औ जो तीसरी मुट्ठी भरी, तो श्रीरुक्मिनीजी ने हरि का हाथ पकड़ा औ कहा कि महाराज, आपने दो लोक तो इसे दिये अब अपने रहने को भी कोई ठौर रक्खोगे कै नहीं। यह तो ब्राह्मन सुसील कुलीन अति बैरागी महात्यागी सा दृष्ट आता है, क्यौंकि इसे विभौ पाने से कुछ हर्ष न हुआ। इससे मैंने जाना कि लाभ हानि समान जानते हैं, इन्हे पाने का हर्ष न जाने का शोक।

इतनी बात रुक्मिनीजी के मुख से निकलते ही श्रीकृष्णचंदजी ने कहा कि हे प्रिये, यह मेरा परम मित्र है इसके गुन मैं कहाँ तक बखानूँ। सदा सर्वदा मेरे स्नेह में मगन रहता है और उसके आगे संसार के सुख को तृनवत समझता है।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज, ऐसे अनेक अनेक प्रकार की बातें कर प्रभु रुक्मिनीजी को समझाय, सुदामा को मंदिर में लिवाय ले गये। आगे षटरस भोजन करवाय, पान खिलाय हरि ने सुदामा को फेन सी सेज

पर ले जाय बैठाया। वह पथ का हारा थका तो था ही, सेज पर जाय सुख पाय सो गया। प्रभु ने उस समय विश्वकर्मा को बुलायके कहा—तुम अभी जाय सुदामा के मंदिर अति सुन्दर कंचन रत्न के बनाय, तिनमें अष्टसिद्धि नवनिद्धि धर आओ जो इसे किसी बात की कांक्षा न रहे। इतना बचन प्रभु के मुख से निकलते ही बिश्वकर्मा वहाँ जाय बात की बात में बनाय आया औ हरि से कह अपने स्थान को गया।

भोर होते ही सुदामा उठ स्नान ध्यान भजन पूजा से निचिंत हो प्रभु के पास बिदा होने गया, उस समय श्रीकृष्णचंदजी मुख से तो कुछ न बोल सके, पर प्रेम में मगन हो आँखें डबडबाय सिथिल हो देख रहे। सुदामा बिदा हो प्रनाम कर अपने घर को चला औ पंथ में जाय मन ही मन विचार करने लगा कि भला भया जो मैंने प्रभु से कुछ न माँगा जो उनसे कुछ माँगता तो वे देते तो सही पर मुझे लोभी लालची समझते। कुछ चिन्ता नहीं ब्राह्मनी को मैं समझाय लूंगा। श्रीकृष्णचंदजी ने मेरा अति मान सनमान किया औ मुझे निर्लोभी जाना यही मुझे लाख है। महाराज, ऐसे सोच विचार करता करता सुदामा अपने गाँव के निकट आया, तो क्या देखता है कि न वह ठाँव है न वह टूटी मड़ैया, वहाँ तो एक इंद्रपुरी सी बस रही है। देखते ही सुदामा अति दुखित हो कहने लगा कि हे नाथ, तूने यह क्या किया? एक दुख तो था ही दूसरा और दिया। ह्याँ से मेरी झोपड़ी क्या हुई और ब्राह्मनी कहाँ गई, किससे पूछूं औ किधर ढूंढूँ?

इतना कह द्वार पर जाय सुदामा ने द्वारपाल से पूछा कि यह मंदिर अति सुंदर किसके हैं? द्वारपाल ने कहा—श्रीकृष्णचंद

के मित्र सुदामा के हैं। यह बात सुन जों सुदामा कुछ कहने को हुआ तों भीतर से देख उसकी ब्राह्मनी, अच्छे वस्त्र आभूषण पहने नख सिख से सिंगार किए, पान खाए, सुगंध लगाए, सखियों को साथ लिए पति के निकट आई।

पायन पर पाटम्बर डारे। हाथ जोड़ ये बचन उचारे॥
ठाढ़े क्यों मन्दिर पग धारो। मन सो सोच करो तुम न्यारौ॥
तुम पाछे विश्वकर्मा आए। तिन मन्दिर पल माँझ बनाए॥

महाराज, इतनी बात ब्रह्मानी के मुख से सुन सुदामाजी मंदिर में गए औ अति विभौ देख महा उदास भए। ब्राह्मनी बोली–स्वामी, धन पाय लोग प्रसन्न होते हैं, तुम उदास हुए इसका कारन क्या है सो कृपा कर कहिए जो मेरे मनका संदेह जाय। सुदामा बोला कि हे प्रिये, यह माया बड़ी ठगनी है, इसने सारे संसार को ठगा है, ठगती है औ ठगेगी; सो प्रभु ने मुझे दी औ मेरे प्रेम की प्रतीत न की। मैंने उनसे कब माँगी थी जो उन्होंने मुझे दी, इसीसे मेरा चित्त उदास है। ब्राह्मनी बोली—स्वामी, तुमने तो श्रीकृष्णचंदजी से कुछ न माँगा था, पर वे अंतरजामी घट घट की जानते हैं। मेरे मन में धन की बासना थी सो प्रभु ने पूरी की, तुम अपने मन में और कुछ मत समझो। इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज, इस प्रसंग को जो सदा सुने सुनावेगा सो जन जगत में आय दुख कभी न पावेगा औ अंत काल बैकुंठ धाम जावेगा।

———

बयासीवाँ अध्याय

श्रीशुकदेवजी बोले कि राजा अब मैं प्रभु के कुरुक्षेत्र जाने की कथा कहता हूँ तुम चित दे सुनौ कि जैसे द्वारका से सब यदुबंसियों को साथ ले श्रीकृष्णचंद औ बलरामजी सूर्यग्रहन न्हाने कुरुक्षेत्र गए। राजा ने कहा—महाराज, आप कहिये मैं मन दे सुनता हूँ। पुनि श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, एक समय सूर्यग्रहन के समाचार पाय श्रीकृष्णचंद और बलदेवजी ने राजा उग्रसेन के पास जायके कहा कि महाराज, बहुत दिन पीछे सूर्य-ग्रहन आया है जो इस पर्व को कुरुक्षेत्र में चलकर कीजे तो बड़ा पुन्य होय, क्योंकि शास्त्र में लिखा है कि कुरुक्षेत्र में जो दान पुन्य करिये सो सहस्र गुना होय। इतनी बात के सुनते ही यदु-बंसियों ने श्रीकृष्णचंदजी से पूछा कि महाराज, कुरुक्षेत्र ऐसा तीर्थ कैसे हुआ सो कृपा कर हमें समझाके कहिये।

श्रीकृष्ण जी बोले कि सुनौ यमदग्नि ऋषि बड़े ज्ञानी ध्यानी तपस्वी तेजस्वी थे, तिनके तीन पुत्र हुए, उनमें सब से बड़े परशु-राम, सो बैराग कर घर छोड़ चित्रकूट में जाय रहे और सदाशिव की तपस्या करने लगे। लड़कों के होते ही यमदग्नि ऋषि गृहस्था-श्रम छोड़ बैराग कर स्त्री सहित बन में जाय तप करने लगे। उनकी स्त्री का नाम रेनुका, सो एक दिन अपनी बहन को नौतने गई। उसकी बहन राजा सहस्रार्जुन की स्त्री थी। नौता देते ही अहंकार कर राजा सहस्रार्जुन की रानी, रेनुका की बहन, हँसकर

बोली की बहन, तुम हमें हमारे कटक समेत जिमाय सको तो नौता दो, नहीं तो न दो।

महाराज, यह बात सुन रेनुका अपना सा मुँह ले चुप चाप वहाँ से उठ अपने घर आई। इसे उदास देख यमदग्नि ऋषि ने पूछा कि आज क्या है जो तू अनमनी हो रही है। महाराज, बात के पूछते ही रेनुका ने रोकर सब जों की तों बात कही। सुनते ही यमदग्नि ऋषि ने स्त्री से कहा कि अच्छा तू जाय के अभी अपनी बहन को कटक समेत नौत आ। पति की आज्ञा पाय रेनुका बहन के घर जाय नौत आई। उसकी बहन ने अपने स्वामी से कहा कि कलह तुम्हें हमें दल समेत यमदग्नि ऋषि के यहाँ भोजन करने जाना है। स्त्री की बात सुन अच्छा कह वह हँसकर चुप हो रहा। भोर होते ही यमदग्नि उठकर राजा इंद्र के पास गए औ कामधेनु माँग लाए। पुनि जाय राजा सहस्रार्जुन को बुलाय लाए। वह कटक समेत आया, तिसे यमदग्निजी ने इच्छा भोजन खिलाया।

कटक समेत भोजन कर राजा सहस्रार्जुन अति लज्जित हुआ औ मन ही मन कहने लगा, कि इसने इतने लोगों के खाने की सामग्री रात भर में कहाँ पाई औ कैसे बनाई, इसका भेद कुछ जाना नहीं जाता। इतना कह बिदा होय उसने घर जाय, यों कह एक ब्राह्मन को भेज दिया कि देवता तुम यमदग्नि के घर जाय इस बात का भेद लाओ कि उसने किसके बल से एक दिन के बीच मुझे कटक समेत नौत जिमाया। इतनी बात के सुनते ही ब्राह्मन ने झट जाय देख आय सहस्रार्जुन से कहा कि महाराज, उसके घर में कामधेनु है उसी के प्रभाव से उसने तुम्हें एक दिन में नौत जिमाया। यह समाचार सुन सहस्रार्जुन ने उसी

ब्राह्मन से कहा कि देवता, तुम जाय हमारी ओर से यमदग्नि ऋषि से कहो कि सहस्रार्जुन ने कामधेनु माँगी है।

बात के सुनते ही वह ब्राह्मन संदेसा ले ऋषि के पास गया औ उसने सहस्रार्जुन की कही बात कही। ऋषि बोले कि यह गाय हमारी नहीं जो हम दें। यह तो राजा इंद्र की है हम इसे दे नहीं सकते। तुम जाय अपने राजा से कहो। बात के कहते ही ब्राह्मन ने आय सहस्रार्जुन से कहा कि महाराज, ऋषि ने कहा है, कामधेनु हमारी नहीं यह तो राजा इंद्र की है, इसे हम दे नहीं सकते। इतनी बात ब्राह्मन के मुख से निकलते ही सहस्रार्जुन ने अपने कितने एक जोधाओं को बुलाय के कहा—अभी जाय यमदग्नि के घर से कामधेनु खोल लाओ।

स्वामी की आज्ञा पाय जोधा ऋषि के स्थान पर गए औ—जों धेनु को खोल यमदग्नि के सनमुख हो चले, तों ऋषि ने दौड़कर बाट में जाय कामधेनु को रोका। यह समाचार पाय, क्रोध कर सहस्रार्जुन ने आ, ऋषि का सिर काट डाला। कामधेनु भाग इंद्र के यहाँ गई, रेनुका आय पति के पास खड़ी भई।

सिर खसोट लोटत फिरै, बैठि रहै गहि पाय।
छाती पीटै रुदन करि, पिउ पिउ कहि बिललाय॥

उस काल रेनुका का बिलबिलाना औ रोना सुन दसों दिसा के दिग्पाल जाग उठे औ परशुरामजी का तप करते करते आसन डिगा औ ध्यान छूटा। ध्यान के छूटते ही ज्ञान कर परशुरामजी अपना कुठार ले वहाँ आये जहाँ पिता की लोथ पड़ी थी औ माता छाती पीटती खड़ी थी। देखते ही परशुरामजी को महा क्रोध हुआ, इसमें रेनुका ने पति के मारे जाने का सब भेद पुत्र को

कह सुनाया। बात के सुनते ही परशुरामजी इतना कह वहाँ गए, जहाँ सहस्रार्जुन अपनी सभा में बैठा था कि माता, पहले मैं अपने पिता के बैरी को मारि आऊँ तब आय पिता को उठाऊँगा। उसे देखते ही परशुरामजी कोप कर बोले—

अरे क्रूर, कायर, कुल द्रोही। तात मारि दुख दीनौं मोही॥

ऐसे कह जब फरसा ले परशुरामजी महा कोप में आये, तब वह भी धनुष बान ले इनके सौंही खड़ा हुआ। दोनों बली महायुद्ध करने लगे। निदान लड़ते लड़ते परशुरामजी ने चार घड़ी के बीच सहस्रार्जुन को मार गिराया, पुनि उसका कटक चढ़ि आया जिसे भी इन्होंने उसी के पास काट डाला। फिर वहाँ से आय पिता की गति करी औ माता को समझाय पुनि उसी ठौर परशु-रामजी ने रुद्रयज्ञ किया, तभी से वह स्थान क्षेत्र कहकर प्रसिद्ध हुआ। वहाँ जाकर ग्रहन में जो कोई दान स्नान तप यज्ञ करता है उसे सहस्रगुना फल होता है।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज, इस प्रसंग के सुनते ही सब जदुबंसियों ने प्रसन्न हो श्रीकृष्णचंदजी से कहा कि महाराज, शीघ्र कुरुक्षेत्र को चलिये अब बिलम्ब न करिये, क्योंकि पर्व पर पहुँचा चाहिए। बात के सुनते ही श्रीकृष्णचंद औ बलरामजी ने राजा उग्रसेन से पूछा कि महाराज, सब कोई कुरक्षेत्र को चलेगा यहाँ पुरी की चौकसी को कौन रहेगा। राजा उग्रसेन ने कहा—अनिरुद्धजी को रख चलिये। राजा की आज्ञा पाय प्रभु ने अनिरुद्ध को बुलाय समझायकर कहा कि बेटा, तुम यहाँ रहो, गौ ब्राह्मन की रक्षा करो औ प्रजा को पालो। हम राजाजी के साथ सब जदुबंसियों

समेत कुरक्षेत्र न्हाय आवें। अनिरुद्धजी ने कहा—जो आज्ञा। महाराज, एक अनिरुद्धजी को पुर की रखवाली के लिये छोड़ सूरसेन, बासुदेव, उद्धव, अक्रूर, कृतवर्मा आदि छोटे बड़े सब यदुबंसी अपनी अपनी स्त्रियों समेत राजा उग्रसेन के साथ कुरक्षेत्र चलने को उपस्थित हुए। जिस समैं कटक समेत राजा उग्रसेन ने पुरी के बाहर डेरा किया, उस काल सब जाय मिले। तिनके पीछे से श्रीकृष्णचंदजी भी भाई भौजाई को साथ ले, आठों पटरानी औ सोलह सहस्र आठ सौ रानी औ बेटों पोतों समेत जाय मिले। प्रभु के पहुँचते ही राजा उग्रसेन ने वहाँ से डेरा उठाया औ राजा इन्द्र की भाँति बड़ी धूमधाम से आगे को प्रस्थान किया।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, कितने एक दिनों में चले चले श्रीकृष्णचंद सब जदुबंसियों समेत आनंद मंगल से कुरक्षेत्र में पहुँचे। वहाँ जाय पर्व में सब ने स्नान किया औ यथाशक्ति हर एक ने हाथी घोड़ा रथ पालकी वस्त्र शस्त्र रत्न आभूषन अन्न धन दान दिया। पुनि वहाँ सबों ने डेरे डाले। महाराज, श्रीकृष्णचंद औ बलरामजी के कुरक्षेत्र जाने का समाचार पाय, चहुँ ओर के राजा कुटुम्ब समेत अपनी अपनी सब सेना ले ले वहाँ आय श्रीकृष्णचंद औ बलरामजी को मिले। पुनि सब कौरव पाण्डव भी अपना अपना दल ले सकुटुंब वहाँ आय मिले उस काल कुंती औ द्रौपदी जदुबंसियों के रनवास में जाय सबसे मिलीं। आगे कुंती ने भाई के सनमुख जाय कहा कि भाई, मैं बड़ी अभागी, जिस दिन से माँगी, उसी दिन से दुख उठाती हूँ। तुमने जब से ब्याह दी तब से, मेरी सुध कभी न ली औ राम कृष्ण जो सब के हैं सुखदाई; उनको भी मेरी दया

कुछ न आई। महाराज, इस बात के सुनते ही करुना कर आँखे भर बसुदेवजी बोले कि बहन, तू मुझे क्या कहती है इसमें मेरा कुछ बस नहीं, कर्म की गति जानी नहीं जाती। हरि इच्छा प्रबल है, देखो कंस के हाथ से मैंने भी क्या क्या दुख न पाया।
प्रभु आधीन सकल जग आय। कित दुख करौ देख जग भाय॥

महाराज, इतना कह बहन को समझाय बुझाय बसुदेवजी वहाँ गए जहाँ सब राजा उग्रसेन की सभा में बैठे थे औ राजा दुर्योधन आदि बड़े बड़े नृप औ पांडव उग्रसेन ही की बड़ाई करते थे कि राजा, तुम बड़भागी हो जो सदा श्रीकृष्णचंद का दरसन पाते हो औ जन्म का पाप गँवाते हो। जिन्हें शिव बिरंच आदि सब देवता खोजते फिरें सो प्रभु तुम्हारी सदा रक्षा करें। जिनका भेद जोगी जती मुनि ऋषि न पावें सो हरि तुम्हारी आज्ञा लेन आवें। जो हैं सब जग के ईस, वेई तुम्हें निवावते हैं सीस।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, ऐसे सब राजा आय आय राजा उग्रसेन की प्रसंसा करते थे औ वे यथायोग सबका समाधान। इसमें श्रीकृष्ण बलरामजी का आना सुन नंद उपनंद भी सकुटुंब, सब गोपी गोप ग्वाल बाल-समेत आन पहुँचे। स्नान दान से सुचित हो नंदजी वहाँ गए जहाँ पुत्र सहित बसु-देव देवकी बिराजते थे। इन्हें देखते ही बसुदेवजी उठकर मिले औ दोनों ने परस्पर प्रेम कर ऐसे सुख माना कि जैसे कोई गई बस्तु पाय सुख माने। आगे बसुदेवजी ने नंदरायजी से ब्रज की पिछली सब बात कह सुनाई, जैसे नंदरायजी ने श्रीकृष्ण बलराम जी को पाला था। महाराज, इस बात के सुनतेही नंद-रायजी नयनों में नीर भर बासुदेवजी का मुख देख रहे। उस काल

श्रीकृष्ण बलदेवजी प्रथम नंद जसोदाजी को यथायोग दंडवत प्रनाम कर पुनि ग्वाल बालों से जाय मिले। तहाँ गोपियों ने आय हरि का चंदमुख निरख अपने नयन चकोरों को सुख दिया औ जीवन का फल लिया। इतना कह श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, वसुदेव, देवकी, रोहिनी, श्रीकृष्ण, बलराम से मिल जो कुछ प्रेम नंद उपनद जसोदा गोपी ग्वाल बालों ने किया सो मुझसे कहा नहीं जाता, वह देखे ही बन आवै। निदान सब को स्नेह में निपट व्याकुल देख श्रीकृष्णचंदजी बोले कि सुनौ—

मेरी भक्ति जो प्रानी करै। भवसागर निर्भय सो तरै॥
तन मन धन तुम अर्पन कीन्हौ। नेह निरंतर कर मोहि चीन्हौ॥
तुम सम बड़भागी नहीं कोय। ब्रह्मा रुद्र इंद्र किन होय॥
जोगेश्वर के ध्यान न आयो। तुम संग रह नित प्रेम बढ़ायौ॥
हौं सब ही के घट घट रहौं। अगम अगाध जुबानी कहौं॥

जैसे तेज जल अग्नि पृथ्वी आकाश का है देह में बास, तैसे सब घट में मेरा है प्रकाश। श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, जब श्रीकृष्णचंद ने यह सब भेद कह सुनाया, तब सब ब्रजबासियों को धीरज आया।

———

तिरासीवाँ अध्याय

श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, जैसे द्रौपदी औ श्रीकृष्णचंद जी की स्त्रियों में परस्पर बातें हुईं सो मैं प्रसंग कहता हूँ, तुम सुनो। एक दिन कौरव औ पांडवों की स्त्रियाँ श्रीकृष्णचंद की नारियों के पास बैठी थीं औ प्रभु के चरित्र औ गुन गाती थीं, इसमें कुछ बात जो चली तो द्रौपदी ने श्रीरुक्मिनीजी से कहा कि हे सुंदरि, कह, तूने श्रीकृष्णचंदजी को कैसे पाया। श्रीरुक्मिनीजी बोलीं—

सुनौ द्रौपदी तुम चितलाय। जैसे प्रभु ने किये उपाय॥

मेरे पिता का तो मनोरथ था कि मैं अपनी कन्या श्रीकृष्णचंद को दूँ औ भाई ने राजा सिसुपाल को देने का मन किया, वह बारात ले ब्याहन को आया औ श्रीकृष्णचंद को मैंने ब्राह्मन भेजके बुलाया। ब्याह के दिन मैं जों गौरि की पूजा कर घर को चली, तों श्रीकृष्णचंदजी ने सब असुरदल के बीच से मुझे उठाय ले रथ में बैठाय अपनी बाट ली। तिस पीछे समाचार पाय सब असुरदल प्रभु पर आय टूटा, सो हरि ने सहज ही मार भगाया। पुनि मुझे ले द्वारका पधारे, वहाँ जाते ही राजा उग्रसेन सूरसेन बसुदेवजी ने वेद की बिधि से, श्रीकृष्णचंदजी के साथ मेरा ब्याह किया। विवाह के समाचार पाय मेरे पिता ने बहुत सा यौतुक भिजवाय दिया।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज, जैसे द्रौपदीजी ने श्रीरुक्मिनीजी से पूछा और उन्होंने तैसे ही द्रौपदीजी ने सतभामा, जामवंती, कालिंदी, भद्रा, सत्या, मित्रबिंदा, लक्ष्मना आदि श्रीकृष्णचंद की सोलह सहस्र आठ सौ पटरानियों से पूछा औ एक एक ने समाचार अपने अपने विवाह का ब्यौरे समेत कहा।

———

चौरासीवाँ अध्याय

श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, अब मैं सब ऋषियों के आने की औ बासुदेवजी के यज्ञ करने की कथा कहता हूँ तुम चित दे सुनौ। महाराज, एक दिन राजा उग्रसेन, सूरसेन, बसुदेव, श्रीकृष्ण, बलराम सब जदुबंसियों समेत सभा किये बैठे थे औ सब देस देस के नरेस वहाँ उपस्थित थे, कि इस बीच श्रीकृष्णचंद आनंदकंद के दरसन की अभिलाषा कर व्यास, वशिष्ठ, विस्वामित्र वामदेव, परासर, भृगु, पुलस्ति, भरद्वाज, मारकंडेय आदि अट्ठासी सहस्र ऋषि वहाँ आए औ तिनके साथ नारदजी भी। उन्हें देखते ही सभा की सभा उठ खड़ी हुई। पुनि सब दंडवत कर पाटंबर के पाँवड़े डाल, सभा में ले गये। आगे श्रीकृष्णचंद ने सबको आसन पर बैठाय, पाँव धोय चरनामृत ले पिया औ सारी सभा पर छिड़का। फिर चंदन अक्षत पुष्प धूप दीप नैवेद्य कर, भगवन ने सबकी पूजा कर परिक्रमा की। पुनि हाथ जोड़ सनमुख खड़े हो हरि बोले कि धन्य भाग हमारे जो आपने आय घर बैठे दरसन दिया। साध का दरसन गंगा के स्नान समान है। जिसने साध का दरसन पाया, उसने जन्म जन्मका पाप गँवाया। इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज—

श्रीभगवान बचन जब कहे। तब सब ऋषी बिचारत रहे॥

कि जो प्रभु है जोतीसरूप औ सकल सृष्टि का करता, सो

जब यह बात कहै तब और की किसने चलाई। मन ही मन सब मुनियों ने जद इतना कहा तद नारदजी बोले—

सुनौ सभा तुम सब मन लाय। हरि माया जानी नहीं जाय॥

ये आपही ब्रह्मा हो उपजावते हैं, विष्णु हो पालते हैं, शिव हो संहारते हैं। इनकी गति अपरंपार है, इसमें किसी की बुद्धि कुछ काम नहीं करती, पर इतना इनकी कृपा से हम जानते हैं कि साधों को सुख देने को औ दुष्टों के मारने को औ सनातन धर्म चलाने को, बार बार औतार ले प्रभु आते हैं। महाराज, जों इतनी बात कह नारदजी सभा से उठने को हुए, तों बसुदेवजी सनमुख आय हाथ जोड़ बिनती कर बोले कि हे ऋषिराय, मनुष संसार में आय कर्म से कैसे छूटे, सो कृपा कर कहिये। महाराज यह बात वसुदेवजी के मुख से निकलतेही सब मुनि ऋषि नारदजी का मुख देख रहे। तब नारदजी ने मुनियों के मन का अभिप्राय समझकर कहा कि हे देवताओं, तुम इस बात का अचरज मत करो, श्रीकृष्ण की माया प्रबल है, इसने संसार को जीत रखा है, इसीसे बसुदेवजी ने यह बात कही औ दूसरे ऐसे भी कहा है कि जो जन जिसके समीप रहता है वह उसका गुन प्रभाव औ प्रताप माया के बस हो नहीं जानता, जैसे—

गंगाबासी अनतहि जाइ। तज के गंग कूप जल न्हाइ॥
योंही यादव भए अयाने। नाहीं कछू कृष्णगति जाने॥

इतनी बात कह नारदजी ने मुनियों के मन का संदेह मिटाय, बासुदेवजी से कहा कि महाराज, शास्त्र में कहा है, जो नर तीरथ, दान, तप, व्रत, यज्ञ करता है सो संसार के बंधन से छूट परम गति पाता है। इस बात के सुनते ही प्रसन्न हो बसुदेवजी ने

बात की बात में सब यज्ञ की सामा मँगाय उपस्थित की और ऋषियों औ मुनियों से कहा कि कृपा कर यज्ञ का आरंभ कीजे। महाराज, बसुदेव जी के मुख से इतना बचन निकलते ही, सब ब्राह्मनों ने यज्ञ का स्थान बनाय सँवारा। इस बीच स्त्रियों समेत बसुदेवजी बेदी में जा बैठे। सब राजा औ यादव यज्ञ की टहल में आ उपस्थित हुए।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी ने राजा से कहा कि महाराज जिस समय बसुदेवजी वेदी में जाय बैठे, उस काल वेद की बिधि से मुनियों ने यज्ञ का आरभ किया औ लगे वेद मंत्र पढ़ पढ़ आहुत देने औ देवता सदेह भाग आय आय लेने। महाराज, जिस काल यज्ञ होने लगा उस काल उधर किन्नर गंधर्व भेर दुंदुभी बजाय गुन गाते थे, चारन बंदी जन जस बखानते थे, उरबसी आदि अपसरा नाचती थीं औ देवता अपने अपने विमानों में बैठे फूल बरसाते थे औ इधर सब मंगली लोग गाय बजाय मंगलाचार करते थे औ जाचक जैजैकार। इसमें यज्ञ पूरन हुआ औ बसुदेवजी ने पुर्नाहुति दे ब्राह्मनों को पाटंबर पहराय अलंकृत कर, रत्न धन बहुत सा दिया औ उन्होंने बेद मंत्र पढ़ पढ़ आशीर्वाद किया। आगे सब देस देस के नरेसों को भी बसुदेवजी ने पहराया औ जिमाया। पुनि उन्होंने यज्ञ की भेट कर बिदा हो अपनी अपनी बाट ली। महाराज, सब राजाओं के जाते ही नारदजी समेत सारे ऋषि मुनि भी बिदा हुए। पुनि नंदराय जी गोपी गोप ग्वाल बाल समेत जब बसुदेवजी से बिदा होने लगे, उस समय की बात कुछ कही नहीं जाती कि इधर तौ यदुबंसी करुना कर अनेक प्रकार की बातें करते थे औ उधर सब ब्रजबासी। उसका बखान कुछ कहा नहीं जाय, वह सुख देखे ही

बनि आय। निदान बसुदेवजी औ श्रीकृष्ण बलरामजी ने सब समेत नंदरायजी को समझाय बुझाय पहराय औ बहुत सा धन दे बिदा किया। इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, इस भाँति श्रीकृष्णचंद औ बलरामजी पर्व न्हाय यज्ञ कर सब समेत जब द्वारकापुरी में आए, तो घर घर आनंद मंगल भए बधाए।

पचासीवाँ अध्याय

श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, द्वारका पुरी के बीच एक दिन श्रीकृष्णचंद औ बलरामजी जों बसुदेवजी के पास गए तों वे इन दोनों भाइयों को देख यह बात मन में विचार उठ खड़े हुए, कि कुरक्षेत्र में नारदजी ने कहा था कि श्रीकृष्णचंद जगत के करता हैं औ हाथ जोड़ बोले कि हे प्रभु, अलख अगोचर अविनासी, सदा सेवती है तुम्हें कमला भई दासीं। तुम हो सब देवों के देव, कोई नहीं जानता तुम्हारा भेव। तुम्हारी ही जोती है चाँद सूरज पृथ्वी आकाश में, तुम्हीं करते हो सब ठौर प्रकाश। तुम्हारी माया है प्रबल, उसने सारे संसार को भुला रक्खा है। त्रिलोकी में सुर नर मुनि ऐसा कोई नहीं जो उसके हाथ से बचा हो। महाराज, इतना कह पुनि बसुदेवजी बोले कि नाथ,

कोउ न भेद तुम्हारौ जाने। वेदन माँझ अगाध बखाने॥
शत्रु मित्र कोऊ न तिहारौ। पुत्र पिता न सहोदर प्यारौ॥
पृथ्वी भार हरन अवतारौ। जन के हेत भेष बहु धारौ॥

महाराज, ऐसे कह बसुदेवजी बोले कि हे करुनासिन्धु दीनबंधु, जैसे आपने अनेक अनेक पतितों को तारा, तैसे कृपा कर मेरी भी निस्तार कीजे, जो भवसागर के पार हो आपके गुन गाऊँ। श्रीकृष्णचंद बोले कि हे पिता, तुम ज्ञानी होय पुत्रों की बड़ाई क्यों करते हो, टुक आप ही मन में विचारो कि भगवत की लीला अपरंपार है। उसका पार किसी ने आज तक नहीं पाया, देखो वह-

घट घट माहिं जोति ह्वै रहै। ताही सो जग निर्गुन कहै ॥
आपहि सिरजै आपहि हरै। रहै मिल्यौ बाँध्यौ नहीं परै ॥
भू आकाश वायु जल जोति। पंच तत्व ते देह जो होति ॥
प्रभु की शक्ति सबनि में रहै। वेद माहि विधि ऐसे कहै ॥

महाराज, इतनी बात श्रीकृष्णचंदजी के मुख से सुनते ही, बसुदेवजी मोह बस होय चुप कर हरि का मुख देख रहे। तब प्रभु वहाँ से चल माता के निकट गए तो पुत्र का मुख देखते ही देवकीजी बोलीं—हे कृष्णचंद आनंदकंद, एक दुख मुझे जन्म न तब साले है। प्रभु बोले—सो क्या। देवकीजी ने कहा कि पुत्र तुम्हारे छह बड़े भाई जो कंस ने मार डाले हैं उनका दुख मेरे मन से नहीं जाता।

श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, बात के कहते श्रीकृष्ण-चंदजी इतना कह पातालपुरी को गए कि माता तुम अब मत कुढ़ो मैं अपने भाइयों को अभी जाय ले आता हूँ। प्रभु के जाते ही समाचार पाय राजा बलि आय, अति धूमधाम से पाटंबर के पाँवड़े डाल निज मंदिर में लिवाय ले गया। आगे सिंहासन पर बिठाय राजा बलि ने चंदन, अक्षत, पुष्प चढ़ाय, धूप, दीप; नैवेद्य धर श्रीकृष्णचंद की पूजा की। पुनि सनमुख खड़ा हो हाथ जोड़ अति स्तुति कर बोला कि महाराज, आप का आना ह्याँ कैसे हुआ। हरि बोले कि राजा, सतयुग में मरीचि ऋषि नामक एक ऋषि बड़े ब्रह्मचारी, ज्ञानी, सत्यवादी औ हरिभक्त थे। उसकी स्त्री का नाम उरना, विसके छह बेटे। एक दिन वे छहों भाई तरुन अवस्था में प्रजापति के सनमुख जा हँसे। उनको हँसता देख प्रजापति ने महाकोप कर यह श्राप दिया कि तुम जाय अव-

तार ले असुर हो। महाराज, इस बात के सुनतेही ऋषिपुत्र अति भय खाय प्रजापति के चरनों पर जाय गिरे औ बहुत गिड़गिड़ाय अति बिनती कर बोले कि कृपासिंधु, आपने श्राप तो दिया पर अब कृपा कर कहिए कि इस श्राप से हम कब मोक्ष पावेंगे। उनके दीन बचन सुन प्रजापति ने दयाल हो कहा कि तुम श्रीकृष्ण-चंद के दरसन पाय मुक्त होगे। महाराज—

इतनौ कहत प्रान तज गए। ते हरिनाकुस पुत्र जु भए॥
पुनि बसुदेव के जन्मे जाय। तिनकौं हत्यो कंस ने आय॥
भारत तिन्ह माया ले आई। इह ठाँ राखि गई सुखदाई॥

उनका दुख माता देवकी करती हैं, इसलिये हम ह्याँ आए हैं कि अपने भाइयों को ले जाय माता को दीजे औ उनके चित्त की चिंता दूर कीजे। श्रीशुकदेवजी बोले कि राजा, इतना बचन हरि के मुख से निकलते ही राजा बलि ने छहों बालक ला दिये औ बहुत सी भेटें आगे धरीं। तब प्रभु वहाँ से भाइयों को साथ ले माता के पास आए। माता पुत्रों को देख अति प्रसन्न हुई। इस बात को सुन सारी पुरी में आनंद हुआ औ उनका श्राप छूटा।

———

छिआसीवाँ अध्याय

श्रीशुकदेवजी बोले कि राजा, जैसे द्वारका से अर्जुन श्रीकृष्णचंदजी की बहन सुभद्रा को हर ले गये औ जैसे श्रीकृष्णचंद मिथला में जाय रहे, तैसे मैं कथा कहता हूँ तुम मन लगाय सुनो। देवकी की बेटी श्रीकृष्णजी से छोटी जिसका नाम सुभद्रा, जब व्याहन जोग हुई तब बसुदेवजी ने कितने एक जदुबंसी औ श्रीकृष्ण बलरामजी को बुलायके कहा कि अब कन्या व्याहन जोग भई कहो किसे दें। बलरामजी बोले कि कहा है, ब्याह बैर प्रीति समान से कीजे। एक बात मेरे मन में आई है कि यह कन्या दुर्योधन को दीजै, तो जगत में जस औ बड़ाई लीजै। श्रीकृष्णचंद ने कहा—मेरे बिचार में आता है जो अर्जुन को लड़की दें तो संसार में जस लें। श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज बलरामजी के कहने पर तो कोई कुछ न बोला पर श्रीकृष्णचंदजी के मुख से बात निकलते ही सब पुकार उठे कि अर्जुन को कन्या देना अति उत्तम है। इस बात के सुनते ही बलरामजी बुरा मान वहाँ से उठ गए औ विनका बुरा मानना देख सब लोग चुप रहे। आगे ये समाचार पाय अर्जुन संन्यासी का भेष बनाय, दंड कमंडल ले द्वारका में जाय, एक भली सी ठौर देख मृगछाला बिछाय आसन मार बैठा।

चार मास बरषा भरि रह्यौ। काहू मरम न ताकौ लह्यौ॥
अतिथि जान सब सेवन लागे। विष्णु हेतु तासों अनुरागे॥
वाकौ भेद कृष्ण सब जान्यौ। काहू सों तिन नाहिं बखान्यौ॥

महाराज, एक दिन बलदेवजी भी जिमाने अर्जुन को साथ कर घर लिवाय ले गए। जों अर्जुन भोजन करने बैठे तों चंद्रवदनी मृगलोचनी सुभद्राजी दृष्ट आईं। देखते ही इधर तो अर्जुन मोहित हो सब की दीठ बचाय फिर फिर देखने लगे औ मन ही मन यह विचार करने कि देखिये विधाता कब जन्मपत्री की विधि मिलावे। औ इधर सुभद्राजी इनके रूप की छटा देख रीझ मन मन यों कहती थीं कि—

है कोउ नृपति नाहि संन्यासी। का कारन यह भयो उदासी॥

महाराज, इतना कह उधर तो सुभद्राजी घर में जाय पति के मिलने की चिंता करने लगीं औ इधर भोजन कर अर्जुन अपने आसन पर आय, प्रिया के मिलन की अनेक अनेक प्रकार की भावना करने लगे। इसमें कितने दिन पीछे एक समैं शिवरात्र के दिन सब पुरबासी क्या स्त्री क्या पुरुष नगर के बाहर शिवपूजन को गए। तहाँ सुभद्राजी अपनी सखी सहेलियों समेत गईं। उनके जाने का समाचार पाय अर्जुन भी रथ पर चढ़ धनुष बान ले वहाँ जाय उपस्थित हुए।

महाराज, जों शिवपूजन कर सखियों को साथ ले सुभद्राजी फिरीं, तों देखते ही सोच संकोच तज अर्जुन ने हाथ पकड़ उठाय सुभद्रा को रथ में बैठाय अपनी बाट ली।

सुनिकै राम कोप अति कर्‍यो। हल मूसल लै कांधे धर्‍यो।
राते नयन रक्त से करे। घन सम गाज बोल उच्चरे॥
अबही जाय प्रलै मैं करिहौं। भुव उठाय कर माथे धरिहौं॥
मेरी बहन सुभद्रा प्यारी। ताकौं कैसे हरै भिखारी॥
अब हौं जहाँ संन्यासी पाऊँ। तिनकौ सब कुल खोज मिटाऊँ॥

महाराज, बलरामजी तो महा क्रोध में बक झक रहे ही थे, कि इस बात के समाचार पाय प्रद्युम्न अनरुद्ध संबू औ बड़े बड़े यादव बलदेवजी के सनमुख आय हाथ जोड़ जोड़ बोले कि महाराज, हमें आज्ञा होय तो जाय शत्रु को पकड़ लावैं ।

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेवजी बोले कि महाराज, जिस समय बलरामजी सब जदुबसियो को साथ ले अर्जुन के पीछे चलने को उपस्थित हुए, उस काल श्रीकृष्णचंदजी ने जाय बलदेव जी को सुभद्रा हरन का सब भेद समझाय औ अति विनती कर कहा कि भाई, अर्जुन एक तो हमारी फूफी का बेटा औ दूसरे परम मित्र । उसने जाने अनजाने समझे बिन समझे यह कर्म किया तो किया, पर हमें उससे लड़ना किसी भाँति उचित नहीं । यह धर्म विरुद्ध औ लोक विरुद्ध है, इस बात को जो सुनेगा सो कहेगा, कि जदुबंसियों की प्रीति है बालू की सी भीत । इतनी बात के सुनते ही बलरामजी सिर धुन झुँझला कर बोले कि भाई, यह तुम्हारा ही काम है कि आग लगाय पानी को दौड़ना । नहीं तो अर्जुन की क्या सामर्थ थी जो हमारी बहन को ले जाता । इतना कह मन ही मन पछताय ताव पेच खाय बलरामजी भाई का मुख देख हल मूसल पटक बैठ रहे औ उनके साथ साथ जदुबंसी भी ।

श्रीशुकदेवजी बोले कि राजा, इधर तो श्रीकृष्णचंदजी ने सब को समझाय बुझाय रक्खा औ उधर अर्जुन ने घर जाय बेद की बिधि से सुभद्रा के साथ ब्याह किया । ब्याह के समाचार पाय श्रीकृष्ण बलरामजी ने वस्त्र आभूषन दास दासी हाथी घोड़े रथ औ बहुत से रुपये एक ब्राह्मन के हाथ संकल्प कर हस्तिनापुर भेज

दिये। आगे श्रीमुरारी भक्तहितकारी रथ पर बैठ मिथिला* को चले, जहाँ सुतदेव, बहुलास, नाम एक राजा, ब्राह्मन दो भक्त थे। महाराज, प्रभु के चलते ही नारद वामदेव व्यास अत्रि परशुराम आदि कितने एक मुनि आन मिले औ श्रीकृष्णचंदजी के साथ हो लिए। पुनि जिस देश में हो प्रभु जाते थे, तहाँ के राजा आगू आय पूज पूज भेट धरते जाते थे। निदान चले चले कितने एक दिनों में प्रभु वहाँ पधारे। हरि के आने के समाचार पाय वे दोनों जैसे बैठे थे तैसे ही भेट ले उठ धाए औ श्रीकृष्णचंद के पास आए। प्रभु का दरसन करते ही दोनों भेंट धर दंडवत कर हाथ जोड़ सनमुख खड़े हो अति बिनती कर बोले कि हे कृपासिंधु दीनबंधु, आपने बड़ी दया की जो हमसे पतितों को दरसन दे पावन किया औ जन्म मरन का निबेड़ा चुका दिया।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी बोले कि महाराज, अंतरजामी श्रीकृष्णचंद उन दोनों भक्तों के मनकी भक्ति देखि दो सरूप धारन कर दोनों के घर जाय रहे। उन्होंने मन मानता सब रावचाव किया औ हरि ने कितने दिन वहाँ ठहर उन्हें अधिक सुख दिया। आगे प्रभु उनके मन का मनोरथ पूरा कर ज्ञान दृढ़ाय जब द्वारका को चले, तब ऋषि मुनि पंथ से बिदा हुए औ हरि द्वारका में जा बिराजे।

---

* (क) में मथिला है।

सत्यासीवाँ अध्याय

इतनी कथा सुन राजा परीक्षित ने श्रीशुकदेवजी से पूछा कि महाराज, आप जो आगे कह आए कि वेद ने परम ईश्वर की स्तुति की सो निर्गुन ब्रह्म की स्तुति वेद ने क्योंकर की यह मुझे समझा कर कहो, जो मेरे मन का संदेह जाय। श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, सुनिये कि जिसने बुद्धि, इंद्री, मन, प्रान धर्म अर्थ काम मोक्ष को बनाया है, सो प्रभु सदा निर्गुन रूप रहता है, पर जब ब्रह्माण्ड रचता है तब सगुन*सरूप होता है; इससे निर्गुन सगुन वही एक ईश्वर है।

इतना कह पुनि शुकदेव मुनि बोले कि राजा, जो प्रश्न तुमने किया सोई प्रश्न एक समय नारदजीने नरनारायन से किया था। राजा परीक्षित ने कहा कि महाराज, यह प्रसंग मुझे समझाकर कहिये जो मेरे मन का संदेह जाय। सुकदेवजी बोले कि राजा, सतयुग में एक समैं नारदजी ने सतलोक में जाय, जहाँ नरनारायन अनेक मुनियों के संग बैठे तप करते थे पूछा कि महाराज, निराकार ब्रह्म की स्तुति वेद किस भाँति करते हैं सो कृपा कर कहिये। नरनारायन बोले कि सुन नारद, जो संदेह तूने मुझसे पूछा यही संदेह एक समैं जनलोक में जहाँ सनातनादि ऋषि बैठे तप करते थे हुआ था, तद सनंदन मुनि ने कथा कह सब का संदेह मिटाया। नारदजी बोले—महाराज, मैं भी तो वहीं रहता हूँ, जो यह प्रसंग चलता तो मैं भी सुनता। नरनारायण ने कहा—

---

* (क) में सरगुन और (ख) मे सगुण है।

नारदजी, जब तुम सेत दीप में भगवत दरसन को गए थे तभी प्रसंग चला था, इससे तुमने नहीं सुना।

इतनी बात सुन नारदजी ने पूछा—महाराज, वहाँ क्या प्रसंग चला था सो कृपाकर कहिये। नारायन बोले—सुन नारद, जद मुनियों ने यह प्रश्न किया तद सनंदन मुनि कहने लगे कि सुनो जिस समैं महाप्रलय होय चौदह ब्रह्मांड जलाकार हो जाते हैं, उस समैं पूरन ब्रह्म अकेले सोते रहते हैं। जब भगवान को सृष्टि करने की इच्छा होती है, तब उनके स्वास से वेद निकल हाथ जोड़ स्तुति करते हैं। ऐसे कि जैसे कोई राजा अपने स्थान पर सोता हो औ बंदीजन भोर ही उसका जस गाय गाय उसीको, जगावें, इस लिये कि चैतन्य हो शीघ्र अपने कार्य को करे।

इतना प्रसंग कह नरनारायन बोले कि सुन नारद, प्रभु के मुख से निकल वेद यह कहते हैं कि हे नाथ, बेग चैतन्य हो सृष्टि रचो औ जीवों के मन से अपनी माया दूर करो, क्यौंकि वे तुम्हारे रूप को पहचाने। माया तुम्हारी प्रबल है, यह सब जीवों को अज्ञान कर रखती है, जो इससे छूटे तो जीव को तुम्हारे समझने का ज्ञान हो। हे नाथ, तुम बिन इसे कोई बस नहीं कर सकता, जिसके हृदै में ज्ञान रूप हो तुम बिराजते हो, सोई इस माया को जीतता है, नहीं तो किसकी सामर्थ है जो माया के हाथ से बचे। तुम सबके करता हो, सब जीव तुम्हीं से उत्पन्न हो तुम्हीं में समाते हैं, ऐसे कि जैसे पृथ्वी से अनेक वस्तु हो पुनि पृथ्वी में मिल जाती हैं। कोई किसी देवता की पूजा स्तुति करे, पर वह तुम्हारी ही पूजा स्तुति होती है। ऐसे कि जैसे कोई कंचन के अनेक आभरन बनाय अनेक नाम धरे पर वह कंचन ही है, तिसी भाँति तुम्हारे अनेक रूप हैं और ज्ञान कर देखिये तो कोई

कुछ नहीं। जिधर देखिये तिधर तुमही तुम दृष्ट आते हो। नाथ! तुम्हारी माया अपरंपार है, यही सत रज तम तीन गुन हो तीन सरूप धारन कर सृष्टि को उपजाय, पाल, नाश करती है, इसका भेद न किसीने पाया, न कोई पावेगा। इससे जीव को उचित है कि सब बासना छोड़ तुम्हारा ध्यान करें, इसीमें उसका कल्यान है। महाराज, इतना प्रसंग सुनाय नर, नारायन ने नारद से कहा कि हे नारद, जब सनंदन मुनि ने पुरातन कथा कह सबके मन का संदेह दूर किया, तब सनकादि मुनियों ने वेद की बिधि से सनंदन मुनि की पूजा की।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजा, यह नारायन नारद का संवाद जो कोई सुनेगा सो निस्संदेह भक्ति पदारथ पाय मुक्त होगा। जो कथा पूरन ब्रह्म की वेद ने गाई सोई कथा सनंदन मुनि ने सनकादि मुनियों को सुनाई। पुनि वही कथा नरनारायन ने नारद के आगे गाई, नारद से व्यास ने पाई, व्यास ने मुझे पढ़ाई, सो मैंने अब तुम्हें सुनाई। इस कथा को जो जन सुने सुनावेगा, सो मन मानता फल पावेगा। जो पुन्य होता है तप यज्ञ दान व्रत तीरथ करने में सोई पुन्य होता है इस कथा के कहने सुनने में।

———

अट्ठासीवाँ अध्याय

श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, भगवत की अद्भुत लीला है, इसे सब कोई जानता है, जो जन हरि की पूजा करे सो दरीद्री होय औ और देव को माने सो धनवान। देखो हरि हर की कैसी रीति है। ये लक्ष्मीपति, वे गवरीपति। ये धरें बनमाल, वे मुँडमाल। ये चक्रपानि, वे त्रिशूलपानि। ये धरनीधर, वे गंगाधर। ये मुरली बजावें, वे सींगी। ये बैकुंठनाथ, वे कैलाश-वासी। ये प्रतिपालें, वे संहारें। ये चरचें चंदन, वे लगावें भभूत। ये ओढ़ें अबर, वे बाघंबर। ये पढ़ें वेद, वे आगम। इनका वाहन गरुड़, उनका नंदी। ये रहें ग्वाल बालों में, वे भूत प्रेतों में।

दोऊ प्रभु की उलटी रीति। जित इच्छा तित कीजे प्रीति ॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, राजा युधिष्ठिर से श्रीकृष्णचंद ने कहा है कि हे युधिष्ठिर, जिसपर मैं अनुग्रह करता हूँ हौले हौले उसका सब धन खोता हूँ। इसलिये कि धन हीन को भाई बंधु स्त्री पुत्र आदि सब कुटुंब के लोग तज देते हैं, तब विसे बैराग उपजता है, बैराग होने से धन जन की माया छोड़ निरमोही हो मन लगाय भजन करता है, भजन के प्रताप से अटल निर्वान पद पाता है। इतना कह पुनि शुकदेवजी कहने लगे कि महाराज, औ देवता की पूजा करने से मनकामना पूरी होती है पर मुक्ति नहीं मिलती।

यह प्रसंग सुनाय मुनि ने पुनि राजा परीक्षित से कहा कि महाराज, एक समैं कश्यप का पुत्र विकासुर तप करने को अभि-

लाषा कर जों घर से निकला, तों पंथ में उसे नारद मुनि मिले। नारदजी को देखते ही इसने दंडवत कर हाथ जोड़ सनमुख खड़े हो अति दीनता कर पूछा कि महाराज, ब्रह्मा विष्णु महादेव इन तीनों देवताओं में शीघ्र बरदाता कौन है सो कृपा कर कहो तो मैं उन्हीं की तपस्या करूँ। नारद जी बोले कि सुन विकासुर, इन तीनों देवताओं में महादेवजी बड़े बरदायक हैं, इन्हें न रीझते विलंब न खीजते। देखो सिवजी ने थोड़े से तप करने से प्रसन्न हो सहस्रार्जुन को सहस्र हाथ दिया औ अल्प ही अपराध में क्रोध कर उसका नाश किया। महाराज, इतना कह नारद मुनि तो चले गए औ विकासुर अपने स्थान पर आय महादेव का अति तप यज्ञ करने लगा। सात दिन के बीच उसने छूरी से अपने शरीर का मास सब काट काट होम दिया। आठवें दिन जब सिर काटने का मन किया तब भोलानाथ ने आय उसका हाथ पकड़के कहा कि मैं तुझसे प्रसन्न हुआ, जो तेरी इच्छा में आवे सो बर माँग, मैं तुझे अभी दूँगा। इतना बचन शिवजी के मुख से निकलते ही विकासुर हाथ जोड़कर बोला—

ऐसौ बर दीजै अबै, जाके सिर धरो हाथ।
भस्म होय सो पलक में, करहु कृपा तुम नाथ॥

महाराज, बात के कहते ही महादेव जी ने उसे मुँह माँगा बर दिया। बर पाय वह शिव ही के सिर पर हाथ धरने गया। उस काल भय खाय महादेवजी आसन छोड़ भागे। उनके पीछे असुर भी दौड़ा। महाराज, सदाशिवजी जहाँ जहाँ फिरें, तहाँ तहाँ वह भी उनके पीछे ही लगा आया। निदान अति व्याकुल हो महादेव जी बैकुंठ में गए। इनको महादुखित देख भक्तहित-

कारी बैकुंठनाथ श्री मुरारी करुनानिधान करुनाकर विप्र भेष धर विकासुर के सनमुख जाय बोले कि हे असुरराय, तुम उनके पीछे क्यों श्रम करते हो, यह मुझे समझाकर कहो। बात के सुनते ही विकासुर ने सब भेद कह सुनाया। पुनि भगवान बोले कि हे असुरराय, तुम सा सयाना हो धोखा खाय यह बड़े अचरज की बात है। इस नंग मुनंगे बावले भाँग धतूरा खानेवाले जोगी की बात कौन सत्य माने यह सदा छार लगाए सर्प लिपटाए, भयानक भेष किए भूत प्रेतों को संग लिए स्मशान में रहता है। इसकी बात किसके जी में सच आवे। महाराज, यह बात कह श्रीनारायन बोले कि हे असुरराय, जो तुम मेरा कहा झूठ मानौ तो अपने सिर पर हाथ रख देख लो।

महाराज, प्रभु के मुख से इतनी बात सुनते ही, माया के बस अज्ञान हो, विकासुर ने जों अपने सिर पर हाथ रक्खा तों जलकर भस्म का ढेर हुआ। असुर के मरते ही सुर पुर में आनंद के बाजन बाजने लगे और देवता जैजैकार कर फूल बरसावने, विद्याधर गंधर्व किन्नर हरिगुन गाने। उसकाल हरि ने हर की अति स्तुति कर बिदा किया औ विकासुर को मोक्ष पदारथ दिया। श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, इस प्रसंग को जो सुने सुनावेगा, सो निस्संदेह हरि हर की कृपा से परमपद पावेगा।

नवासीवाँ अध्याय

शुकदेवजी बोले कि महाराज, एक समैं सरस्वती के तीर सब ऋषि मुनि बैठे तप यज्ञ करते थे कि उनमें से किसीने पूछा कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन तीनों देवताओं में बड़ा कौन है सो कृपा कर कहो। इसमें किसीने कहा शिव, किसीने कहा विष्णु, किसीने कहा ब्रह्मा, पर सबने मिल एक को बड़ा न बताया। तब कई एक बड़े बड़े मुनीशों ऋषीशों ने कहा कि हम यों तो किसीकी बात नहीं मानते पर हाँ जो कोई इन तीनों देवताओं की जाकर परीक्षा कर आवै औ धर्म सरूपी कहै तो उसका कहना सत्य मानें।

महाराज, यह बात सुन सबने प्रमान की औ ब्रह्मा के पुत्र भृगु को तीनों देवताओं की परीक्षा कर आने की आज्ञा दी। आज्ञा पाय भृगुमुनि प्रथम ब्रह्मलोक में गए औ चुपचाप ब्रह्मा की सभा में जा बैठे, न दंडवत की, न स्तुति, न परिक्रमा दी। राजा, पुत्र का अनाचार देख ब्रह्मा ने महा कोप किया औ चाहा कि श्राप दूँ पर पुत्र की ममता कर न दिया। उस काल भृगु ब्रह्मा को रजोगुन में आसक्त देख वहाँ से उठ कैलाश में गया औ जहाँ शिव पार्वती विराजते थे तहाँ जा खड़ा रहा। इसे देख शिवजी खड़े हो ज्यों हाथ पसार मिलने को हुए त्यों यह बैठ गया, बैठते ही शिवजी ने अति क्रोध किया औ इसके मारने को त्रिशूल हाथ में लिया। उस समय श्रीपार्वतीजी ने अति बिनती कर पाओं पड़ महादेवजी को समझाया औ कहा कि यह तुम्हारा छोटा भाई है इसका अपराध क्षमा कीजै। कहा है—

बालक सों जो चूक कछु परै। साध न कबहूँ मन में धरै॥

महाराज, जब पार्वतीजी ने शिवजी को समझाकर ठंढा किया तब भृगु महादेवजी को तमोगुन में लीन देख चल खड़े हुए। पुनि बैकुंठ में गए जहाँ भगवान मनिमय कंचन के छपरखट पर फूलों की सेज में लक्ष्मी के साथ सोते थे। जाते ही भृगु ने भगवान के हृदै में एक लात ऐसी मारी कि वे नींद से चौंक पड़े। मुनि को देख लक्ष्मी को छोड़ छपरखट से उतर हरि भृगुजी का पाँव सिर आँखों से लगाय लगे दाबने औ यों कहने कि हे ऋषिराय! मेरा अपराध क्षमा कीजे, मेरे हृदय कठोर की चोट तुम्हारे कोमल कमलचरन में अनजाने लगी यह दोष चित में न लीजे। इतना बचन प्रभु के मुख से निकलते ही भृगु जी अति प्रसन्न हो स्तुति कर बिदा हो वहाँ आए, जहाँ सरस्वती तीर सब ऋषि मुनि बैठे थे। आतेही भृगुजी ने तीनों देवताओं का भेद सब जों का तों कह सुनाया कि—

ब्रह्मा राजस में लपटान्यो। महादेव तामस में सान्यो॥
विष्णु जु सात्विक मांहि प्रधान। तिनते बड़ो देव नहीं आन॥
सुनत ऋषिन को संसो गयो। सबही के मन आनंद भयौ॥
विष्णु प्रसंसा सब ने करी। अविचल भक्ति हृदै में धरी॥

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज, मैं अंतरकथा कहता हूँ तुम मन लगाय सुनौ। द्वारका पुरी में राजा उग्रसेन तो धर्मराज करते थे औ श्रीकृष्णचंद बलराम उनकी आज्ञाकारी। राजा के राज से सब लोग अपने अपने स्वधर्म में सावधान, काज कर्म में सज्ञान रहते औ आनंद चैन करते थे। तहाँ एक ब्राह्मन भी अति सुशील धरमिष्ट रहता

था। एक समैं उसके पुत्र हो मर गया। वह उस मरे पुत्र क ले राजा उग्रसेन के द्वार पर गया औ जो उसके मुँह में आया सो कहने लगा कि तुम बड़े अधर्मी दुष्कर्मी पापी हो, तुम्हारे ही कर्म धर्म से प्रजा दुख पाती है औ मेरा भी पुत्र तुम्हारे ही पाप से मरा।

महाराज, इसी भाँति की अनेक अनेक बातें कह मरा लड़का राजद्वार पर रख ब्राह्मन अपने घर आया। आगे उसके आठ बेटे हुए औ आठों को वह उसी रीति से राजद्वार पर रख आया। जब नवाँ पुत्र होने को हुआ तब वह ब्राह्मन फिर राजा उग्रसेन की सभा में जा श्रीकृष्णचंदजी के सनमुख खड़ा हो पुत्रों के मरने का दुख सुमिर सुमिर रो रो यों कहने लगा—धिक्कार है राजा औ इसके राज को, पुनि धिक्कार है उन लोगों को जो इस अधर्मी की सेवा करते हैं औ धिक्कार है मुझे जो इस पुरी में रहता हूँ। जो इन पापियों के देस में न रहता तो मेरे पुत्र बचते। इन्हीं के अधर्म से मेरे पुत्र मरे औ किसी ने उपराला न किया।

महाराज, इसी ढब की सभा के बीच खड़े हो ब्राह्मन ने रो रो बहुत सी बातें कहीं पर कोई कुछ न बोला। निदान श्रीकृष्णचंद के पास बैठा सुन सुन घबराकर अर्जुन बोला कि हे देवता, तू किस के आगे यह बात कहे है औ क्यों इतना खेद कर रहे है। इस सभा में कोई धनुर्धर नहीं जो तेरा दुख दूर करे। आज कल के राजा आपकाजी हैं, परदुःखनिवारन नहीं जो प्रजा को सुख दे औ गौ ब्राह्मन की रक्षा करें। ऐसे सुनाय पुनि अर्जुन ने ब्राह्मन से कहा कि देवता, अब तुम जाय अपने घर निचिंत हो बैठो जब तुम्हारे लड़का होने का दिन आवे तब तुम मेरे पास

आइयो, मैं तुम्हारे साथ चलूँगा औ लड़के को न मरने दूँगा। महाराज, इतनी बात के सुनते ही ब्राह्मन खिजलायके बोला कि मैं इस सभा के बीच श्रीकृष्ण बलराम प्रद्युम्न औ अनरुद्ध छुड़ाय ऐसा बलवान किसीको नहीं देखता, जो मेरे पुत्र को काल के हाथ से बचावे। अर्जुन बोला कि ब्राह्मन, तू मुझे नहीं जानता कि मेरा नाम धनंजय है। मैं तुझसे प्रतिज्ञा करता हूँ कि जो मैं तेरा सुत काल के हाथ से न बचाऊँ तो तेरे मरे हुए लड़के जहाँ पाऊँ तहाँ से ले आय तुझे दिखाऊँ औ वे भी न मिलें तो गांडीव धनुष समेत अपने तईं अग्नि में जलाऊँ। महाराज, प्रतिज्ञा कर जब अर्जुन ने ऐसे कहा तब वह ब्राह्मन संतोष कर अपने घर गया। पुनि पुत्र होने के समैं बिप्र अर्जुन के निकट आया। उस काल अर्जुन धनुष बान ले उसके साथ उठ धाया। आगे वहाँ जाय विसका घर अर्जुन ने बानों से ऐसा छाया कि जिसमें पवन भी प्रवेश न कर सके औ आप धनुष बान लिए उसके चारों ओर फिरने लगा।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज, अर्जुन ने बहुत सा उपाय बालक को बचाने को किया पर न बचा, और दिन बालक होने के समैं रोता था, उस दिन साँस भी न लिया, बरन पेट ही से मरा निकला। मरे लड़के का होना सुन लज्जित हो अर्जुन श्रीकृष्णचंद के निकट आया औ उसके पीछे ब्राह्मन भी। महाराज, आतेही रो रो वह ब्राह्मन कहने लगा कि रे अर्जुन, धिक्कार है तुझे औ तेरे जीतब को जो मिथ्या बचन कह संसार में लोगों को मुख दिखाता है। अरे नपुंसक जो मेरे पुत्र को काल से न बचा सकता था, तो तैंने प्रतिज्ञा की

थी कि मैं तेरे पुत्र को बचाऊँगा औ न बचा सकूँगा तो तेरे मरे हुए सब पुत्र ला दूँगा।

महाराज, इतनी बात के सुनते ही अर्जुन धनुष बान ले वहाँ से उठ चला चला संजमनी पुरी में धर्मराज के पास गया। इसे देख धर्मराज उठ खड़ा हुआ औ हाथ जोड़ स्तुति कर बोला कि महाराज, आपका आगमन यहाँ कैसे हुआ। अर्जुन बोला कि मैं अमुक ब्राह्मन के बालक लेने आया हूँ। धर्मराज ने कहा कि यहाँ वे बालक नहीं आए। महाराज, इतना बचन धर्मराज के मुख से निकलते ही अर्जुन वहाँ से बिदा हो सब ठौर फिरा, पर उसने ब्राह्मन के लड़के को कहीं न पाया। निदान अछता पछता द्वारका पुरी में आया औ चिता बनाय धनुष बान समेत जलने को उपस्थित हुआ। आगे अग्नि जलाय अर्जुन जों चाहे कि चिता पर बैठे, तों श्रीमुरारी गर्वप्रहारी ने आय हाथ पकड़ा औ हँसके कहा कि हे अर्जुन, तू मत जलै, तेरी प्रतिज्ञा मैं पूरी करूँगा। जहाँ उस ब्राह्मन के पुत्र होंगे तहाँ से ला दूँगा। महाराज, ऐसे कह त्रिलोकीनाथ रथ पर बैठ अर्जुन को साथ ले पूरब दिशा की ओर को चले औ सात समुद्र पार हो लोकालोक पर्वत के निकट पहुँचे। वहाँ जाय रथ से उतर एक अति अंधेरी कंदरा में पैठे, उस समैं श्रीकृष्णचंदजी ने सुदरसन चक्र को आज्ञा की, वह कोटि सूर्य का प्रकाश किये प्रभु के आगे आगे महा अंधकार को टालता चला।

तम तज केतिक आगे गए। जल में तबै जु पैठत भए॥
महा तरंग तासु में लसे। मूँदि आँख ये तामें धसे॥
पहुड़े हुए शेषजी जहाँ। कृष्ण अरु अर्जुन पहुँचे तहाँ॥

जाते ही आँख खोलकर देखा कि एक बड़ा लंबा चौड़ा ऊँचा कंचन का मनिमय मंदिर अति सुंदर है, तहाँ शेषजी के सीस पर रतन जटित सिंहासन धरा है, तिसपर स्यामघन रूप, सुंदर सरूप, चंदबदन, कँवल नयन, किरीट कुंडल पहने, पीत-बसन ओढ़े, पीतांबर काछे, बनमाला मुक्तमाल डाले आप प्रभु मोहनी मूरति बिराजे हैं औ ब्रह्मा रुद्र इंद्र आदि सब देवता सन-मुख खड़े स्तुति करते हैं। महाराज, ऐसा सरूप देख अर्जुन औ श्रीकृष्णचंदजी ने प्रभु के सोंहीं जाय, दंडवत कर हाथ जोड़ अपने जाने का सब कारन कहा। बात के सुनते ही प्रभु ने ब्राह्मन के बालक सब मँगाय दीने औ अर्जुन ने देख भाल प्रसन्न हो लीने। तब प्रभु बोले—

तुम दोऊ मेरी कला जु आहि। हरि अर्जुन देखौ चित चाहि॥
भार उतारन भुव पर गए। साधु संत कौ बहु सुख दए॥
असुर दैत्य तुम सब सँहारे। सुर नर मुनि के काज सँवारे॥
मेरे अंस जु तुम में द्वै हैं। पूरन काम तुम्हारे ह्वैहैं॥

इतना कह भगवान ने अर्जुन औ श्रीकृष्णजी को बिदा किया। ये बालक ले पुरी में आए, द्विज के पुत्र द्विज ने पाए, घर घर आनंद मंगल बधाए। इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज,

जे यह कथा सुने धर ध्यान। तिनके पुत्र होयँ कल्यान॥

नब्बेवाँ अध्याय

श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज, द्वारका पुरी में श्रीकृष्णचंद सदा बिराजें, रिद्धि सिद्धि सब जदुबंसियों के घर घर राजें, नर नारी बसन आभूषन ले नव भेष बनावें, चोआ चंदन चरच सुगंध लगावें। महाजन हाट बाट चौहटे झाड़ बुहार छिड़कावें; तहाँ देस देस के ब्यौपारी अनेक अनेक पदारथ बेचने को लावें। जिधर-तिधर पुरबासी कुतूहल करें, ठौर ठौर ब्राह्मन बेद उच्चरें घर घर में लोग कथा पुरान सुने सुनावें, साध संत आठों जाम हरिजस गावें। सारथी रथ घुड़ बहल जोत जोत राजद्वार पर लावें, रथी महारथी गजपति अश्वपति सूर बीर रावत जोधा यादव राजा को जुहार करने आवें। गुनी जन नाचें गावें बजावें रिझावें, बंदीजन चारन जस बखान कर कर हाथी घोड़े बस्त्र शस्त्र अन्न धन कंचन के रतनजटित आभूषन पावें।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी ने राजा से कहा कि महाराज, उधर तो राजा उग्रसेन की राजधानी में इसी रीति से भाँति भाँति के कुतूहल हो रहे थे औ इधर श्रीकृष्णचंद आनंदकंद सोलह सहस्र एकसौ आठ युवतियों के साथ नित्य विहार करें। कभी युवतियाँ प्रेम में आसक्त हो प्रभु का भेष बनाव करें, कभी हरि आसक्त हो युवतियों को सिंगारें और जो परस्पर लीला क्रीड़ा करें सो अकथ हैं मुझसे कही नहीं जाती, वह देखे ही बनि आवे। इतना कह शुकदेवजी बोले कि महाराज एक दिन रात्र समैं श्रीकृष्णचंद सब

युवतियों के साथ विहार करते थे औ प्रभु के नाना प्रकारके चरित्र देख किन्नर गंधर्व बीन पखावज भेर दुंदुभी बजाय गुन गाते थे और एक समा हो रहा था कि इसमें विहार करते करते जो कुछ प्रभु के मन में आया, तो सबको साथ ले सरोवर के तीर जाय नीर में पैठ जलक्रीड़ा करने लगे। आगे जलक्रीड़ा करते करते सब स्त्री श्रीकृष्णचंद के प्रेम में मगन हो तन मन की सुरत भुलाय एक चकवा चकवी को सरोवर के वार मार बैठे बोलते देख बोलीं—

हे चकई तू दुख क्यौं गोवै। पिया वियोग तें रैन न सोवै॥
अति व्याकुल ह्वै पियहि पुकारै। हमलौं तू निज पियहि सम्हारै॥
हमतौ तिनकी चेरी भईं। ऐसे कहि आगे कौं गईं॥

पुनि समुद्र से कहने लगीं कि हे समुद्र, तू जो लंबी साँस लेता है औ रात दिन जागता है, सो क्या तुझे किसीका वियोग है, कि चौदह रत्न गए का सोग है। इतना कह फिर चंद्रमा को देख बोलीं—हे चंद्रमा, तू क्यों तनछीन मनमलीन हो रहा है, क्या तुझे राज रोग हुआ जो दिन दिन घटता बढ़ता है, कै कृष्णचंद को देख जैसे हमारी गति मति भूलती है, तैसे तेरी भी भूली है।

इतनी कथा कह श्री शुकदेवजी ने राजा से कहा कि महाराज इसी भाँति सब युवतियों ने पवन, मेघ, कोकिल, पर्वत, नदी, हंस से अनेक अनेक बातें कहीं सो जान लीजै। आगे सब स्त्री श्रीकृष्ण-चंद के साथ विहार करें औ सदा सेवा में रहें, प्रभु के गुन गावें औ मन वांछित फल पावें। प्रभु गृहस्थधर्म से गृहस्थाश्रम चलावें। महाराज, सोलह सहस्र एक सौ आठ श्रीकृष्णचंद की रानी जो प्रथम बखानी, तिनमें एक एक रानी के दस दस पुत्र औ एक एक कन्या थीं औ उनकी संतान अनगिनत हुईं सो मेरी सामर्थ

नहीं जो विनका बखान करूँ। पर मैं इतना जानता हूँ कि तीन करोड़ अट्ठासी सहस्र एक सौ चटसाल थीं, श्रीकृष्णचंद की संतान के पढ़ाने को, औ इतने ही पांड़े थे। आगे श्रीकृष्णचंदजी के जितने बेटे पोते नाती हुए, रूप बल पराक्रम धन धर्म में कोई कम न था; एक से एक बढ़ कर था, उनका बरनन मैं कहाँ तक करूँ। इतना कह ऋषि बोले—महाराज, मैंने ब्रज औ द्वारका की लीला गाई, यह है सबको सुखदाई। जो जन इसे प्रेम सहित गावेगा सो निस्संदेह भक्ति मुक्ति पदारथ पावेगा। जो फल होता है तप यज्ञ दान व्रत तीरथ स्नान करने से सो फल मिलता है हरि कथा सुनने सुनाने से।